संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

वर्ष 24 सितम्बर 2014 अंक 23

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति, नास्ति द्रव्यमनौषधम्।
अयोग्य पुरूषोनास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।।

आयुर्वेद सुभाषितम्

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2014
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975-4342

संरक्षक एवं प्रधान सम्पादक	:	डॉ. परमजीत सिंह
सम्पादक मण्डल	:	डॉ. बी. के. सिन्हा
		डॉ. एस. एस. दाश
		श्री संजय कुमार
सहयोग	:	श्री संजीव कुमार

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र

निकोबार द्वीप वन क्षेत्र

सौजन्य : डॉ. सी. मुरूगन

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1.	संकटग्रस्त मैंग्रोव वनस्पतियाँ	:	परमजीत सिंह एवं नितिषा श्रीवास्तव	01–06
2.	केदारघाटी–प्राकृतिक आपदा का वनस्पतियों पर प्रभाव का आंकलन	:	सुनील कुमार श्रीवास्तव, प्रशान्त के. पुसालकर एवं अच्युता नन्द शुक्ला	07–13
3.	चम्पावत जिले के प्रमुख वन एवं वनस्पतियाँ : एक अवलोकन	:	कुमार अम्बरीश एवं एस. के. श्रीवास्तव	14–17
4.	फ्वंगपुई ब्लू माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम में पाये जाने वाली आर्किड जातियाँ	:	समीरन पांडे, बिपिन कुमार सिन्हा एवं प्रकाश कर्मकार	18–20
5.	मूकाम्बिका वन्य–जीव अभयारण्य, उडपी, कर्नाटक की वानस्पतिक विविधता	:	राजीव कुमार सिंह	21–25
6.	पश्चिमी घाट के कुछ स्थानिक सिरोपेजिया	:	समीर पाटिल, जीवन सिंह जलाल, जे. जयंती एवं ए. बेन्निआमिन	26–29
7.	ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभयारण्य की वानस्पतिक विविधता	:	जे. जयंती एवं जीवन सिंह जलाल	30–33
8.	भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद के वानस्पतिक उद्यान की पादप विविधता	:	राजीव कुमार सिंह, विनीत कुमार सिंह एवं एस. एल. गुप्ता	34–44

अपुष्पीय वनस्पति

9.	अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह में काष्ठ को विलगित करने वाले कवकों की विविधता	:	दीपा मिश्रा, जे. आर. शर्मा एवं बी. पी. उनियाल	45–46
10.	पुरातत्व महत्व के स्मारकों एवं मूर्तियों पर शैवाल	:	प्रतिभा गुप्ता	47–49
11.	केरल की समुद्री शैवाल विविधता : एक अवलोकन	:	एम. पलनिसामी एवं एस. के. यादव	50–52
12.	पर्णांगों का विभिन्न पादपसमूहों एवं जीवों से पारस्परिक सम्बन्ध	:	पुष्पेश जोशी, बृजेश कुमार, बी. एस. खोलिया एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	53–56
13.	पर्णांग मार्सिलिया– एक परिचय	:	पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया, बृजेश कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	57–59
14.	पर्णांग–प्रथम स्थलीय पौधों का समूह	:	विनीत कुमार रावत	60–62

चिरपरिचित वनस्पति

15.	*हिप्पोफी*–आधुनिक युग के लिये एक वरदान वनस्पति	:	संजय कुमार एवं एस. एस. दाश	63–67
16.	अमृत तुल्य वनस्पति गुरिचि (गिलोय) – एक समीक्षा	:	अर्जुन प्रसाद तिवारी, ए. ए. अंसारी एवं भोलानाथ	68–70
17.	गुग्गुल– एक संकटग्रस्त औषधीय पौधा	:	अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं भोलानाथ	71–74
18.	ओरोजाइलम् इण्डिकम् (भूतवृक्ष) : एक बहुपयोगी औषधी	:	वीरेन्द्र कुमार मधुकर एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	75–76
19.	सोनामुखी (*केशिया आंगस्टीफोलिया*) – भारतीय थार मरूस्थल की एक उपयोगी वनस्पति	:	चन्दन सिंह पुरोहित	77–78
20.	केसर	:	आर. सी. श्रीवास्तव, विकास जाना एवं सुबीर सेन	79
21.	सतावर की खेती	:	अर्जुन तिवारी, अच्युतानन्द शुक्ला एवं एस. के. श्रीवास्तव	80–81
22.	प्रमुख भारतीय मसाले	:	पापिया रॉय चौधरी	82–84

नृ–वनस्पति

23.	होर्टस मालाबारिकस में वर्णित औषधीय पर्णांग	:	पुष्पेश जोशी, बृजेश कुमार, हिमांशु द्विवेदी एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	85–88

24.	भारतीय वैदिक संस्कृति में जैवविविधता एवं धार्मिक यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियों का वैज्ञानिक महत्व	अरविन्द कुमार, मानस रंजन देवता एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	89–93
25.	भारत की विभिन्न जनजातियों का कुछ रोचक नृवानस्पतिक सहसम्बंध	ए. के. साहू, बी. के. सिन्हा, सुदेशना दत्ता एवं समीरन पांडे	94–96
26.	उत्तराखण्ड में पाये जाने वाली फाइकस वंश की जातियों का लोक वानस्पतिक उपयोग	देवस्मिता दत्त प्रमाणिक, एस. के. श्रीवास्तव एवं संजय उनियाल	97–102
27.	गोविन्द पशु विहार वन्य जीव अभयारण्य, पश्चिमी हिमालय के आर्थिक महत्व के पौधे	आर. मणिकन्दन एवं पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया	103–106

तकनीकी परिदृश्य

28.	साइटिस परिशिष्टों में सूचीबद्ध भारतीय पौधों का व्यापार : नियंत्रण एवं नियमन	जे. एच. फ्रैंकलिन बेंजामिन, के. अल्ताफ अहमद कबीर एवं एस. के. यादव	107–109
29.	हरित अर्थव्यवस्था और भारत	बी. एस. खोलिया	110–111
30.	जैव–विविधता एवं जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र	विनीत कुमार रावत, पी. सत्यनारायण एवं आर. पी. सिंह	112–114
31.	*ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* : एक संकटापन्न, औषधीय एवं सजावटी शाक	गिरिराज सिंह पंवार	115–118
32.	ऐफ्लाटॉक्सिन : एक घातक कवक विष	राहुल कुमार सिंह	119

वानस्पतिक विस्मय

33.	अंटार्कटिका : एक रोमांचक एवं अविस्मरणीय यात्रा	प्रतिभा गुप्ता	120–126
34.	ग्रीन लेक की यात्रा और हरितोद्भिद् अन्वेषण	देवेन्द्र सिंह	127–130
35.	गहवर वन– जैव विविधता व धार्मिक आस्थाओं का एक जीवंत केन्द्र	भावना जोशी एवं रसानन्द कर	131–135
36.	एक वृक्ष का अदभुद जंगल	शिव कुमार	136–138
37.	वृक्षों पर बसेरा	संजीव कुमार	139–140
38.	विस्मयकारी वनस्पति जगत की रोचक जानकारियाँ	प्रशान्त के. पुसालकर	141–143

व्यक्तित्व

39.	कालीपद विश्वास : प्रख्यात शैवालविद्	आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास	144–145
40.	भारतीय शैवाल अनुसंधान के क्षेत्र में प्रो. एम. उमामहेश्वर राव का योगदान	एस.के. यादव एवं एम. पलनिसामी	146
41.	प्रो. शिवराम कश्यप : भारतीय हरितोद्भिद् विज्ञान के जनक	देवेन्द्र सिंह	147

काव्यांजलि

42.	नदियाँ बस कहने को होंगी।	भोलानाथ	148
43.	अंटार्कटिका	प्रतिभा गुप्ता	149
44.	दिवस	आर. के. गुप्ता	150
45.	पीपल	अमरदेव कुमार	151
46.	फूल	महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया	152
47.	सुन ! तरू कुछ कहता रहता है	संजय कुमार	153

पटाक्षेप

48.	राजभाषा क्रियान्वयन एवं वैज्ञानिक प्रकाशन में कंप्यूटर हिन्दी कौशल की भूमिका	संजय कुमार	154–157
49.	पर्यावरण समाचार– 2014	संजीव कुमार एवं संजय कुमार	158–160
50.	राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु		161
51.	लेखकों के लिये निर्देश		162

संकटग्रस्त मैंग्रोव वनस्पतियाँ

परमजीत सिंह एवं नितिषा श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,कोलकाता

प्रकृति में जैव विविधता की सीमा का आंकलन करना दुष्कर ही नही अपितु असंभव है। हमारी प्रकृति में अनेकों ऐसी पादप जातियाँ विद्यमान हैं, जिनकी विलक्षण संरचना एवं कार्यिकी उन्हें ऐसे पारितंत्र में रहने के लिए अनुकूलित करती है, जहाँ साधारण पादपों के लिए जीवित रहना संभव नहीं है। ऐसी ही विलक्षण संरचना एवं अद्भुत कार्यिकी के उदाहरण हैं मैंग्रोव वन !

मैंग्रोव वनस्पतियाँ जिन्हें कच्छ वनस्पतियाँ भी कहा जाता है, खारे पानी में रहने के लिए अनुकूलित होती हैं और तटीय क्षेत्रों में पायी जाती हैं। ये वनस्पतियाँ सामान्यतः वृक्ष, झाड़ियों, फर्न या ताड़ होती हैं। मैंग्रोव वनस्पतियों से आच्छादित वन मृदा एवं समुद्री खारे जल के अन्तः सम्बन्धों का अद्भुत उदाहरण हैं। मैंग्रोव वनस्पतियाँ एक जटिल खाद्य जाल का निर्माण करती हैं। मैंग्रोव वनस्पतियाँ सामान्यतः नदियों के मुहानों या समुद्री तटों पर पायी जाती हैं। मैंग्रोव वन क्षेत्र उष्णकटिबंधीय तटीय क्षेत्रों के लगभग एक तिहाई क्षेत्रों में व्याप्त हैं, जिसका कुल क्षेत्रफल लगभग 172,000 वर्ग कि०मी० है, जो कि नदियों के डेल्टा, खाड़ियों और बैरियर द्वीप समूह के रूप में है। ये उष्णकटिबंधीय एवं उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के तटीय क्षेत्र में पायी जाती हैं।

यद्यपि मैंग्रोव वन क्षेत्र सबसे अधिक उत्पादक एवं जैव विविधता युक्त आर्द्रभूमि में से एक हैं, फिर भी इनका अस्तित्व खतरे में है। मैंग्रोव अन्तः ज्वारीय क्षेत्रों और नदियों के मुहानों में पायी जाते हैं। जहाँ ये खारे पानी में रहने वाले तथा स्थलीय वनस्पतियों एवं जीव जंतुओं के लिए एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट प्राकृतवास का निर्माण करते हैं।

विश्व भर में मैंग्रोव वनस्पतियों की लगभग 65 जातियाँ पायी जाती हैं। वास्तविक मैंग्रोव जातियों और सम्बन्धित मैंग्रोव जातियों के बीच विभेद कर पाना एक कठिन है, अतः इनकी जातियों की सही संख्या का पता लगाना काफी कठिन है। जरायुजता और वायुवीय जड़ों की उपस्थिति को मैंग्रोव जातियों का मानक लेने पर विश्व में इनकी कुल 55 जातियाँ ज्ञात की गई हैं। भारत में इनकी जातियों की संख्या लगभग 39 है ।

1. प्रधान पादप कुल

क्रं. सं.	पादप कुल	वंश	जातियों की संख्या	सामान्य नाम
1.	अकैन्थेसी एविसेनिएसी या वेरबिनेसी	*एवीसीनिया*	9	ब्लैक मैंग्रोव
2.	काम्ब्रिटेसी	*कोनोकार्पस*	1	बटनवूड, व्हाइट मैंग्रोव
		लेगुंकुलेरिया	11	
		लुम्नीट्जेरा	2	
3.	ऐरीकेसी	*नईपा*	1	मैंग्रोव पाम
4.	राईजोफोरेसी	*ब्रूगुएरा*	6	रेड मैंग्रोव
		सेरिओप्स	2	
		कंडेलिया	1	
		राइजोफोरा	8	
5.	लाइथ्रेसी	*सोनेरेसिया*	5	मैंग्रोव एपल

2. अप्रधान पादप कुल

क्रं. सं.	कुल	वंश	जातियों की संख्या
1.	एकेन्थेसी	*एकेन्थस*	1
		ब्रवेसिया	2
2.	बाम्बेकेसी	*कांप्टोस्टेमान*	2
3.	साईपरेसी	*फिम्ब्रिस्टायलिस*	1
4.	यूफोर्बिएसी	*एक्सोएकेरिया*	2
5.	लीसाइथिडेसी	*बैरिंगटोनिया*	6
6.	लाईथ्रेसी	*पेम्फिस*	1
7.	मेलिएसी	*जाइलोकार्पस*	2
8.	मिर्सिनेसी	*एजिसेरास*	2
9.	मिर्टेसी	*अस्बोर्निया*	1
10.	पेलिसिएरेसी	*पेलिसियारा*	1
11.	प्लमबाजिनेसी	*एजियालीटिस*	2
12.	टेरिडेसी	*एक्रोस्टिकम*	3
13.	रूबीएसी	*सिफीफोरा*	1
14.	स्टरकुलिएसी	*हेरिटिएरा*	3

क्षेत्रीय वितरण– मैंग्रोव वनस्पतियाँ दो मुख्य जैव भौगोलिक क्षेत्रों में पायी जाती हैं। पहला इंडो–वेस्ट पैसिफिक जिसमें एशिया, ऑस्ट्रेलिया, ओसियाना और अफ्रीका के पूर्वी तटीय क्षेत्र शामिल हैं तथा दूसरा अटलांटिक कैरिबियन–पूर्वी पैसिफिक जोन जिसमें अमेरिका और अफ्रिका के पश्चिमी तटीय क्षेत्र सम्मिलित हैं। इन दोनों जैव भौगोलिक क्षेत्रों में से इंडो–वेस्ट पैसिफिक क्षेत्र में मैंग्रोव जातियों की संख्या अधिक है।

भारत में गंगा नदी डेल्टा क्षेत्र में स्थित सुंदरवन विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है, जो बांग्लादेश एवं पश्चिम बंगाल में स्थित है। ओडीशा में स्थित भीतरकनिका मैंग्रोव वन भारत का दूसरा सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है। भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरादून की स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट, 2013 के अनुसार भारत में मैंग्रोव वनों का कुल क्षेत्रफल 4,628 वर्ग किमी० है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 0.14 प्रतिशत है।

मैंग्रोव वनों की हानि के दुष्प्रभाव– मैंग्रोव वनों की कटाई से मत्स्य पालन बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इन वनों की कटाई से स्वच्छ जल की आपूर्ति बाधित होती है और तटीय क्षेत्रों की मिट्टी का खारापन भी घटता है। मैंग्रोव वनों की कटाई से पर्यावरण में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का संतुलन बिगड़ जाता है अर्थात् वायु में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। मैंग्रोव वनस्पतियों में समुद्री पादप प्लवकों की अपेक्षा कार्बन स्थिरीकरण की क्षमता ज्यादा होती है। आज कुल मैंग्रोव वनों का लगभग 50 प्रतिशत भाग नष्ट हो चुका है और शेष जो 50 प्रतिशत मैंग्रोव वन बचे हैं, उनके अस्तित्व पर भी खतरा मंडरा रहा है। अतः इन संकटग्रस्त जातियों पर पर्यावरणविदों एवं वैज्ञानिकों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मैंग्रोव वनों को नष्ट करने में चारकोल एवं लकड़ी उद्योग, शहरी विकास और बढ़ते पर्यावरणीय प्रदूषण ने अहम भूमिका निभाई है। पिछले कुछ दशकों में मैंग्रोव वनों में झींगा पालन एवं प्रजनन को काफी प्रोत्साहन मिला है, जो इन वनों की हानि का एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है।

मैंग्रोव वनों की उत्पत्ति एवं विकास– मैंग्रोव वनस्पतियों का उद्भव लगभग 114 मिलियन वर्ष पूर्व हुआ था। इंडो–मलेशियन क्षेत्रों को इन वनस्पतियों का उद्गम स्थल माना जाता है क्योंकि यहाँ पर किसी भी अन्य स्थान से ज्यादा संख्या में मैंग्रोव जातियाँ उपस्थित हैं। ऐसा माना जाता है कि विश्व के अन्य उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ये अपने विशिष्ट तैरने वाले बीजों एवं चल प्रजनक के माध्यम से फैले हैं।

3. भारत में मैंग्रोव वनस्पतियों का राज्यवार वितरण (वर्ष 2013 में)

क्र.सं.	राज्य/संघीय क्षेत्र	सघन मैंग्रोव वन (कि.मी.^{2})	सामान्य रूप से घने वन (कि.मी.^{2})	खुले मैंग्रोव वन (कि.मी.^{2})	कुल (कि.मी.^{2}) (2013 में)	2009 के कुल क्षे० की तुलना में परिवर्तन (कि.मी^{2})
1.	आंध्र प्रदेश	0	126	226	352	0
2.	गोवा	0	20	2	22	0
3.	गुजरात	0	175	928	1103	45
4.	कर्नाटक	0	3	0	3	0
5.	केरल	0	3	3	6	0
6.	महाराष्ट्र	0	69	117	186	0
7.	ओडीशा	82	88	43	213	−9
8.	तमिलनाडु	0	16	23	39	0
9.	पश्चिम बंगाल	993	699	405	2097	−57
10.	अंडमान एवं निकोबार	276	258	70	604	−13
11.	दमन एवं दीव	0	0	1	1	0
12.	पुडुचेरी	0	0.14	1.49	1.63	0.07
	कुल योग	1,351	1,457	1,819	4,628	−34

4. सन् 1987 तथा उसके बाद के वर्षों में राज्यों एवं संघीय राज्यों में मैंग्रोव वनस्पतियों का क्षेत्रफल वितरण (कि.मी.²में)

(स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट, 2013 के अनुसार)

क्र.सं.	राज्य/संघीय क्षेत्र	आंकलन वर्ष						
		1987	1991	1995	1999	2003	2009	2011
1.	आंध्र प्रदेश	495	399	383	397	329	353	352
2.	गोवा	0	3	3	5	16	17	22
3.	गुजरात	427	397	689	1,031	916	1,046	1,058
4.	कर्नाटक	0	0	2	3	3	3	3
5.	केरल	0	0	0	0	8	5	6
6.	महाराष्ट्र	140	113	155	108	158	186	186
7.	ओडीशा	199	195	195	215	203	221	222
8.	तमिलनाडु	23	47	21	21	35	39	39
9.	पश्चिम बंगाल	2,076	2,119	2,119	2,125	2,120	2,152	2,155
10.	अंडमान एवं निकोबार	686	971	966	966	658	615	617
11.	दमन एवं दीव	0	0	0	0	1	1	1.56
12.	पुडुचेरी	0	0	0	0	1	1	1
	कुल	4,046	4,244	4,533	4,871	4,448	4,639	4,663

आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व –मैंग्रोव वनों के कुछ सामाजिक एवं आर्थिक महत्व निम्नवत हैं।

1. मैंग्रोव वनस्पतियों से ईंधन, चारकोल, लकड़ियाँ, शहद, कोयला आदि प्राप्त होते हैं। मैंग्रोव उद्योग से मत्स्य पालन (मछली, झींगा, केकड़ा) उद्योग को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला है। उच्च ज्वलनशीलता के कारण मैंग्रोव वृक्षों की लकड़ियों का ईंधन के रूप में प्रयोग बढ़ता जा रहा है। मैंग्रोव वनस्पतियों में टैनिन की मात्रा बहुत ज्यादा होती है, जो इनकी लकड़ियों को खराब होने से बचाकर स्थायित्व प्रदान करती है। इन वृक्षों में पायी जाने वाली विशिष्ट प्रकार की श्वसन जड़ें बोतल के कार्क बनाने में प्रयुक्त होती हैं। नाइपा की पत्तियों का प्रयोग छप्पर, छतों, चटाई, टोकरी आदि के बनानें में किया जाता है।

2. मैंग्रोव वन मधुमक्खियों को आकर्षित करते हैं तथा मधुमक्खी पालन की गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं।

3. मैंग्रोव वनस्पतियाँ विशेष रूप से एवीसीनिया का प्रयोग भैंस, भेड़, ऊंट तथा बकरियों के लिए सस्ते एवं पोषक चारे के रूप में होता है।

4. मैंग्रोव वनस्पतियों का प्रयोग औषधियाँ बनाने में भी किया जाता है। जैसे *ब्रूगुऐरा* की पत्तियों का प्रयोग रक्त चाप घटाने में, *एक्सोएकेरिया* का कुष्ठ रोग में तथा मिर्गी के इलाज में किया जाता है। *जाइलोकार्पस* के बीज तथा राइजोफोरा के छाल डायरिया में लाभकारी सिद्ध हुए हैं। *एक्रोस्टिकम* की पत्तियों का प्रयोग साग की तरह किया जाता है और *सोनेरेसिया* की पत्तियों से विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थो का निर्माण होता है। मैंग्रोव वनस्पतियों में मानव व पशुओं के विभिन्न रोगों एवं लाइलाज वाइरल बीमारी एड्स से लड़ने की क्षमता के भी संकेत मिले हैं।

5. मैंग्रोव पौधे जलकृषि उद्योग के लिए बीज उपलब्ध कराते हैं। मैंग्रोव वन का 1 हेक्टेयर क्षेत्र 767 किग्रा मछलियों एवं क्रस्टेशियन की उपज करता है जो की व्यापक प्रणाली के 500 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष की तुलना में कहीं अधिक है। वियतनाम, थाईलैंड, फिलीपीन्स और भारत में मैंग्रोव वन मछली और क्रस्टेशियन के पालन के व्यवसाय के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मैंग्रोव वनों की तलहटी की मिट्टी भारी धातुओं का एक अच्छा स्रोत है।

6. मैंग्रोव वनस्पतियाँ तटों के कटाव, सुनामी तथा तूफान को रोकती हैं। 2004 में आयी सुनामी के बाद से मैंग्रोव वन ऐसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिए एक अच्छा विकल्प बन कर उभरे हैं।

7. ये वनस्पतियाँ ज्वारीय क्षेत्रों में मिट्टी रोककर जमीन बांधने में सक्षम हैं। इस प्रकार ये ज्वार भाटे के बीच पनपती रहती हैं और इनकी जड़ें बहती मिट्टी को रोक लेती हैं। मैंग्रोव वनों के तट की ढलान से समुद्र की लहरों का वेग कम हो जाता है और ये वनस्पतियाँ हवाओं के विरुद्ध एक अवरोधक का भी कार्य कर वायुवीय मृदा क्षरण को नियंत्रित करती हैं।

8. इन वनस्पतियों के द्वारा सृजित विशिष्ट पारितंत्र एवं इनकी विशिष्ट जड़ें शैवाल, ओएस्टर, स्पंज एवम ब्रायोफाइट्स जैसे जीवधारियों के लिए उत्तम वासस्थान प्रदान करती हैं।

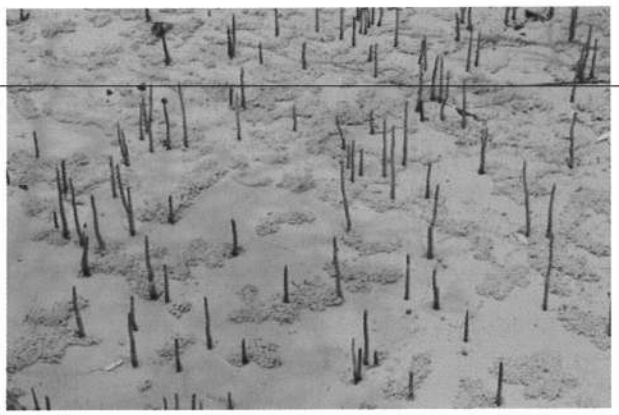

शारीरिक एवं कार्यिकीय अनुकूलन– मैंग्रोव पौधे बहुत ही विशिष्ट पारितंत्र में रहने के लिए अनुकूलित होते हैं। एक ऐसा तंत्र जहाँ पर जल में लवणों की अत्यधिक मात्रा घुली हुई हो, जल का स्तर लगातार बदल रहा हो, ऑक्सीजन की कमी हो अधिकतर पौधे ऐसे पारितंत्र में जीवित नहीं रहेंगे, किन्तु मैंग्रोव वनस्पतियाँ ऐसी ही कठिन पारितंत्रीय परिस्थितियों में रहने के लिए अनुकूलित हैं। ऐसे विशिष्ट पारितंत्र में पनपने के लिए इनमें कई तरह की विशिष्ट संरचनाए एवं कार्यिकी पायी जाती हैं, जो इन्हें ऐसे स्थान के लिए अनुकूलित करती हैं। यही संरचनाऐं और कार्यिकी इन्हें लगातार बदलने वाले पर्यावरण, जहाँ की भूमि समुद्र से मिलती है, में पनपने में सहायक होती हैं।

यद्यपि ये वनस्पतियाँ जल की बहुतायत वाले क्षेत्रों में पाये जाती है किन्तु जल में लवणों की अत्यधिक मात्रा के कारण ये इस जल का सीधे उपयोग नहीं कर सकती हैं, अतः भौतिक रूप से उपस्थित ये जल कार्यिकी रूप से इनके लिए उपयोगी नहीं होता है। इसके अलावा इन वनस्पतियों को लवणों और जल की अधिकता का भी सामना करना पड़ता है। जल की अधिकता इनकी मिट्टी में पकड़ को कमजोर करती है तथा बीज अंकुरण एवं आक्सीजन की उपलब्धता को भी प्रभावित करती है। मैंग्रोव वनस्पतियों में पायी जाने वाली विशिष्ट प्रकार की वायुवीय जड़ें, लवणों को छानने वाली जड़ें एवं लवणों का उत्सर्जन करने वाली पत्तियाँ इन्हें ये विशेष प्रकार का अनुकूलन प्रदान करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में पनपने के लिए इनमें वृद्धि एवं प्रजनन भी विशिष्ट होता है।

लवण सहिष्णुता की कार्यिकी– लवण सहिष्णुता हेतु मैंग्रोव पौधों में कई तरह की कार्यिकी का विकास हुआ है। सोडियम एवं क्लोराइड लवणों की अधिकता से निपटने के लिए इनमें परानिस्यंदन कार्यिकी का विकास हुआ, जो लवणों को छानकर जल की मात्रा को पौधों के लिए उपलब्ध कराती है। ये एक निष्क्रियात्मक प्रक्रिया है, जिसमें ऊर्जा की हानि नहीं होती है। परानिस्यंदन का कार्य इनकी जड़ों का होता है, इस प्रक्रिया के दौरान जल जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और लवण छनित्र की भाँति अलग हो जाता है। कुछ मैंग्रोव पौधों की पत्तियों में लवणों का उत्सर्जन करने वाली ग्रंथियाँ भी पायी जाती हैं, पत्तियों से लवणों का उत्सर्जन एक ऊर्जावाहक प्रक्रिया है। कभी–कभी लवणों का उत्सर्जन पुरानी पत्तियों के कारण भी होता है क्योंकि ये पुरानी पत्तियाँ लवणों को संग्रहित करके रखती रहती हैं और बाद में पौधों से अलग होकर झड़ जाती हैं। इन वनस्पतियों में लवण प्रतिरोधक क्षमता, लवण ग्रंथियों, जरायुजी अंकुरण तथा मांसल पत्तियों द्वारा नियंत्रित होता है। ये वनस्पतियाँ समान्यतः लवणों को तनों की छालों पर, वायुवीय जड़ों या पुरानी पत्तियों में संग्रहित करती हैं।

श्वसन हेतु अनुकूलन– मैंग्रोव पौधों में लवण की अधिकता और अवायुवीय दशाओं के सहन को विशेष प्रकार की अनुकूलित जड़ें पायी जाती हैं। इन वनस्पतियों में ज्वारीय सूखे (टाइडल ड्राइंग) के दौरान जड़ तंत्र के श्वसन के लिए ऑक्सीजन उपस्थित करने के लिए वायुवीय या श्वसन जड़ें पायी जाती हैं, जिसे श्वसन मूल कहते हैं, इन जड़ों में वायु के प्रवेश के लिए छोटे–छोटे छिद्र होते हैं, जिन्हें वातरंध्र कहते हैं। वातरंध्र ऑक्सीजन के अभिगमन में सहायक होते हैं और कार्टेक्स में उपस्थित वायुकोषों के माध्यम से ऑक्सीजन का अभिगमन करने में सहायता करते हैं। श्वसन मूल सामान्यतः 2 मी० तक वृद्धि करने में सक्षम होते हैं।

प्रजनन हेतु अनुकूलन– मैंग्रोव वनस्पतियाँ उभयलिंगाश्रयी या एकलिंगाश्रयी दोनों ही हो सकती हैं। इन वनस्पतियों में फूल और फल क्षेत्रीय वातावरणीय दशाओं के अनुसार वर्ष भर भी देखने को मिल सकते हैं। इन वनस्पतियों की अधिकतर जातियों में बीज अंकुरण की एक विशिष्ट विधि पायी जाती है जिसे जरायुजता कहते हैं । मैंग्रोव पौधों की कुछ ऐसी जातियाँ भी है, जिनमें बीज अंकुरण हेतु कोई भी विशिष्टता उपलब्ध

नहीं है। जरायुजता में बीजों का अंकुरण फल के पेड़ पर लगे रहने के दौरान ही शुरू हो जाता है और भ्रूण की वृद्धि होने लगती है। बाद में ये अंकुरित बीज स्वयं ही पेड़ से अलग हो जाते हैं और नीचे गिरकर एक नए पौधे के रूप में स्थापित हो जाते हैं। कुछ मैंग्रोव जातियों में तैरने वाले बीज पाये जाते है जो ज्वार की सहायता से प्रसारित होते हैं। अतः जरायुजता एक अनुकूलन है, जो पौधे की लंबी दूरी के प्रसार के लिए तथा अत्यधिक सांद्रण वाली लवणीय दशाओं में पनपने के लिए अनुकूलन प्रदान करता है। जरायुजता के दौरान, चल बीज का पोषण मातृ पौधे पर ही हो जाता है अतः भविष्य की वृद्धि के लिए कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों का भंडारण हो जाता है। मैंग्रोव जातियों में कायिक या वर्धी जनन सामान्यतः अनुपस्थित या बहुत कम होता है। राइजोफोरा की कुछ जातियों में वायुवीय जड़ें नए पौधे को जन्म देती हैं।

निष्कर्ष– दिन प्रतिदिन बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिक विकास एवं प्रदूषण से मैंग्रोव वनस्पतियों की संख्या में भारी गिरावट देखने को मिली है। मैंग्रोव जातियों का प्रबंधन तटीय क्षेत्र प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए। समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में मृदा क्षरण एवं भूमि के कुशल प्रबंधन हेतु सघन मैंग्रोव वनीकरण के प्रयास भी किये जाने चाहिये। इस संबंध में सिर्फ नियम कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित क्रियान्वयन भी आवश्यक है। आम जन सामान्य को इनके महत्व एवं इनकी अनुपस्थिति से होने वाली हानियों से अवगत कराना होगा तभी हम इन विलक्षण वनस्पतियों को बचा पायेगें। मैंग्रोव जातियों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित परियोजनाओं की आवश्यकता है, जिसके तहत इन वनों की निगरानी की जा सके और इनके विकास, अध्ययन एवं शोधकार्य हेतु सही आंकड़े प्रस्तुत हो सके। मैंग्रोव जातियों के प्रबंधन के लिए सभी राष्ट्रों को एकजुट होकर कार्य करने की आवश्यकता है।

"उस जीवन को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं,
जिसको बनाने की शक्ति हममें नहीं हैं– महात्मा गाँधी"

केदारघाटी – प्राकृतिक आपदा का वनस्पतियों पर प्रभाव का आंकलन

सुनील कुमार श्रीवास्तव, प्रशान्त के. पुसालकर एवं अच्युतानन्द शुक्ला
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

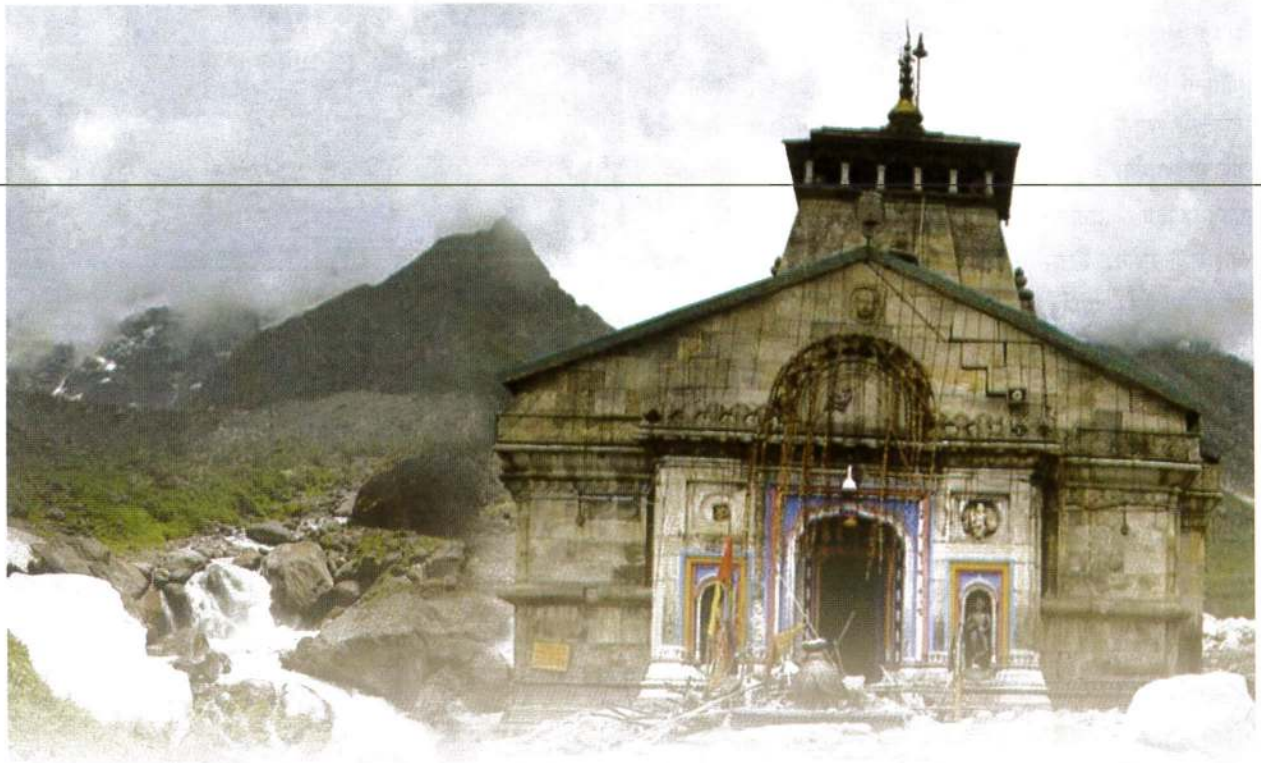

भारत के बारह ज्योर्तिलिंगों में से एक है केदारनाथ, जो पश्चिमी हिमालय में उत्तराखण्ड के रूद्रप्रयाग जिले में स्थित है। गढ़वाल हिमालय में चार सबसे पवित्र स्थानों में से एक इस पवित्र स्थान को केदार धाम के रूप में भी जाना जाता है। मन्दाकिनी नदी इसी घाटी के चोराबाड़ी हिमनद से निकलती है, जिसे ब्रह्मगुफा के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि विदित है कि हिमालय भारत के चार जैवविविधता उत्तप्त स्थलों (हॉट स्पॉट) में से एक है और यहाँ पादप–विविधता भी बहुत ज्यादा है। केदारनाथ घाटी में फैला समस्त क्षेत्र हिमाद्री पारिस्थितिकी तंत्र का द्योतक है, जहाँ विभिन्न प्रकार की पादप सम्पदा पायी जाती है, जिसका अध्ययन समय–समय पर विभिन्न वैज्ञानिकों जैसे राव, (1961); मेहरोत्रा, (1979); त्रिवेदी, (1983); सेमवाल, (1984); मेहरोत्रा और असवाल, (1985); रावत, (2005); सिंह और राव, (2007); सिंह, (2008); सिंह और रावत (2011) के द्वारा किया गया है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार ने यहाँ की जैवविविधता को संरक्षित एवं सवंर्द्धित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण हिमालय को जैव–विविधता उत्तप्त स्थल तथा इस घाटी को 'वन्य जीव अभयारण्य' संरक्षित क्षेत्र घोषित किया है, जिससे यहां पायी जाने वाली जैव–विविधता का बचाव एवं संरक्षण किया जा सके। केदारनाथ वन्य जीव अभयारण्य में पंच–केदार (केदारनाथ, रूद्रनाथ, तुंगनाथ, मद्महेश्वर, कल्पेश्वर) तथा पूर्व–पश्चिम छोर पर बंशी नारायण और त्रिजुगीनारायण जैसे पवित्र धार्मिक स्थल स्थित हैं। हिमालय की चौखंबा, केदारनाथ जैसी पहाड़ियों के बीच इस घाटी मे खाम, रूद्रनाथ, पाण्डेश्वर, केदारनाथ, मैपानी जैसे वनस्पति विविधता से समृद्ध घास के मैदान लगभग 275 वर्ग किलोमीटर में फैले हैं। केदारनाथ वन्य जीव अभयारण्य की स्थापना यहाँ पर पायी जाने वाली संकटग्रस्त वन्य–जीव कस्तूरी मृग, जो कि उत्तराखण्ड का राज्य पशु भी है के संरक्षण के लिये की गई थी। इस अभयारण्य से अभी तक लगभग 1500 पादप जातियाँ भी दर्ज की जा चुकी हैं। रूद्रप्रयाग एवं चमोली जिले में स्थित 975 वर्ग किलोमीटर में फैले इस अभयारण्य के द्वारा असंख्य सूक्ष्म वासस्थलों एवं पश्चिमी हिमालय के विशेष पारिस्थितिकी प्रणालियों को भी संरक्षित किया गया है, जो यहाँ पर पायी जाने वाली पादप जातियों के लिए अति महत्वपूर्ण है।

16–17 जून 2013 को केदारघाटी में प्राकृतिक आपदा के रूप में एक भारी तबाही आयी, जिसमें अतिवृष्टि एवं भूस्खलन के कारण चोराबाड़ी हिमनद के मुहाने पर स्थित सरोवर के ऊपर बादल फट गया और पूरी घाटी में बाढ़ आ गयी, जिसमें जन–मानस के साथ–साथ पादप

जातियों की भी भारी हानि हुई तथा बहुत जानमाल का नुकसान भी हुआ। यह क्षेत्र पूर्ण रूप से अल्पाइन क्षेत्र में आता है, जिसके कारण यहाँ हुई पादप विविधता क्षति का अनुमान सिर्फ यहाँ के भ्रमण के बाद ही किया जा सकता है, जिसके लिये अप्रैल से सितम्बर तक का समय सबसे उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इन महीनों में सारे रास्ते खुल जाते हैं और पौधों में फूल भी आ जाते हैं। हिमाद्री घास–स्थल एवं दलदली स्थानों के आप–पास पादप विविधता सबसे अधिक होती है। यह भी अनुमान है कि इस प्राकृतिक आपदा से लगभग 300 से अधिक पुष्पीय पादप जातियों एवं उनके वास–स्थलों जैसे केदारनाथ–चोराबाड़ी, चोराबाड़ी सरोवर, केदारनाथ के घास स्थल, मन्दाकिनी नदी के किनारे, रामबाड़ा, रज्जु मार्गो, गौरीकुण्ड एवं जंगलचट्टी के जंगल सबसे ज्यादा प्रभावित हुए। इस उच्च हिमाद्री हिमालयी क्षेत्र में औषधीय पौधों का प्रचुर भण्डार है, तथा यहाँ कई दुर्लभ और संकटग्रस्त पादप जातियां भी पायी जाती हैं, जो कि इस आपदा से सबसे अधिक प्रभावित हुई हैं। यद्यपि कई पादप जातियाँ जो इस क्षेत्र में मिलती हैं, उनका वितरण हिमालय के अन्य भागों में भी देखा गया हैं इसलिये जाति स्तर पर इतना घातक नुकसान नहीं हुआ है, परन्तु पादप समूहों तथा विशिष्ट सूक्ष्म वास–स्थलों को जो क्षति पहुंची है, वह जरूर चिन्ता का विषय है।

1. *एलियम वाल्चियाई* (पहाड़ी प्याज) 2. *हप्पोलाइटिया डॉलिकोफाइला* (भूतकेश)
3. *सास्सुरिया ओवेलाटा (ब्रह्म कमल)* 4. *डैक्टालोराइजा हटागिरिया* (सालमपंजा)

उपरोक्त सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए दो महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये हैं। जो निम्न हैं –

1. उच्च हिमालय पर पायी जाने वाली वनस्पतियाँ अपने अत्यंत विशिष्ट वास–स्थलों एवं सूक्ष्म–जलवायु में मिलती हैं तथा वे इसी तरह के वातावरण में अपने आपको ढाल लेती हैं। इस विशिष्ट वातावरण में पायी जाने वाली वनस्पतियों को सिर्फ यथा–स्थाने संरक्षण के माध्यम द्वारा ही संरक्षित किया जा सकता है, परन्तु उच्च हिमालय पर जहाँ अक्सर प्राकृतिक आपदायें जैसे बाढ़, भूस्खलन आदि आते रहते हैं, वहां यथा–स्थाने संरक्षण विधि हमेशा कारगर नहीं होती है।
2. उच्च हिमालय पर स्थित सभी घाटियों की अपनी अलग–अलग भू–आकृति होती है, जिसकी विलक्षण प्रवृति, आकार एवं जल निकासी अलग तरह से होती हैं, तथा यह एक विशेष तरह के सूक्ष्म वास–स्थल बनाते हैं जो विशिष्ट पादप समूह को आधार प्रदान करता है। घाटी के किसी भी भाग को क्षति पहुंचने पर वहाँ पायी जाने वाली सारी पादप जातियां भले ही न प्रभावित हों परन्तु विशिष्ट सूक्ष्म–वास स्थल एवं पारिस्थितिकी तंत्र बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं।

बाढ़ एवं भूस्खलन के आंशिक प्रभाव से भी शाकीय पादप सम्पदा जो की प्रायः घास के मैदानों में पायी जाती है का सर्वाधिक नुकसान होता है यह हिमाद्री वनों के लिये भी अत्यधिक घातक हो जाता है। शीतोष्ण और उप–हिमाद्री चौड़ी–पत्तियों वाले वनों में प्रत्येक पेड़ अपने आप में अभयारण्य हैं जो बहुत से उपरिरोही पुष्पीय पादपों, पर्णांगों, कवकों, शैवालों एवं हरितोदभिदों को आश्रय प्रदान करते हैं। यहां नम छायाकिंत वास–स्थल पर रहने वाली बाह्य जातियां जैसे पर्णांग, कवक, मॉस एवं लीवरवर्टस की अधिकतम विविधता देखी गयी है। यहाँ पाये जाने वाले पर्णांगों में *एथीरियम फ्रिम्ब्रिएटम, ए. मैकीनोनिआई, ल्यूकेस्टीजिया डेलावायी, डिप्लेजियम पॉलीपोडिवाईडिस, वुडसिया इलोंगेटा, स्यूडोफिगोप्टेरिस ऑइरिटा, लिपीसोरस क्लेथरेरस, लि. कश्यापाई, लि. स्यूडोन्यूडस, पॉलीपोडियम लेक्नोपस,* इत्यादि मुख्य हैं। इस आपदा के समय सबसे अधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में नदी के किनारे पर स्थित जंगल हैं जो कहीं–कहीं पूरी तरह से नष्ट हो गये। यहाँ पायी जाने वाली वनस्पतियों के नुकसान का आंकलन किया जाना अति आवश्यक है तथा ऐसी पादप आबादी जो कि इस भंगुर एवं भूस्खलन वाले क्षेत्रों में पायी जाती है एवं उनका आंकलन कर भविष्य में उनके संरक्षण के लिये कारगर उपाय किये जाने चाहिए।

कुछ विशेष जातियां जो कि केदारनाथ क्षेत्र में किये गये पादप संग्रहों के आधार पर वर्णित हैं जैसे *केदारनाथा सैंक्चुअरी* जिसका नाम भी भगवान केदारनाथ के नाम रखा गया हैं, तथा इसका प्रारूप स्थल केदारनाथ के पास के मैदान हैं जो कि केदारनाथ मंदिर के पीछे कुछ ही की

दूरी पर है, यह सम्पूर्ण क्षेत्र बाढ़ एवं पत्थर के मलबों से पूर्णतः दब गया है, अतः इस जाति के अस्तित्व की पुष्टि की भी आवश्यकता है। यद्यपि ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इस जाति की कुछ आबादी घास के ऊपरी मैदानों में बच गयी होंगी, परन्तु इस जाति के अस्तित्व और आबादी का आंकलन इस क्षेत्र के वानस्पतिक सर्वेक्षण के बाद ही किया जा सकता है। हिमालय क्षेत्र की स्थानिक एवं दुर्लभ जाति *कोरिडेलिस लथाइरॉइडीस* जो कि अति विशिष्ट वास स्थल पर ही पायी जाती है, जिसको गढ़वाल हिमालय में सिर्फ रामबाड़ा से दर्ज किया गया था, आपदा में इस जगह के पूरी तरह से नष्ट होने के साथ इसके स्थानीय विलुप्तता की संभावना खारिज नहीं की जा सकती। आपदा प्रभावित क्षेत्र में पायी जाने वाली सभी स्थानिक, संकटाग्रस्त एवं दुर्लभ जातियों का नुकसान भी चिन्ता का विषय है, इनमें पायी जाने वाली कुछ दुर्लभ, संकटग्रस्त एवं स्थानिक जातियां निम्न हैं।

संकटग्रस्त जातियाँ– *एसर सिरनियम, एकोनाइटम हेट्रोफिलम, पिक्रोराइजा कुर्रुआ, डैक्टालोराइजा हटागिरिया, एलियम स्ट्रेचियाई, असेबिया बेन्थमाई, मैलेक्सिस म्यूसीफेरा, रिकम्पिया लॉयोरीयोला* और *टैक्सस वॉलिचियाना।*

स्थानिक जातियाँ – *एनीमोन राउई* (गौरीकुण्ड–जंगल चट्टी), *एकेन्थोपेनेक्स सिसिफोलिया* वैरा. *स्केनडेन्स* (रामबाड़ा–गरूड़ चट्टी), *साइनैन्थस इन्टिगर* (चोराबाड़ी के पास), *पिगीओफाइटन गढ़वालिकम* (वासुकी ताल), *सैक्सीफ्रेगा माइन्यूटिसिमा* (वासुकीताल), *स्वरसिया एल्पिना* (केदारनाथ), *साइलिन गंगोत्रीयाना* (केदारनाथ–चोरा बाड़ी), *इम्पेसेन्स बद्रीनाथाई* (रामबाड़ा–गरूड़ चट्टी)।

दुर्लभ जातियाँ : *साइप्रीपेडियम हिमालइकम, फ्रिटिलेरिया रॉयली, साइलिन कुमाउन्सिस, हरमिनियम प्यूगीओनीफार्मी,* इत्यादि।

आपदा प्रभावित क्षेत्र से दर्ज की गयी कुछ अनोखी वानस्पतिक जातियों की आबादी की आंशिक क्षति की भी संभावना की गयी है, जैसे *सरसिएस्टर एर्गेस्टिस* (मोनोटिपिक), *केलीट्राइकी पॉलीस्ट्रिस* (नमी वाली जगह पर रहने वाली जाति); हिमालय पर पायी जाने वाली सबसे लम्बी ब्रेसिकेसी कुल की जाति *मेगाकारपिया पॉलीएन्ड्रा* जिसमें सबसे बड़े बीज एवं कई पुंकेसर होते हैं। पत्थरों पर उगने वाली जातियां जैसे *क्राइसोस्प्लीनम टेनेलम, प्रिमुला रीडी* इत्यादि। लम्बी तने वाली जाति *स्टफाइलिआ इमोडी,* जिसकी छाल हरे रंग की होती है, जिसमें सफेद दाग भी होते हैं तथा साँप की तरह लगती है इसको स्थानिक लोग अपने घर में रखते हैं तथा यह मान्यता है कि इसको घर में रखने से सांप नहीं आते हैं।

धार्मिक महत्व के अलावा कुछ जातियाँ जैसे *सास्सूरिया ओब्वालेटा, ज्यूरिना डोलोमिया, बिटूला यूटिलिस, ओरिगेनम वल्गेर, जूनीपेरस* की जातियाँ, *प्रिमुला मैक्रोफाइला,* इत्यादि; कुछ आर्थिक महत्व की जातियाँ हैं जैसे *प्रूनस कार्नूटा, प्रिंसिपिया यूटिलिस, जुगलैन्स रीजिया, रिबिस ग्लेस्िएल, रि. एलपेस्ट्रि, पाइरस पर्सिया, हिप्पोफी सैलीसिफोलिया, फ्रेगेरिया न्यूबिकोला, चीनोपोडियम बोट्रिस, एलियम स्ट्रेचियाई, ए. वालिचियाई,* इत्यादि। 100 से ज्यादा पादप जातियाँ प्राकृतिक आपदा से प्रभावित क्षेत्रों में औषधि के रूप में प्रयोग की जाती रही हैं। कुछ महत्वपूर्ण संकटग्रस्त औषधीय महत्व के पादप केदारनाथ के प्रभावित क्षेत्रों से दर्ज गये हैं।

एकोनाइटम हेट्रोफिलम (अतीस) – इसको केदारनाथ–चोराबाड़ी क्षेत्र से दर्ज किया गया है। इसकी जड़ों का उपयोग कामोद्दीपक के रूप में किया जाता है एवं इसका उपयोग बुखार, खांसी, अतिसार, अपच एवं जोड़ों के दर्द में भी किया जाता है।

एलियम स्ट्रैचियाई (जंगली प्याज) – इसको केदारनाथ–चोराबाड़ी क्षेत्र से दर्ज किया गया है। इसकी पत्तियों एवं कन्दों का प्रयोग मसाले के रूप में किया जाता हैं। कहीं–कहीं इसको शीत में भी प्रयोग किया जाता है।

बर्बेरिस एरिस्टाटा (किन्गोड़) – इस कंटीली झाड़ीनुमा पौधे को गौरी कुण्ड–जंगल चट्टी से दर्ज किया गया था। इसकी जड़ों एवं छाल से प्राप्त एल्केलायड का उपयोग दवा के रूप में करते हैं। इसके छाल से प्राप्त रस को रसौट कहते हैं, जिसका उपयोग अथ्रैलमिया में किया जाता है। इसकी जड़ों से प्राप्त निक्षेप का उपयोग बुखार एवं फोड़े में किया जाता है तथा इसका फल खाने योग्य होता है।

कोरिडेलिस गोवेनियाना (इन्द्रजटा)– इसकी जड़ों का उपयोग सूजन एवं पेट दर्द में किया जाता है। इसकी जड़ों का काढ़ा बनाकर बुखार, जठरीया पीड़ा में एवं दांतों के दर्द में किया जाता है। यह पौधा 3000–4300 मीटर की ऊंचाई पर केदारनाथ–चोराबाड़ी क्षेत्र में पाया जाता है।

डैक्टालोराइजा हटागिरिया (सालमपंजा) – इस पौधे को केदारनाथ के घास के मैदानों से दर्ज किया गया है। इसकी कन्दयुक्त जड़ों का उपयोग बलवर्धक, घाव को ठीक करने, खून रोकने एवं कामोत्तेजक के रूप में किया जाता है।

डायोस्कोरिया डेल्टोइडिया (गेंधी) – इसकी कन्दयुक्त जड़ों का उपयोग साग के रूप में, कृमिनाशक के रूप में, खांसी, पेट दर्द, पेचिश एवं मूत्रजनित रोगों में किया जाता है। यह पौधा गौरीकुण्ड–रामबाड़ा क्षेत्र में पाया जाता है। इसको सायटिस (सी.आई.टी.ई.एस.) के परिशिष्ट–दो में रखा

गया है, जिसके अनुसार इस पौधे का व्यापार करना पूरी तरह से निषिद्ध है।

हिप्पोलाइटिया डॉलिकोफाइला (भूतकेश) – इसकी पत्तियों का उपयोग पेटदर्द, सिरदर्द, शरीर दर्द, अपच एवं जलन में करते हैं। इसकी जड़ों से प्राप्त तेल का उपयोग गठिया, जोड़ों के दर्द एवं नासूर में किया जाता है। यह पौधा केदारनाथ में घास के मैदानों में पाया जाता है।

ज्यूरीनिया डोलोमिया (धूप) – इसकी जड़ों से धूप बनायी जाती है, जिसका उपयोगा पूजा–पाठ एवं हवन में किया जाता है। इसकी जड़ों का उपयोग बुखार में भी किया जाता है। इसका अत्यधिक दोहन होने के कारण यह पौधा संकटग्रस्त श्रेणी में आ गया है।

मैलेक्सिस म्यूसीफेरा (रिद्धि) – यह केदारनाथ के घास के मैदानों में पाया जाता है, इससे प्राप्त होने वाली कन्दों का उपयोग अष्टवर्ग औषधि को बनाने में किया जाता है।

महारंगा इमोडी – यह गरूड़ चट्टी के पथरीले क्षेत्रों में पायी जाती है, इसकी जड़ों का उपयोग उदर पीड़ा, बुखार, घाव में, त्वचा सम्बन्धी रोगों में, मूत्र रोगों एवं बवासीर रोग में किया जाता है।

नार्डोस्टेकिस जटामान्सी (जटामांसी) – इसकी सुगन्ध बहुत सुखद होती है इसलिये इसे भारतीय जटामांसी एवं हिमालय पर पाये जाने वाले पौधों में इसे 'सुगन्ध की रानी' भी कहा जाता है। यह पौधा प्रायः केदारनाथ–चोराबाड़ी एवं वासुकीताल क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी जड़ों का उपयोग हृदय रोग, मिरगी, हिस्टीरिया, खांसीं, सर्पदंश एवं रक्तशोधन में किया जाता है। इसकी जड़ों का चूर्ण बनाकर स्थानीय निवासी धूप बनाते हैं, जिसका उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है।

पिक्रोराईजा कुर्रूआ (कुटकी)– इसे हिमालय पर पाये जाने वाले महत्वपूर्ण औषधीय पौधों में गिना जाता है। यह केदारनाथ–चोराबाड़ी क्षेत्र में पाया जाता है, तथा इसकी जड़ों का उपयोग बुखार, पेट दर्द, सिरदर्द, पीलिया, दमा, अपच एवं बिच्छु के विष के निदान में किया जाता है। इसका अत्यधिक दोहन होने के कारण इसे साइटिस के परिशिष्ट–दो में रखा गया है।

पॉलिगोनेटम वर्टीसिलेटम (महामेद्या) – यह पौधा प्रायः गौरीकुण्ड–केदारनाथ के आस–पास पाया जाता है। जोकि अष्टवर्ग औषधि का एक महत्वपूर्ण घटक है जिसका उपयोग तंत्रिका वर्धक के रूप में किया जाता है।

पोडोफाइलम हैक्सैन्ड्रम (वनककड़ी)– जिसका उपयोग यकृत प्रेरक के रूप में, शोधक के रूप में तथा जठरीय घाव रोग में किया जाता है। यह प्रायः गौरीकुण्ड रामबाड़ा क्षेत्र से दर्ज किया गया हैं।

रियम जातियां (आर्चा) – इसकी जातियाँ केदारनाथ से चोराबाड़ी की ओर जाने वाले रास्ते में पायी जाती है। इसकी पत्तियाँ एवं जड़ों का उपयोग घाव को ठीक करने में, आन्तरिक चोट में, हड्डियों के टूटने में, सामान्य कमजोरी में, अपच व पेचिश में किया जाता है।

सॉस्सुरिया ओब्वालेटा (ब्रह्मकमल) – हिमालय पर पाये जाने वाले सभी पौधों में यह सबसे पवित्र माना जाता है। यह केदारनाथ के बुग्याल क्षेत्र में पाया जाता है, इसे उत्तराखण्ड राज्य पुष्प का दर्जा प्राप्त है। इसके फूलों को भगवान शंकर को समर्पित किया जाता है। इसकी जड़ों का उपयोग खांसी के उपचार में किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों में इसका ज्यादा उपयोग होने के कारण, इसका दोहन अधिकता के साथ होता है, जिसके कारण यह जाति अति–संकटग्रस्त की श्रेणी में आ गयी है।

स्कीम्मिया लॉरिओला (नैर/केदारपाती) – यह गौरीकुण्ड – रामबाड़ा क्षेत्र में पाया जाता है। इसका उपयोग जले में, खुजली में एवं छोटी माता में किया जाता है। इसकी पत्तियों को चबाने में जठरीय पीड़ा में आराम मिलता है। सूखी हुयी पत्तियों का चूर्ण बनाकर धूप बनाया जाता है, जिसका उपयोग पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है।

टैक्सस वॉलिचियाना (थुनेर) –हिमालय पर पाये जाने वाले महत्वपूर्ण एवं संकटग्रस्त औषधीय वृक्षों में से एक है, जो की गौरीकुण्ड–रामबाड़ा के आस–पास पाया जाता है। इसके लाल रंग के बीज चोल को छोड़कर इस पौधे के सभी भाग अत्यधिक विषैले होते हैं। इसकी पत्तियों से 'टैक्साल' नामक एल्केलॉयड निकलता है। जिसका प्रयोग कैंसर के उपचार हेतु बनाई जाने वाली औषधी में किया जाता है। इसकी छाल के लेप का प्रयोग हड्डियों के टूटनें में करते हैं। इसके अत्यधिक दोहन के कारण एवं इसकी पुनरूद्धारक क्षमता कम होने के कारण यह पौधा अतिसंकटग्रस्त की श्रेणी में रखा गया है।

थैलिक्ट्रम फोलियोलोसम (पंगलाजड़ी) – इसको गौरीकुण्ड–रामबाड़ा क्षेत्र से दर्ज किया गया है। इसकी जड़ों को ममिरी कहा जाता है, जिसका उपयोग स्थानिक लोगों द्वारा बलवर्धक के रूप में, शोधक के रूप में, एवं मूत्र सम्बन्धित रोगों में किया जाता है।

ट्रिलियम गोवेनिएनम – इसे रामबाड़ा–केदारनाथ क्षेत्र से दर्ज किया गया है। इसकी कन्दों का छोटा सत्व अथवा सत्व कहा जाता है, तथा इसका उपयोग आयुर्वेदिक औषधि बनाने में किया जाता है।

वैलेरियाना हार्डविकी (सामी) – इसकी जड़ों का उपयोग घाव, मिरगीं, एवं हिस्टीरिया किया जाता है।

वैलेरियाना जटामान्सी (मान्सी) – इसकी जड़ो का उपयोग वातहर में, बलवर्धक के रूप में, उत्तेजक के रूप में करते हैं एवं मूत्रजनित रोगों में और हैजा में भी किया जाता है। यह पौधा गौरीकुण्ड –रामबाड़ा क्षेत्र के आस–पास मिलता है इसको व्यापार के लिये पूरी तरह से निषेध किया गया है।

वायला केनेसेन्स (बनफसा) – यह रामबाड़ा –केदारनाथ क्षेत्र के आस पास मिलता है। इसकी पत्तियों का उपयोग सिरदर्द, शीत, खांसी में किया जाता है, इसके फूलों का उपयोग फेफड़े के रोगों में करते हैं। इसके सम्पूर्ण पौधे का काढ़ा बनाकर उसका उपयोग मलेरिया बुखार एवं दमा में किया जाता है, इसकी जड़ों का उपयोग वमनकारी के रूप में करते हैं।

पादप जातियां जिनको आपदाग्रस्त घाटी से दर्ज किया गया है तथा जिनकी जनसंख्या बुरी तरह प्रभावित हुयी हैं वह निम्न हैं।

हिमनद क्षेत्र के चारों तरफ पायी जाने वाली जातियां (चोराबाड़ी–केदारनाथ हिमनद) – *एनाफेलिस नेपालेन्सिस, एन्ड्रोसैकी विलोसा, एरिनेरिया फेस्टुक्वाइडीस, एरेनेरिया कुमाऊनेन्सिस, कोरीडेलिस मीफोलिया, क्रूसीहिमालया हिमालयीका, क्रिप्टोग्रामा ब्रूनोनिआना, ड्रैबा ग्रैसिलिमा, कमेरिआना लेटीफोलियम, जंकस स्पॅसेलेटस, मेगाकार्पाइआ पॉलीएन्ड्रा, आक्जीरिया डिग्निआ, रेननकुलस हाइपरबोरियस, लेसिओकॅरियम डिफ्यूजम, लूजूला स्पिकाटा, मेकोनॉप्सिस एक्यूलिएटा, मेकोनॉप्सिस रोबस्टा, रोडिओला इम्ब्रिकाटा, सास्सुरिया ओब्वालेटा, सास्सुरिया सिम्पसोनियाना, सीडम ओरीएड्स, सीडम ट्रूलिपेटेलम, स्टीलेरिया डिकम्बेन्स, ट्राइगोनोटिस रोटन्डीफोलिया,* इत्यादि।

उच्च हिमाद्री (केदारनाथ–चोराबाड़ी) – *एकोमेस्टाइलिस एलाटा, एलेट्रिस पॉसिफ्लोरा, एनाफेलिस कानटोर्टा, एनाफेलिस रायलिआना, एस्ट्रागेलस हिमालयानस, बिस्टोर्टा एफिनिस, बि. मैक्रोफाइला, बि. वैसिनीफोलिया, ब्युप्ल्यूरम हिमालयन्स, कैल्था पॅल्युस्ट्रिस, कैरेक्स निवेलिस, कैसिओय कैस्टिजिख्टा, कॉरिडेलिस कैषिमिरियाना, को. क्रिथमीफोलिआ, कोटोनियास्टर माइक्रोफिल्लस, साइनैन्थस लोबेटस, देवेन्द्रीया मिरीटिलस, इफेड्रा जेरार्डियाना, इपिलोबियम लैक्सम, इपि. रायलिएनम, यूफ्रेशिया फॅलिओसा, यूफ्रेशिया प्लेटीफाइला फेस्टूका वेलिसियाका, जेन्सिआना वेन्यूस्टा, हरमिनियम मोनोक्रिस, हाइपोलाइटिया डालीकोफाइला, इम्पेसेन्स ग्लैन्ड्यूलिफेरा, इम्पेसेन्स सलकाटा, जंकस ल्यूकैन्थस, जंकस मेम्ब्रेनेसियस, जूनीपेरस इण्डिका, कोबरेसिया निटेन्स, लिओन्टोपोडियम हिमालयानम, लोनीसेरा ऑब्वालाटा, मेकोनॉप्सिस एक्यूलिएटा, ओरोबेन्की अल्बा, पारनेसिया कुमाँउनिका, पेडिकुलेरिस पेक्टिनाटा, पोटेन्टिला एट्रीसेनग्यूनिआ, पोटे. माइक्रोफाइला, प्रिमुला मूरक्रोफ्टिआना, रोडियोला हेटरोडोन्टा, रोडियोला क्वाड्रीफिडा, रोडियोला वैलिचियाना, रोडोडेन्ड्रॉन लेपीडोटम, सैक्सीफ्रेगा ब्रूनोनिस, सैक्सीफ्रेगा डाइवर्सीफोलिया, सीडम ट्रूलीपिटेलम, सिबालडिया परप्यूरिया, साइलिन गंगोत्रीयाना,* इत्यादि।

मध्य हिमाद्री क्षेत्र (गरूड़ चट्टी–केदारनाथ) – *एकोनाइटम हेट्रोफिल्लम, एनाफेलिस नेपालेन्सिस, ए. रायलिआना, एनीमोन पॉलीएन्थस, बिस्टोर्टा मैक्रोफाइला, कोडोनोप्सिस रोटन्डिफोलिया, कोरिडेलिस कैशमिरियाना, को. गोवेनियाना, साइनैन्थस लोबेटस, डैक्टालोराइजा हटागिरेया, ड्रायोप्टेरिस बारबिजेरा, मैलेक्सिस म्यूसीफेरा, मेकोनॉप्सिस एक्यूलियेटा, मोरिना लांगीफोलिया, मायोसोटिस सिल्वेटिका, ऑक्सीग्राफिस पॉलीपेटेला, पारनेसिया न्यूकोला, पेडीकुलेरिस पेक्टिनाटा, फ्लोमिस ब्रैक्टिओला, पोडोफाइलम हैक्जैन्ड्रम, प्रिमुला डेन्टिकुलेटा, प्रि. मुनरोई, प्रि. पेटिओलेरिस, साल्विया न्यूबिकोला, सैक्सीफ्रेगा डाइवर्सिफोलिया, स्क्रोफुलेरिया हिमालेन्सिसि, सेलिनम वेजिनेटम, सेनेसियो लीटस, साइनोटिस कुन्थियाना, टेरेक्सकम आफीसिनेल, थैलिक्ट्रम एल्पिनम, ट्रिलियम गोवेनिएनम, विकासिया कोनीफोलिया,* इत्यादि।

निचला हिमाद्री क्षेत्र (रामबाड़–गरूड़ चट्टी) –*एबीज स्पेक्टाबिलिस, एसर एक्यूमिनेटम, ए. सिजेयम, एक्विलीजिया टयूबीफ्लोरा, सिइसरबिटा साइनिया, क्लिन्टोनिआ यूडेन्सिस, डेल्फीनियम वेस्टीटम, जिरेनियम वालीचिएनम, इम्पेसेन्स बद्रीनाथाई, इन्यूला बारबेटा, जैस्मीनम ह्यूमाइल, जंकस कान्सिनस, लैमियम एलबम, लिग्यूलेरिया एम्प्लेक्सिकाउलिस, लोटस कार्नीकुलेटस, महारंगा इमोडी, नीपेटा गोवेनियाना, पेडीकुलेरिस पंक्टेटा, फ्लोमिस मैक्रोफाइला, पिम्पीनेला डाइवर्सीफोलिया, पिप्टेन्थस नेपालेन्सिस, पोडोफाइलम हैक्जैन्ड्रम, पोटेन्टिला ऑर्ब्युस्क्युला, प्रिमुला रीडी, प्रूनस कार्नुटा, रोडोडेन्ड्रान केम्पेन्युलेटम, राइबिस ग्लेसिएल, रोजा मैक्रोफाइला, रो. सेरीसिया, रोसकोइआ एल्पिना, सेक्सीफ्रेगा फिलीकाउलिस, स्कीम्मिया लॉरीओला, सॉलीडेगो वरगाऑरेआ, ट्रिलीडियम गोवेनिएनम, वायोला सरपेन्स,* इत्यादि।

उच्च शीतोष्ण और अर्ध हिमाद्री क्षेत्र (गौरीकुण्ड–रामबाड़ा)– नीचे की तरफ के जंगलों में चौड़ी पत्तियों वाली जातियां पायी जाती हैं जैसे *रोडोडेन्ड्रान आरबोरियम, क्वेर्कस* जातियां, *एसर* जातियां इत्यादि। अर्ध हिमाद्री क्षेत्रों में सामान्य वृक्ष हैं जैसे *क्वेर्कस सेमीकार्पीफोलिया,*

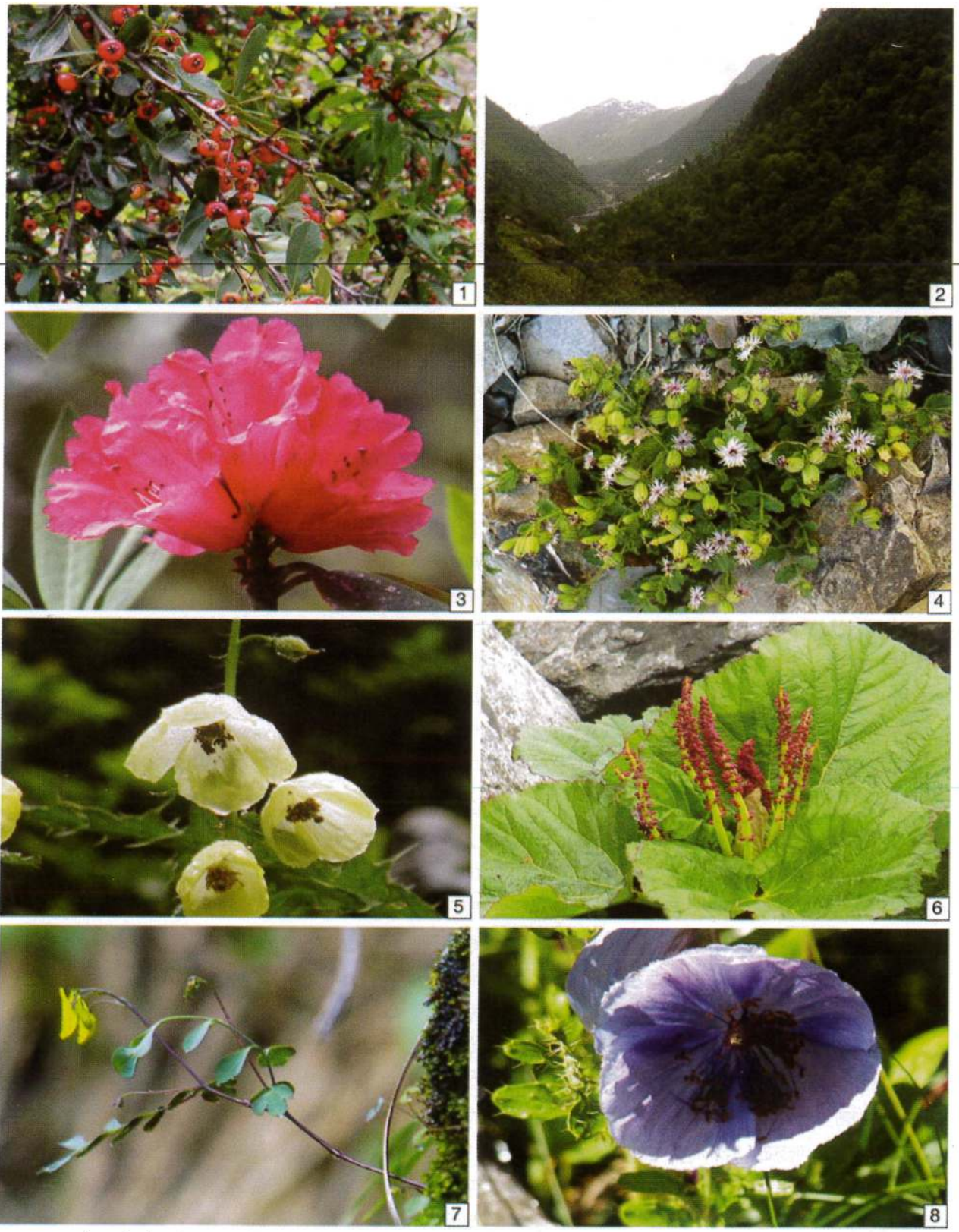

1. *पाइराकेन्था क्रेन्यूलेटा* (घिंगारू) 2. केदार घाटी में मंदाकिनी नदी के किनारे की वनस्पतियाँ 3. *रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम* (बुरांश) 4.*साइलिन गंगोत्रियाना* – पश्चिमी हिमालय की स्थानिक जाति, 5. *मेकानॉप्सिस रोबुस्टा,* 6. *रिह्यूम मूक्रोपिटऐनम* (आर्चा) 7. *कोरिडेलिस लेथिरोड्स,* 8. *मेकानॉप्सिस एक्यूलेटा*

लायोनिआ ओवेलीफोलिया, रोडोडेड्रॉन आर्बोरीयम, एबीज स्पेक्टेबिलिस और *टैक्सस वॉलिचियाना* । ज्यादा ऊँचाई पर पाये जान वाले वृक्षों में *बिटुला यूटिलिस, सिरिंगा इमोडी, वाइबरनम फोइटेन्स, प्रूनस कर्न्यूटा* इत्यादि मुख्य हैं। इस क्षेत्र की मुख्य झाड़ीनुमा क्षुप जातियों में *बरबेरिस, रोजा, कोटोनिएस्टर, इलीग्नस पार्वीफोलिया, यूरेआ एक्यूमिनाटा, पाइरस लेनाटा एवं पिप्टैन्थस नेपालेन्सिस* मुख्य हैं। शाकीय पौधे ज्यादातर घास के मैदानों में एवं नदी के किनारे पाये जाते हैं। यहा पाई जाने वाली मुख्य जातियाँ हैं– *एसर विल्लोसम, एकाइरैन्थिस बाइडेन्टेटा, एनाफेलिस मारगेरिटेसिया, एस्परेगस फिलीसिनस, बीगोनिया जातियां, बिस्टोर्टा एम्प्लीक्सीकॉलिस, कैरेगैना वर्सीकलर, कार्डियोक्रीनम जाइगैन्टियम, क्लीमेटिस कोनेटा, क्ली. मोन्टाना, साइनोग्लासम लैन्सिओलेटम, डेल्फीनियम पिरामिडेल, डायोस्कोरिया डैल्टाइडिया, इरियोकैपीटेला विटिफोलिया, इम्पेसेन्स रेसीमोसा, इ. स्केब्रिडा, लोबेलिआ पिरामिडेटा, माइक्रोमेरिया बाइफ्लोरा, आफिओपोगान इन्टरमिडियम, सैबिया कैम्पेन्यूलेटा, साल्विया लेनेटा, स्टेफाइलीया इमोडी, स्वर्सिया कॉरडेटा, स्व. टेट्रागोना, ट्राइकोलेपिस इलांगेटा, वैलेरियाना जटामान्सी,* इत्यादि।

देहरादून स्थित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र ने केदारनाथ घाटी में पायी जाने वाली पादप जातियों पर प्राकृतिक आपदा प्रभाव के आंकलन के लिये एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। जिसके तहत् यहां की पारिस्थिकी एवं वनस्पतियों की क्षति एवं आपदा के प्रभाव का आंकलन एवं अध्ययन किया जाएगा जिसमें निम्न महत्वपूर्ण बिंदुओं को शामिल किया गया है।

1. केदारनाथ और उसके आस–पास के क्षेत्रों (गौरीकुण्ड–रामबाड़ा) में मौजूदा वानस्पतिक विविधता का आंकलन करना एवं साथ ही संकटग्रस्त पौधों की सूची तैयार कर उनके संरक्षण के उपाय बताना।
2. प्रभाव आंकलन (नकारात्मक प्रभाव) – पादप विविधता का नुकसान, विलुप्तिकरण (यदि कोई हो),स्थानिय विलुप्तीकरण, पादप संख्या में कमी, पारिस्थितिक तन्त्र को नुकसान, महत्वपूर्ण वन समूहों के नुकसान के कारणों की विवेचना ।
3. प्रभाव मूल्यांकन (सकारात्मक प्रभाव) – नये वास–स्थलों का बनना, बाढ़ एवं भूस्खलन के कारण घाटी के ऊपरी भाग से पादप जातियों का प्रवसन, नये पादप समूहों का बनना, एक ही वास–स्थल पर किसी एक जाति का बहुतायत में पाये जाने का अध्ययन।
4. भूस्खलन प्रभावित क्षेत्रों, हिमस्खलन प्रभावित क्षेत्रों, हिमनदों के चारों तरफ के क्षेत्रों, हिमाद्री क्षेत्र में स्थिति, नदी एवं नालों के आस–पास के क्षेत्रों में वनस्पति विविधता का आंकलन।
5. वानस्पतिक विविधता के लिए आक्रमणकारी (Invasive) वनस्पति जातियों का आंकलन तथा साथ ही में नये प्रस्तावित मार्गों की वानस्पतिक विविधता का अध्ययन कर, मानव जनित प्रभावों जैसे प्रवास, नये निर्माण इत्यादि के प्रभाव का आंकलन करना।

अनुमानित है कि केदारनाथ में वास–स्थलों के विनाश के कारण बहुत सी जातियाँ आंशिक रूप से नष्ट हो गयी हैं, अथवा कई (स्थानिक विवरण के परिपेक्ष में) छोटी जगहों पर सीमित हो गयी हैं। उच्च हिमाद्री हिमालय पर पायी जाने वाली पादप जातियाँ पहले से ही बहुत से कारकों जैसे हिमनद का पिघलना, जलवायु परिवर्तन, ज्यादा चराई, औषधीय पौधों का अत्यधिक विदोहन एवं पर्यटन आदि के कारण संकटग्रस्त की श्रेणी में रखी गयी हैं। यहाँ की पादप जातियां प्राकृतिक वास विशिष्ट होती हैं, जिससे इनके संरक्षण के लिये स्व–स्थाने (In-situ) संरक्षण के साथ ही बर्हि–स्थाने संरक्षण (Ex-situ) को भी अपनाया जाना चाहिए एवं भंगुर पारितंत्र में मृदा संरक्षण में सहायता करने वाली पादप जातियों का रोपण किया जाना चाहिये। केदारनाथ न केवल धार्मिक रूप से महत्व रखता है अपितु यहाँ का सम्पूर्ण क्षेत्र जैव विविधता की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है, एतएव धार्मिक पर्यटन के नवीन पर्यावरण हितैषी मानकों के साथ यहाँ की इस अद्भुत विविधता का संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है।

चम्पावत जिले के प्रमुख वन एवं वनस्पतियाँ : एक अवलोकन

कुमार अम्बरीश एवं एस.के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पश्चिमी हिमालय में स्थित "उत्तराखण्ड" राज्य हिमालयी राज्यों में एक प्रमुख स्थान रखता है। यह राज्य देव भूमि के नाम से भी विख्यात है एवं जैव विविधता की उत्तप्त स्थली (हॉट स्पाट) के अन्तर्गत आता है। गढ़वाल एवं कुमाऊं मण्डलों में विभाजित यह विशाल पर्वतीय प्रदेश वन, वनस्पतियों एवं जीवनदायिनी नदियों जैसे गंगा, यमुना, कोसी, काली शारदा आदि से समृद्ध है। प्रदेश के कुमाऊं मण्डल के पूर्वोत्तर भाग में स्थित "चम्पावत" जिले का गठन सन् 1997 में हुआ था। यह जिला 1650 मी० की ऊंचाई पर $29^0 20' 13.51$ उत्तरी अक्षांश एवं $80^0 26' 09.00$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है, जिसका कुल क्षेत्रफल 1781 वर्ग किलोमीटर है। चंद वंश के शासकों की राजधानी रहे चम्पावत के उत्तर में पिथौरागढ़, पूर्व में नेपाल, दक्षिण में ऊधमसिंह नगर एवं पश्चिम में नैनीताल जिले स्थित हैं। जिले के मुख्य कस्बे टनकपुर, बनबसा, लोहाघाट, देवीधूरा, रीठा साहिब आदि हैं।

यह जिला अपने सघन प्राकृतिक वनों एवं वनस्पतियों, जल धाराओं एवं प्रपातों, पौराणिक मन्दिरों व काली नदी जिसे "शारदा" भी पुकारा जाता है, के लिये विख्यात है। शारदा नदी भारत एवं नेपाल के मध्य अर्न्तराष्ट्रीय सीमा का भी निर्धारण करती है।

जलवायु एवं मिट्टी – चम्पावत जिले में ऊंचाई एवं भौगोलिकी में परिवर्तन के साथ जलवायु में भी भिन्नता पायी जाती है। निम्न ऊंचाई वाले तराई क्षेत्रों (300–400 मी०) के मध्य टनकपुर, बनबसा आदि में मौसम गर्म रहता है, तथा गर्मियों में तापमान 40^0से.ग्रे. तक पहुंच जाता है, जबकि ऊंचाई वाले क्षेत्रों (1400–2200मी०) जैसे लोहाघाट, मंच, देवीधूरा, चम्पावत आदि में मौसम सर्दियों में अत्यधिक ठंडा होता है। यहां पर मुख्यतः दोमट–बलुई एवं काली मिट्टी पायी जाती है, जिसमें ह्युमस अधिक होता है। इसलिये यहाँ पर धान, मंडुआ एवं दालें (गहत, उड़द, राजमा आदि) फसलें प्रचुर मात्रा में उगायी जाती हैं। इसके साथ ही नाना प्रकार के फलों के वृक्ष जैसे संतरा, सेब, नींबू, पूलम, आडू तथा जंगली फलों वाली क्षुप, शाक एवं लताऐं बहुतायत में पायी जाती हैं।

वन एवं वनस्पतियाँ एवं वानस्पतिक सर्वेक्षण– लेखक ने सन् 2011 से 2012 में जिले के विभिन्न क्षेत्रों में दो व्यापक वानस्पतिक सर्वेक्षण क्रमशः 02.11.2011 से 19.11.2011 एवं 20.10.2012 से 3.10.2012 तक किये हैं, जिसमें प्रथम भ्रमण में वनबसा, टनकपुर, पूर्णागिरी, सूखी ढांग, श्यामलाताल, चम्पावत, मंच, लोहाघाट, एबोट माउंट, मायावती, देवीधूरा आदि सम्मिलित हैं, यहां से 438 फील्ड क्रमांक के लगभग 1000 पादप नमूने एवं 02 संकटग्रस्त जातियाँ क्रमशः *इंडोपिप्टाडिनिया ऊधेन्सिस, वेंडा क्रिस्टाटा* संग्रहित की गयी हैं। द्वितीय भ्रमण में नेपाल से सटा शारदा नदी का क्षेत्र चल्थी, बस्टीया, स्वाला, वनलेख, पुनावे, भिंगराना, रीठा साहिब, पदमपुर, मायावती, देवीधुरा, भदोलिया आदि सम्मिलित हैं, जहां से लगभग 278 फील्ड क्रमांक एवं 610 पादप नमूने संग्रहित किये गये हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं, क्षुपों, शाकों एवं आर्किड की विभिन्न जातियाँ सम्मिलित हैं।

चम्पावत जिले के वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान जिस प्रकार के वन एवं वनस्पतियां दृष्टिगोचर होती हैं, उनका संक्षेप में विवरण निम्नवत है।

उष्ण कटिबंधीय वन – इस प्रकार के वन 300–500 मी० की ऊंचाई वाले क्षेत्रों जैसे टनकपुर, बनबसा, पूर्णागिरी क्षेत्र आदि में प्रचुरता से पाये जाते हैं। इन वनों में शुष्क पतझड़ एवं नम पतझड़ वनस्पतियों का मिश्रित स्वरूप पाया जाता है, जिनमें *अकेशिया निलोटिका* (बबूल), *बोम्बेक्स सीबा* (सेमल), *ऊजीनिया ऊजमेन्सिस* (सांदण), *डलबर्जिया सिस्सो* (शीशम), *ड. लेटीफोलिया* (काली शीशम), *टर्मिनेलिया चेबुला* (हैडा), *टर्मिनेलिया बेल्लिरिका* (बहेड़ा), *अम्बेलिका ऑफिसिनेलिस* (आँवला), *पापुलस* जाति आदि के बेशकीमती वृक्ष पाये जाते हैं। यहां पर एक संकटग्रस्त स्थानिक वृक्ष जाति *इंडोपिप्टाजिनिया ऊधेन्सिस* पूर्णागिरी एवं बस्तिया क्षेत्र से खोजी गयी है। इसके साथ ही यहां *क्रोटोलेरिया स्पैक्टाबिलिस, टॉरक्सकम ऑफिसिनेलिस, निकेन्ड्रा, केशिया, लिओनोप्टिस* आदि की जातियाँ भी पायी जाती हैं।

उपोष्ण कटिबंधीय वन– ये वन 500 से 900 मी० तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों जैसे बस्तिया, सूखी ढांग, अमोरी आदि में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें मुख्यतः *शोरिया रोबुस्टा* (साल), *अकेशिया कटैचू* (खैर), *टैक्टोना ग्रेन्डिस* (टीक), *टैरोकार्पस मारसुपियम* (बीजा साल) *होलप्टिलिया इन्टीग्रिफोलिया, बाहुनिया परप्यूरिया, बा. वेहलाई, सेमिकार्पस ऐनाकार्डियम* आदि बहुमूल्य वृक्ष जातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर क्षुपों की बहुमूल्य जातियां जैसे *कैरिसा*

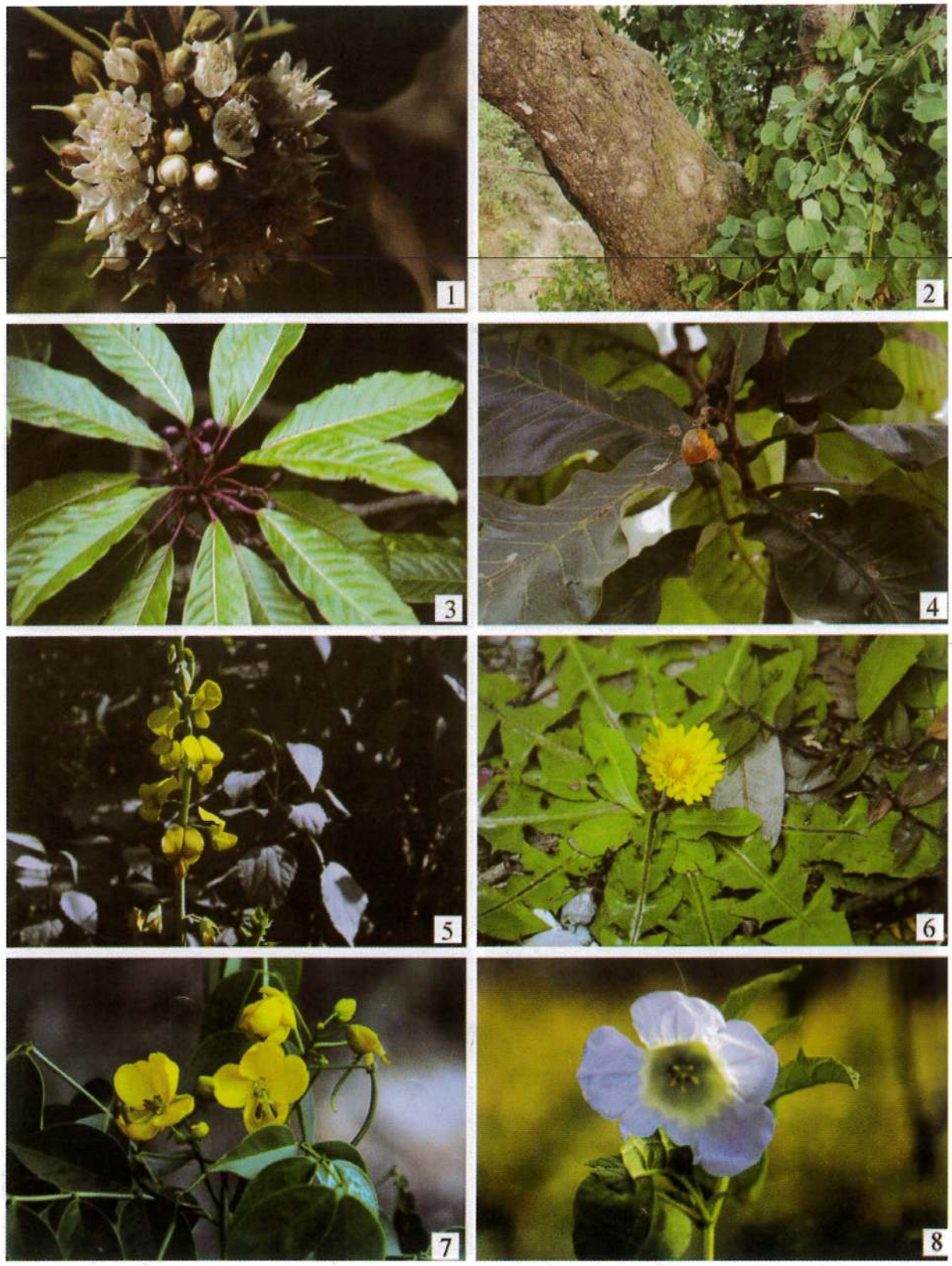

1. *डिप्लोनीमा ब्यूटीरेशिया*, 2. *इंडोपिप्टाडिनिया ऊधेन्सिस*, 3. *डेफ्नीफाइलम हिमालेन्सिस*, 4. *सेमिकार्पस ऐनाकार्डियम*, 5. *क्रोटोलेरिया स्पैक्टाबिलिस*, 6. *टॉरक्सकम ऑफिसिनालिस*, 7. *केसिया* जाति, 8. *निकेन्ड्रा फाइसालॉइडिस*

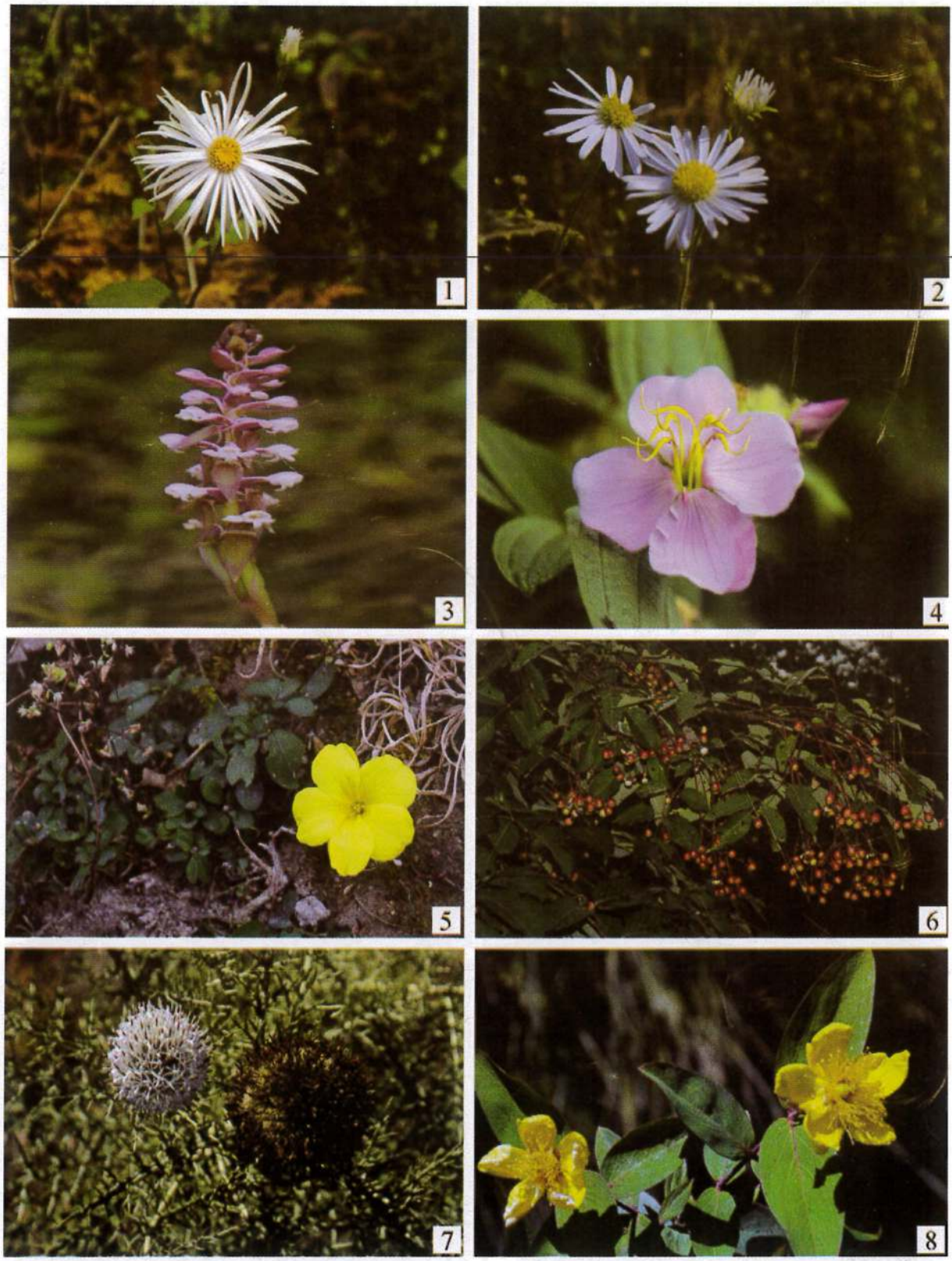

1. *एस्टर थॉमसोनी*, 2. *ए. फ्लैसिडस*, 3. *सेट्रियम नेपालेन्सिस*, 4. *उसबेकिया स्टीलाटा*, 5. *रिनवार्डसिया इंडिका*, 6. *ट्रिचिलिया कोनारॉइडिस*, 7. *इकिनॉप्स कार्नीजेरस*, 8. *हाईपरिकम हिमालेन्सिस*

स्पाईनेरम (करौंदा), *बरबेरिस एशियेटिका, ब. चित्रिया, मुराया कोनीगाई* (कड़ी पत्ता), *वुडफोर्डिया फ्रूटीकोसा, जस्टीशिया एडाटोडा* (वशिंगा), *क्लेरोडेन्ड्रम विषकोसम* व लताओं की जातियाँ जैसे *कुस्कुटा रिफलैक्सा* (आकाश बेल), *अकेशिया सेनेगल, बाहुनिया बहलाई, सेलिस्ट्रिस पेनीकुलाटस, टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया* (गिलोय) आदि भी बहुतायत में पायी जाती हैं।

समशीतोष्ण-उपोष्ण कटिबंधीय वन– चम्पावत जिले में 900 मीटर से 2000 मी० के मध्य इस प्रकार के वन भिगराणा, चम्पावत, चल्थी, रीठा साहिब के क्षेत्रों में प्रचुरता से दिखाई पड़ते हैं जो यहाँ के कुल वनों का लगभग 50 प्रतिशत भाग हैं। इन वनों में मुख्यतः *पाइनस राक्बर्घाई* (चीड़) के विशुद्ध वन एवं कहीं–कहीं पर *शोरिया रोबुस्टा, डिप्लोनीमा ब्यूटीरेशिया, डेफ्नीफाइलम हिमालेन्सिस, रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम, क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, फाइकस ओरीकुलाटा* आदि के मिश्रित वन पाये जाते हैं। यहाँ की अन्य वनस्पतियों में *इकीनोप्स कारनीजेरस, बरबैकसम थैप्सस* (जंगली तंबाकू), *उसबेकिया स्टीलाटा, हाइपरिकम हिमालेन्सिस, एनाफेलिस* एवं *एस्टर* की जातियाँ भी पायी जाती हैं।

शीतोष्ण वन – इस प्रकार के वन 2000 से 2800 मी० के मध्य जिले के उत्तरी भाग मंच, देवीधूरा, एबोट माउंट, लोहा घाट आदि क्षेत्रों में मिलते हैं, इनमें मुख्यतः *क्वेरकस* (बाँज) की जातियाँ, *सीड्रस देवदारा, रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम* (बुराँश), *फ्रम्सीनस माइकारैंथा* (अंगू), *लायोनिया आवेल्फोलिया* (अंयार), *ऐलनस नेपानेन्सिस* (उतीस), *प्रूनस अरमानिका* आदि वृक्ष जातियाँ पायी जाती हैं। इसके साथ–साथ यहाँ पर अन्य वनस्पतियों में *रूबस इल्पेटिकस* (हिंसालू), *बरबेरिस एशियाटिका, ऐस्टर* की जातियाँ, *रिनवार्टसिया इंडिका* (फ्योंली), *इम्पेसन्स* की जातियाँ व विभिन्न रंगों के आर्किड्स जैसे *सेट्रियम नेपालेन्सिस, सिलोगाइन, डेन्ड्रोबियम, इरिया* एवं *वांडा* की जातियाँ भी पायी जाती हैं।

शीतोष्ण उपहिमाद्री वन – ये वन 2800–3200 मी० के मध्य जिले की देवीधूरा रेंज के भदौलिया मंच एवं एबोट माउण्ट की ऊंची पहाड़ियों पर मिलते हैं। जिनमें मुख्यतः *क्वेरकस, ऐसर, रोडोडेन्ड्रान* एवं *सीड्रस देवदारा, क्यूप्रेस्स टारूलोसा* एवं *एबीज स्पैक्टाबिलिस* आदि वृक्ष मुख्य हैं इस क्षेत्र में औषधीय पौधे जैसे *वैलेरियाना हार्डविकी* (सुमाया), *नारडोस्टाइकस जटामांसी, डैक्टाइलोराइजा हथाजरिया, पोडोफाइल्लम हैक्जैन्ड्रम* (वन ककड़ी) आदि भी पायी जाती है।

इस आलेख से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड का चम्पावत जिला बेशकीमती वन एवं वनस्पतियों के भण्डार को संजोये है, जो भविष्य के लिये हमारी पर्यावरणीय धरोहर है। लेकिन बढ़ता मानवीय दबाव एवं वृक्षों के अवैध कटान से यह क्षेत्र भी अछूता नहीं है। अतः संरक्षण के पुख्ता इंतजाम करने नितांत आवश्यक हैं, नहीं तो इनमें से कई जातियां संकटग्रस्त हो जायेगीं या विलुप्तता के कगार पर खड़ी हो जायेंगी।

जन जन से यह कहना है,
वृक्ष धरा का गहना है ।

फ्वंगपुई ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम में पाये जाने वाली आर्किड जातियाँ

समीरन पांडे, बिपिन कुमार सिन्हा एवं प्रकाश कर्मकार[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, भारतीय संग्रहालय, कोलकाता
[1]विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर, पश्चिम बंगाल

पूर्वोत्तर भारत का मिजोरम राज्य अपनी विविधापूर्ण पादप संपदा के लिए पूरे देश में जाना जाता है। भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों में से एक फ्वंगपुई ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान, उत्तर पूर्वी भारत के मिजोरम राज्य के दक्षिण–पूर्व में 22°36'37"–22°41'33"उत्तरी अक्षांश एवं 92°00'41"–93°04'57" पूर्वी देशांतर के बीच लंगत्लाई जिले में स्थित है, जो राज्य की राजधानी आइजोल से लगभग 360 कि.मी. दूरी पर है। जिसका क्षेत्रफल लगभग 50 वर्ग किलोमीटर एवं यह समुद्र तट से 1350–2368 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यहाँ का तापमान मुख्यतः 12° सेल्सियस से 31° सेल्सियस से एवं वर्षा 2000 – 3000 मिलीमीटर प्रतिवर्ष के बीच में रहती है। ब्लु माउंटेन मिजोरम राज्य में स्थित पर्वत श्रृंखलाओं में सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखला है। यह राष्ट्रीय उद्यान इंडो–म्यान्मार क्षेत्र में स्थित होने के कारण पादप विविधता के लिए प्रसिद्ध है।

राष्ट्रीय उद्यान की वनस्पतियों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है– उष्ण कटिबंधीय अर्धसदाबहार वन एवं सदाबहार वन। यह राष्ट्रीय उद्यान अपनी प्राकृतिक सुंदरता एवं वानस्पतिक विविधता के साथ साथ रोडोडेंड्रोन्स एवं आर्किड्स के लिए बहुचर्चित है। मिजोरम सरकार ने इस क्षेत्र को अपनी वानस्पतिक विविधता के कारण सन् 1992 में राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया।

वानस्पतिक विविधता–राष्ट्रीय उद्यान का वानस्पतिक सर्वेक्षण कार्य सन 2010 से चल रहा है और अब तक पौधों की 630 जातियां, 417 वंश एवं 130 कुल में लिपिबद्ध किया जा चुका है। यहाँ पर मुख्यतः आर्किडेसी, एस्टेरेसी, रूबिएसी, यूफोर्बिएसी एवं पोएसी कुल के पौधे अधिक मात्रा में पाये जाते है। इन सब कुलों के अंदर आर्किडेसी कुल की जातियों की संख्या सर्वाधिक है, जिसमें 27 वंश एवं 40 जातियाँ हैं।

फ्वंगपुई ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान के कुछ विशेष क्षेत्रों में आकर्षक आर्किड जैसे *अरुनडिना ग्रेमिनीफोलिया, क्रेपिडियम एकुमिनेटम, डेन्ड्रोबियम विलीअमसोनाई, डेन्ड्रोबियम लोंगिकोरनू, सिम्बीडियम एलीगेन्स, वेंडा सेरुलिया* आदि बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं। प्राकृतिक वासस्थलों के आधार पर आर्किड जातियों को दो वर्गो में बांट सकते हैं– 1. स्थलीय एवं 2. अधिपादपीय। स्थलीय आर्किड जातियाँ– बांस और क्वेरकस के वनों के छायादार नम स्थानों में इस तरह की आर्किड जातियाँ पायी जाती हैं। स्थलीय आर्किड में *एनक्टोचिलस सिक्किमेन्सिस, एन्थोगोनियम ग्रेसिली, क्रेपिडियम एकुमिनेटम, ब्रेकाईकोरईथिस ओबकोरडाटा, जुक्सिन गुडेरॉईडिस, जुक्सिन एफीनिस, हेबेनेरिया डेन्टाटा, हरमिनियम लेन्सीयम, पेरिस्टाइल सलसर्टिफर, पेरिस्टाइलस डेन्सस* आदि प्रमुख हैं। अधिपादपीय आर्किड जातियाँ– ये आर्किड जातियाँ पुष्पीय वृक्षों के तनों व शाखाओं पर उगती हैं। इनमें *ओबेरोनिया मियुक्रोनेटा, ओटोचिलस पोरेक्टस, कोंचिडियम मस्किकोला, बल्बोफिलम सिलिन्ड्रीकम, बल्बोफिलम पिक्टुरेटम, सिलोगायनी शुलटेसि, सिलोगायनी प्रोलीफेरा, सिम्बीडियम एलीगेन्स, डेन्ड्रोबियम लोंगिकोर्नु, डेन्ड्रोबियम जेंकिनसाई, डेन्ड्रोबियम ओक्रीएटम, डेन्ड्रोबियम विलीअमसोनाई, माईकारैंथिस पैनिआ, फोलिडोटा इम्ब्रीकाटा, थूनिया अल्बा, वेंडा सेरुलिया* आदि प्रमुख हैं।

दुर्लभ जातियाँ– इस राष्ट्रीय उद्यान में अनेकों दुर्लभ आर्किड जातियाँ भी पायी जाती हैं। इनमें *ओबेरोनिया रिताई, कोंचिडियम मस्किकोला , क्लिसोस्टोमा विलीअमसोनाई, बल्बोफिलम पिक्टुरेटम, डेन्ड्रोबियम पेगुआनम, डेन्ड्रोबियम विलीअमसोनाई, डेन्ड्रोबियम मैक्राई, सिम्बीडियम साईपेरीफोलियम, ट्राइकोटोसिया डेसीफाईला, जुक्सिन गुडेरॉईडिस* आदि प्रमुख हैं।

सजावट के लिए– राष्ट्रीय उद्यान की सीमा से लगे हुए गाँवों में रहने वाले लाई जनजाति के लोग अपने घरों को सजाने के लिए कुछ आर्किड जातियों का उपयोग करते हैं। इनमें *एग्रस्टोफाईलम कैलोसम, अरुनडिना ग्रेमिनीफोलिया, ओटोचिलस फुसकस, ओटोचिलस पोरेक्टस, प्लैटन्थेरा लेप्टोकौलोन, बल्बोफिलम सिलिन्ड्रीकम, डेन्ड्रोबियम लोंगिकोरनू, डेन्ड्रोबियम ओक्रीएटम, सिलोगायनी लोंगिपेस, वेंडा सेरुलिया, फोलिडोटा इम्ब्रीकाटा* इत्यादि प्रमुख हैं।

1. *डेन्ड्रोबियम विलीअमसोनाई*, 2. *ओटोचिलस फुसकस*, 3. *प्लीओनी प्रिकोक्स*, 4. *सिलोगायनी शुलटेसि*, 5. *डेन्ड्रोबियम लॉगिकोरनू*, 6. *हेबेनेरिया डेन्टाटा*, 7. *जुक्सिन गुडेरॉईडिस*, 8. *पेरिस्टाइलस डेन्सस*, 9. *वेंडा सेरुलिया*, 10. *थूनिया अल्बा*।

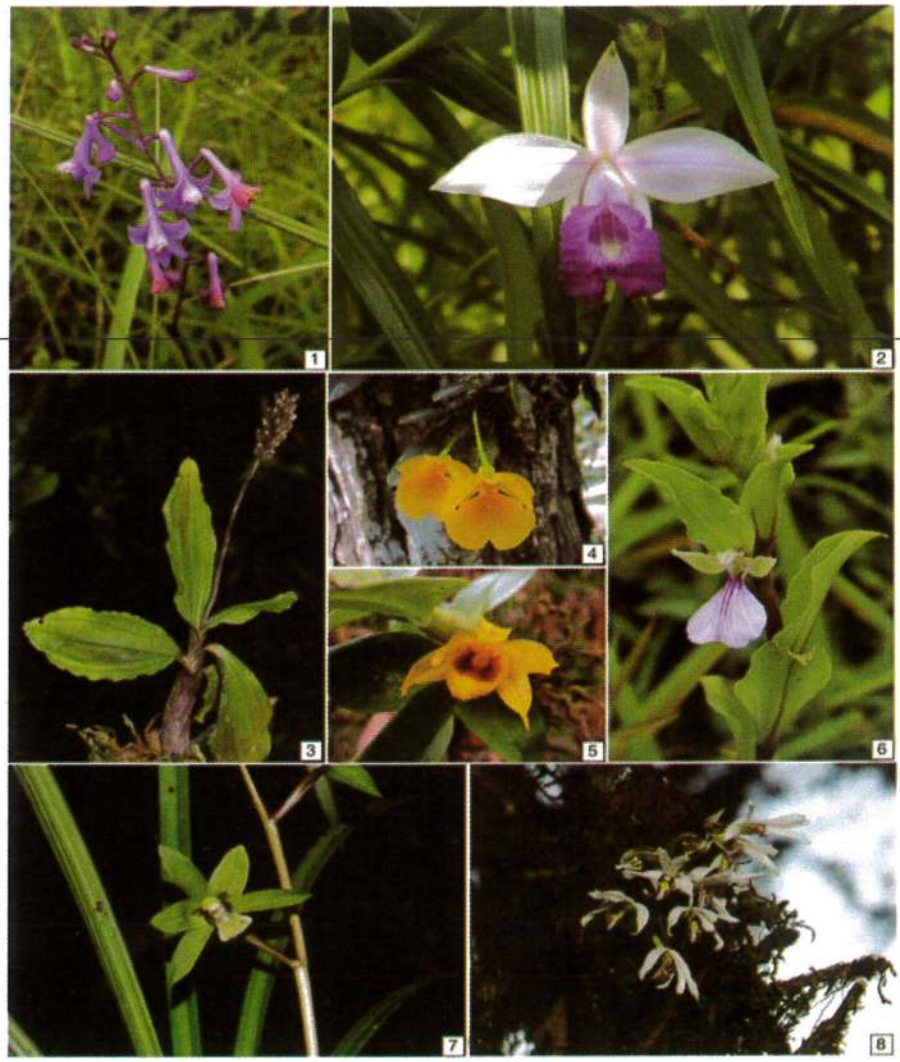

1.*एन्थोगोनियम ग्रेसिली,* 2. *अरुनडिना ग्रेमिनीफोलिया,* 3. *क्रेपिडियम एकुमिनेटम,* 4. *डेन्ड्रोबियम जेंकिनसाई,* 5. *डेन्ड्रोबियम ओक्रीएटम,* 6. *ब्रेकाईकोरईथिस ओबकोरडाटा,* 7. *सिम्बीडियम साईपेरीफोलियम,* 8. *डेन्ड्रोबियम पेगुआनम।*

औषधीय जातियाँ– *अरुनडिना ग्रेमिनीफोलिया, ओटोचिलस पोरेक्टस, ब्रेकाईकोरईथिस ओबकोरडाटा, क्रेपिडियम एकुमिनेटम, डेन्ड्रोबियम लोंगिकोर्नु, प्लीओनी प्रिकोक्स, सिम्बीडियम एलीगैन्स* जैसी औषधीय आर्किड जातियाँ ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाती हैं। जिनका उपयोग लाई जनजाति के लोग विभिन्न प्रकार की औषधियों के रूप में करते हैं।

संकट एवं संरक्षण– फ्वंगपुई ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान से लगे हुए और आसपास के गाँव जैसे थलत्लंग, वामबुक, चेउराल में रहने वाले लोग अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए यहां के वनों पर निर्भर हैं। इन सब गाँव में रहने वाले लाई एवं मिजो जनजाति अपने परिवार की जरुरतों के लिये उद्यान के वनस्पतियों का दोहन करते रहते हैं। आर्किड जातियाँ आकर्षक होने के कारण यहाँ के लोग अपने घरों की सजावट के लिए बहुतायत में इनका उपयोग करते हैं, जिसके कारण बहुत सी दुर्लभ आर्किड जातियों के अत्यधिक दोहन के कारण वे संकटग्रस्त होने की स्थिति में आ गयी हैं। इस उद्यान में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ मिजोरम की प्राकृतिक संपदा हैं और इसका संरक्षण करना हमारे पर्यावरण के लिए अति आवश्यक है, इसलिए सरकार तथा वन विभाग द्वारा पौधों के संरक्षण हेतु कड़े कदम उठाने चाहिए ताकि इस राष्ट्रीय उद्यान में पादप विविधता का समुचित संरक्षण हो सके।

मूकाम्बिका वन्य–जीव अभयारण्य, उडपी, कर्नाटक की वानस्पतिक विविधता

राजीव कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

अभयारण्यों का ध्येय मुख्यतः जैविक महत्व की जातियों का संरक्षण है। परन्तु राष्ट्रीय उद्यानों के विपरीत इनमें साधनों का उपयोग यदि संरक्षण ध्येय में बाधक न हो तो किया जा सकता है। लकड़ी, फल, चारा, ईंधन आदि एकत्र करना व चरान की अभयारण्यों में अनुमति होती है, लेकिन तभी जब उससे प्रकृति को ऐसी क्षति न पहुँचे, जो संरक्षण में बाधा उत्पन्न कर सके। मतलब अभयारण्यों में उद्देश्यों की प्राप्ति किसी सीमा तक राजनीतिक व सरकारी तंत्र के सहयोग पर निर्भर करती है, जिसके कारण कुछ अभयारण्यों में बाह्य–हस्तक्षेप के फलस्वरुप अवैध दोहन रोकना कठिन हो जाता है, इसके विपरीत कुछ सफल अभयारण्यों में दोहन प्रतिबंध दीर्घकालीन संरक्षण में सहायक सिद्ध होते हैं। कुछ सफल अभयारण्यों को उच्च श्रेणी प्रदान करते हुए, बेहतर संरक्षण हेतु राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा दे दिया जाता है। ऐसे कई राष्ट्रीय उद्यान है जो पहले अभयारण्य थे और बाद में उन्हें और बेहतर संरक्षण हेतु राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया। इस समय देश में करीब 400 वन्य–जीव अभयारण्य है, जिनमें से मूकाम्बिका वन्य जीव अभयारण्य एक है, जो कर्नाटक के उडपी जिले में स्थित है। इसका गठन सन 1974 में हुआ था। यह उत्तर में 13^0 41′ 24″ से 13^0 58′ 48″ व पूर्व में 74^0 39′ 58″ से 74^0 55′ 54″ तक विस्तृत है। इसका कुल क्षेत्रफल 247 वर्ग कि.मी. है।

इस अभयारण्य का नाम देवी मूकाम्बिका के नाम पर रखा गया है, जिनका मंदिर कोलूर में स्थित है। यह अभयारण्य पश्चिमी घाट में स्थित है, इसलिए यहाँ पादप जाति विविधता अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक है।

इस अभयारण्य में निम्न प्रकार के वन पाये जाते हैं–

उष्णकटिबंधीय आर्द्र सदाहरित वन – मूकाम्बिका में इस प्रकार के वन बिखरी पट्टीयों में पाए जाते है। इस वनों की ऊपरी सतह अधिक घनी होती है तथा इसमें ऊचें वृक्ष पाए जाते है। इसमें पाई जाने वाली कुछ जातियाँ निम्न हैं–*एलेनथस ट्राईफाइसा, एग्लैया लावी, आर्टोकार्पस हीरसुटस, आर्टोकार्पस हेटेरोफाइलस, बिश्कोफिया जावानिका, केलोफिलम कलाबा, केलोफिलम पोलिएनथम, कैनारियम स्ट्रिक्टम, सिनामोमन सल्फुरेटम, डीमोकार्पस लोंगन, डिप्टेरोकार्पस इंडिकस, डायसोजाइलम मालाबारिकम, नोथापोडाइस निम्मोनिएना, परसिया मेकेन्था, प्रुनस सिलेनिका, सिजीजियम गार्डनेरी, सिजीजियम हेमिस्फेरिकम* आदि ।

इन ऊंचे वृक्षों के नीचे छाया में उगने वाले मध्यम आकार के वृक्ष द्वितीय स्तर बनाते हैं, जैसे– *आर्किडेन्ड्रान मोनाडेल्फम, कैन्थियम डायोकम, एक्टिनोडेफ्ने मालाबारिका, करालिया ब्रेकियेटा, कैस्साईन ग्लॉका, सिनामोमम* जाति, *डायोस्पाइरॉस पैनीकुलेटा, फाइकस* जाति, *गार्सीनिया* जाति, *होलिगार्ना बेडोमी, मैकारेंगा पेलटेटा, हार्प्युलिया आर्बोरिया, इलियोकार्पस* जाति, *हिडनोकार्पस पेनटेन्ड्रा, लेपिसेन्थेस ट्रेटाफाइला, मारिस्टिका डैक्टिलोइडिस, सिजाइजियम* जाति, *टर्पीनिया मालाबारिका* आदि ।

तृतीय स्तर छोटे वृक्ष या झाड़ियों से बनता है, जिसमें *एन्टिडेस्मा मिनासू, एर्डिसिया सोलेनेसिया, एटलान्सिया रेसीमोसा, चिओनैन्थस मालाबारिका, एक्रोनिकिया पेडंकुलेटा, युओनिमस इंडिकस, फ्लेकोर्शिया मोन्टाना, गोनियोथैलेमस कार्डियोपेटालस, साइकोट्रिया* जाति, *इक्सोरा* जाति, *लीआ इंडिका* आदि मिलते हैं।

भूस्तर न्यून झाड़ियों और शाकों से बनता है, जिनमें *एडियेन्टम लूनूलेटम, एमोमम टेरोकार्पम, ऐन्जिऑप्टेरिस इवेक्टा, एन्टिडेस्मा ऐसिडम, एग्रोस्टिमा कोर्टालेन्से, सिलैजिनेला* जाति, *बारलेरिया* जाति, *बिगोनिया* जाति, *पिप्पिनेल्ला* जाति, *कॉस्टस स्पेसिओसॉस, कुर्कुमा* जाति, *जिंजिबर* जाति, *सोनेरिला एन्युस्टिफोलिया, थोटिया सिलिकुओसा, बोसेनबर्जिया पलचेरिमा, ड्रेसिना टर्निफ्लोरा, केलेमॅस* जाति, *क्रोटालेरिया* जाति आदि मिलते हैं।

इसके अलावा पेड़ों से लिपटी आरोही पादपों और बेलों की कई जातियाँ मिलती हैं, जैसे–*पोथोस स्कैंडेंस, पाइपरजाति, निटमउला, एन्सिस्ट्रोक्लेडस हैनियानस, आर्टाबोट्रिस जीलेनिकस, बोहीनिया फोनीसिया, ब्यूटिया सूपरबा, एंटाडा रीडाई, एरिसाईबे पैनीफुलेटा, होया* जाति, *एश्कीनेन्थस पैरोटेंटटी, सार्कोस्टिग्मा क्लीनाई, उवेरिया नेरम, एनोडेंड्रोन पैनिकुलेटम* आदि।

इसके अलावा भूमि पर मिलने वाले ऑर्किडों की प्रमुख जाति है –*मैलेक्सिस वर्सीकोलर, नर्वीलिया इनफन्डीब्युलीफोलिया, नर्वीलिया एरागोआना, नर्वीलिया क्रोसिफार्मिस, पेरीस्टाइलस एरिसटेट्स, पेरीस्टाइलस गूडीएरॉयडेस, ज्युक्सीन लोंगीलेब्रिस* आदि। उपरिरोही ऑर्किड प्रकाश कम होने के कारण बहुत कम पाए जाते हैं, कुछ जातियां जो छिटपुट दिख जाती हैं, उनमें *क्लीसोस्टोमा टेन्युईफोलियम, पोरपेक्स जरडोनिएना, स्मिथसोनिया मॅक्यूलाटा और बल्बोफिलम स्टेराइल* मुख्य हैं। इन वनों में ताड़ के वृक्षों की कुछ जातियाँ अधिक देखने को मिलती हैं जिनमें *अरेंगा वाइटी, कैलामस जाति, कैरिओटा यूरेन्स, पिनांगा डिक्सोनाई* आदि हैं। *ओक्लेंडा* जाति (बांस की जाति) झरनों के आस पास देखी जा सकती है। आंशिक परोपजीवी जो आमतौर पर पेड़ों पर दिखते है उनमें *डेन्ड्रोफ्थोए* जाति, *हेलिकॅन्थस इलास्टिका, हेलिक्सेन्थेरा* जाति, *स्कुरुल्ला पॅरासिटिका, टैक्सिलस* जाति एवं *विस्कम* जाति के परोपजीवी पौधे मुख्य हैं।

पश्चिमी तटीय उष्णकटिबंधीय आर्द्र सदाहरित वन – इन वनों में पहले और तीसरे प्रकार के वनों में पाए जाने वाले पादप मिश्रित रुप में मिलते है। मूकाम्बिका के अधिकतर हिस्सों में इसी प्रकार के वन पाए जाते हैं।

ऊपरी सतह –*एग्लैया इलाग्रोएडिया, एफेनामिक्सिस पोलिस्टेकिया, आर्टोकार्पस* जाति, *अर्टोबोट्रीसजीलेनिकस, बिश्कोफिया जावानिका, बाम्बेक्स सीबा, बाम्बेक्स इनसिग्रे, करालिया ब्रेकीयेटा, चुक्रेसिया टेब्युलेरिस, सेल्टिस टिमोरेन्सिस, डिलेनिया पेन्टागाइना, डायोस्पाइरस जाति, मैकारेंगा पेलटाटा, पिट्टोस्पोरम डेसिकूलोन, टेरोकार्पस जाति, होपिया पोंगा, स्टर्कुलिया गट्टाटा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, विटेक्स एल्टिसिमा, जाइलिया जाइलोकार्पा* आदि ।

मध्यम सतह –*एक्रोनिकिया पेडंक्युलेटा, एक्टिनोडेफ्नी टाडुलिंगामी (एटलांसिया रेसीमोसा, ब्राइडेलिया रेट्युसा, डायोस्पाइरॉस जाति, गीव्रिया* जाति, *हेटेरोफ्रेग्मा क्वाड्रीलोक्युलेर, ओरोजाइलम इंडिकम, स्लीचेरा ओलियोसा, ओलिया डायोका, ग्लोकिडिओन* जाति आदि।

तीसरी सतह –*एपोरुसा लिन्डलेयाना, एन्टिडेस्मा मिनासू, ब्युटिया मोनोस्पर्मा, कैलिकार्पा टोमेंटोसा, लेनिया कोरोमंडालिका, मेलोटस फिलीपेंसिस, सैपिण्डस लॉरिफोलियस, सराका असोका, टेबरमोन्टाना अल्टरनिफोलिया, टर्मिनेलिया चेब्युला* आदि।

भूस्तर – *एलोफाइलस कोबे, एडिनोस्टेमा लावेनिया, एमोर्फोफेलस*जाति, *एलिफेंटोपस स्केबर, साइडा* जाति, *बिगोनिया* जाति, *क्रोटालेरिया* जाति, *क्लोरोफाइटम* जाति, *क्लेरोडेन्ड्रम* जाति, *जास्मिनम* जाति, *स्ट्रोबिलेन्थस* जाति, *रॉवोल्फिया* जाति, *कुर्कुमा* जाति, *जिंजीबर* जाति, *बारलेरिया* जाति, *इम्पेसेंस* जाति, *हेप्लान्थोड्स* जाति आदि।

इन वनों में पाए जाने वाले कुछ विशेष आरोही पादप, बेलें एवं आरोही झाड़ियां जो वनों के किनारों पर दिखाई देती है और इन वनों की विशेषता दर्शाती है –*एम्पिलोसिसस इंडिका, एनामिर्टा कोकूलस, माउलावा स्पीकाटा, आर्टाबोट्रीस जीलेनिकस, बीउमोनसिया जरडोनिएना, केपेरिस मूनी, केपेरिस रिडाई, सीलेस्ट्रस पेनिक्युलेटस, कोनारस मोनोकारपस, डलबर्जिया होरिडा, म्यूसेंडा बेलिला, सेलेसिया बेडोमी, थुनबर्जिया माइसोरेनसिस, सिसस* जाति, *हिप्पोक्रेटिया* जाति, *इक्नोकार्पस फ्रूटेसेंन्स, युवेरिया नेरम, हिबिस्कस हिस्पीडीसिमस, एन्सिस्ट्रोक्लेडस हेनियानस* आदि।

उष्णकटिबंधीय नम पर्णपाती वन – इस प्रकार के वनों में ऊंचे वृक्षों की छतरी सदाहरित वनों के तुलना में कम घनी होती है। इनमें कुछ सदाहरित वनों में पाए जाने वाले वृक्ष भी मिलते है। वर्षा के दिनों में ये वन भी सदाहरित वनों की तरह ही दिखते है पर सूखे मौसम में यहां पर पाए जाने वाले वृक्षों की पत्तियां झड़ जाती हैं, जिससे इस प्रकार के वनों की असली पहचान होती है।

ऊपरी सतह –*अल्बीजिया अमारा, अल्बीजिया लेबेक, अल्बीजिया ओडोरेटिस्सिमा, एनोगेईस्सस लेटिफोलिया, बम्बूसा बेम्बोस, बोहीनिया फेवियोलेटा, बोहीनिया रेसिमोसा, बॉम्बेक्स इनसिग्रे, केरिया अर्बोरिया, कैसिया फिस्टुला, कैलिकार्पा टोमेंटोसा, डलबर्जिया लेटिफोलिया, डिलेनिया पेन्टागाइना, टर्मिनेलिया* जाति, *हल्डिना कॉर्डिफोलिया, टेक्टोना ग्रॅन्डिस, टेरोकार्पस मार्सूपियम, स्टीरियोस्पर्मम कोलैस, लानिया कोरोमंडोलिका, ग्रीविया टिलिफोलिया, काईडिया कैलिसिना* आदि।

मध्यम सतह –*बेलियोस्पर्मम मोन्टेनम, कैरिस्सा कॉन्जेस्टा, क्लेरोडेनड्रम* जाति, *कोलब्रूकिया अपोजिटिफोलिया, राइटिया टींक्टोरिया, मैईना लेक्सीफ्लोरा, तमिलनाडिया युलिजिनोसा, हेलिक्टेरिस आइसोरा, होलार्रेना प्यूबेसन्स, डायोस्पाइरस मेलानोजाइलॉन, इहरेशिया लेविस, ग्रीविया नरवोसा* आदि।

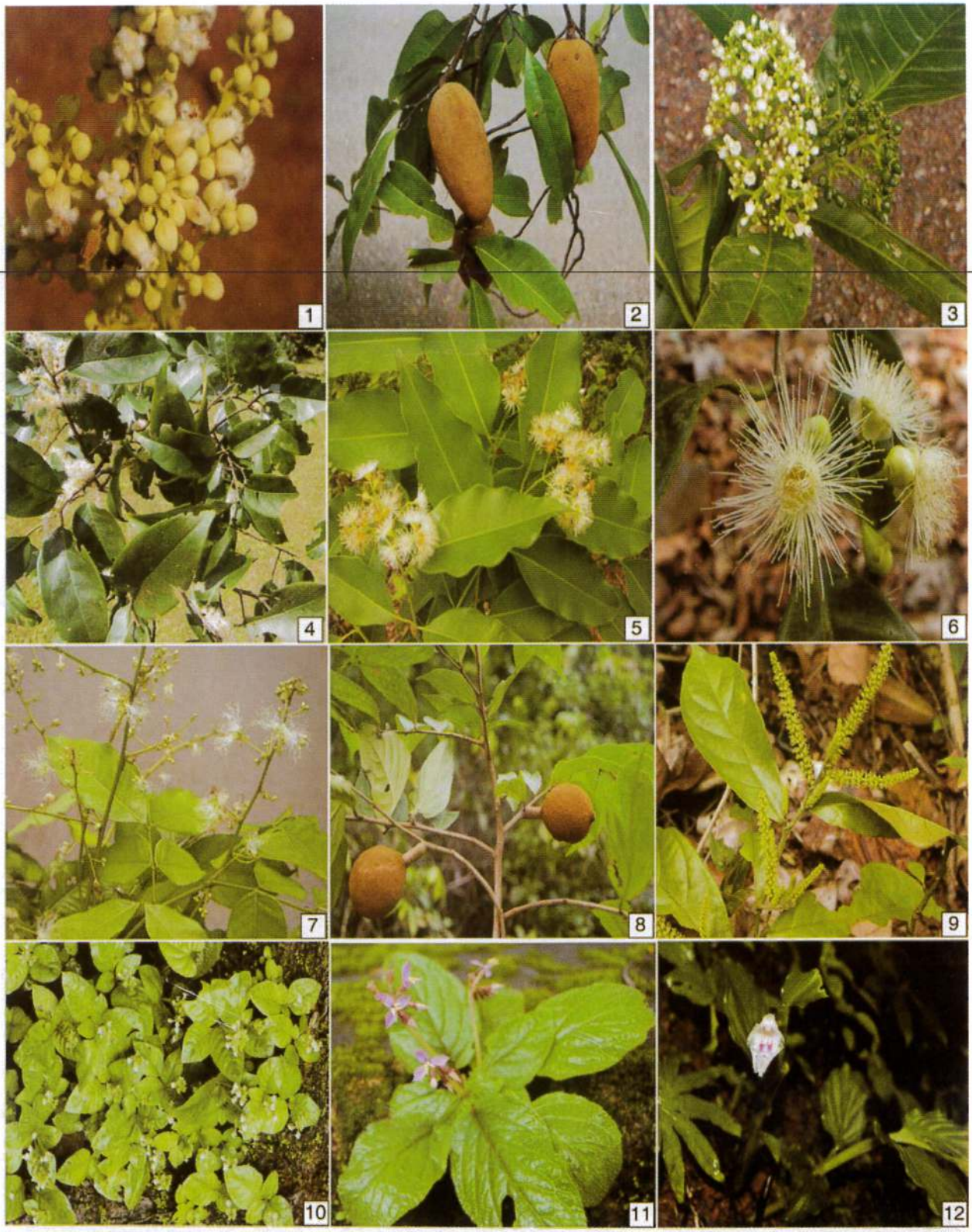

1. *डीमोकार्पस लोंगन* 2. *मारिस्टिका मालाबारिकम* 3. *नोथापोडाइस निम्मोनिएना* 4. *प्रुनस सिलेनिका* 5. *सिजीजियम गार्डनेरी,* 6. *सिजीजियम हेमिस्फेरिकम* 7. *आर्किडेन्ड्रान मोनाडेल्फम* 8. *हिडनोकार्पस पेनटेन्ड्रा* 9. *एन्टिडेस्मा मिनासू* 10. *एग्रोस्टिमा कोर्टलिन्से* 11. *सोनेरिला एन्न्युस्टिफोलिया* 12. *बोसेनबर्जिया पलेचेरिमा*

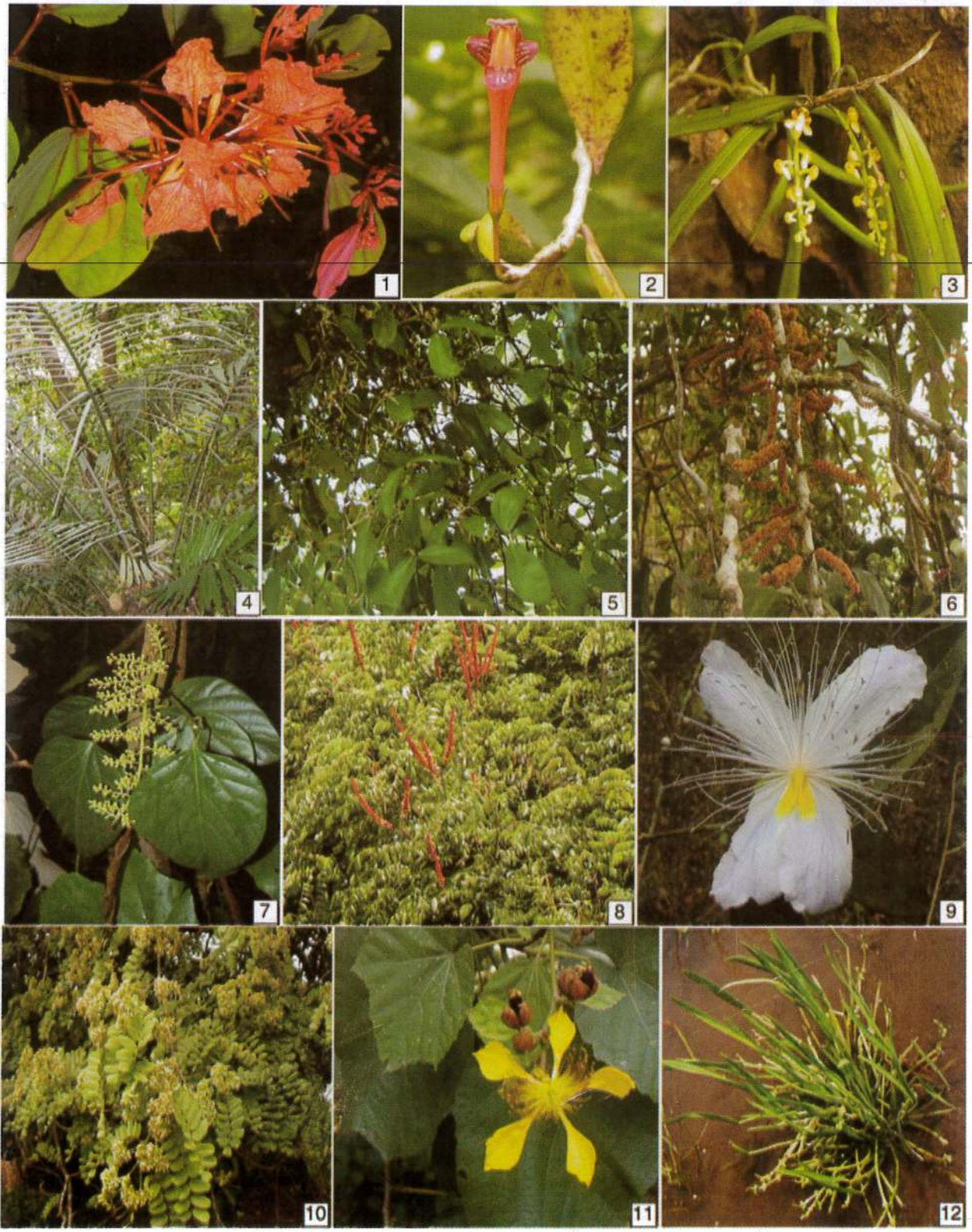

1. *बोहीनिया फोनीसिया* 2. *एकीनेन्थस पैरोटेंट्टी* 3. *क्लीसोस्टोमा टेन्युईफोलियम* 4. *अरेंगा वाइटी* 5. *हेलिकॅन्थस इलास्टिका* 6. *एपोरुसा लिन्डलेयाना* 7. *एनामिर्टा कोकूलस* 8. *माउलावा स्पीकाटा* 9. *केपेरिस रिडाई* 10. *डलबर्जिया होरिडा* 11. *एरिनोकार्पस निमोनी* 12. *वायसनेरिया ट्राइएंड्रा*

भूस्तर – *एबरस प्रीकेटोरियस, कैसिया* जाति, *बायोफायटम* जाति, *साइडा* जाति, *एलिफेंटोपस स्केबर, क्रोटालेरिया* जाति, *क्लोरोफाइटम* जाति, *माइमोसा प्युडिका, डेस्मोडियम* जाति, *स्ट्रोबिलेन्थस* जाति, *एलिसिकार्पस* जाति, *एक्जेकम* जाति, *जस्टिसिया* जाति, *लिंडर्निया* जाति, *मुर्डानिया* जाति, *कुर्कुमा* जाति, *बारलेरिया* जाति, *फ्लेमिंजिया स्ट्रोबिलीफेरा* आदि।

मुख्य आरोही पादप और बेलों में – *अकेशिया कोनसिना, अकेशिया पिनेटा, बोहीनिया वाहली, डायोस्कोरिया जाति, कोम्ब्रेटम अल्बिडम, किनोमोर्फा फ्रेग्रेन्स, फ्लोरिबंडा, ब्रायडेलिया स्टीप्युलेरिस, एनामिर्टा कोकूलस, हेमिडेस्मस इंडिकस, ओलेक्स इंब्रीकेटा, स्पेथोलोबस पार्व्हिफ्लोरस, स्माइलेक्स* जाति के पादप मुख्य हैं।

शोला वन उष्णकटिबंधीय शुद्ध जलीय दलदल वन – ये वन पश्चिमी घाट की विशिष्टता है। ये 1200 मीटर से भी अधिक ऊंचाई पर मिलते है। ये खाली गर्त में, सुरक्षित टुकड़ों में तथा ढ़लानों पर मिलते हैं। इन वनों में पाई जाने वाली प्रमुख जातियाँ *कैंथियम रीडाई, एन्टिडेस्मा मिनासु, एलिओकार्पस* जाति, *क्रिप्टोकार्या* जाति, *डैफ्निफिलम नीलगरेन्स, युओनिमस इंडीकस, गार्सिनिया गम्मी–गटटा, ग्लॉकीडियान नीलगरेन्से, मैकारेंगा पेल्टाटा, लिटसिया वाइटीयाना, निओलिट्सिया जिलेनिका, मेलिकोपे लूनूएन्केडा, फोएबे वाईटी, प्रूनस जेलेनिका, सिजीजियम गार्डनेरी, टर्पीनिया कोचिनचाइनेन्सिस, क्लीमेटिस वाइटियाना* आदि हैं।

पूर्व में शोला वन काफी जगह फैले हुए थे, पर अब ये धीरे–धीरे घट रहे हैं, जिसके कई कारण हैं जैसे वनों की उपजाऊ भूमि का लगातार अपक्षरण, गर्मी के दिनों में आग, मानव गतिविधियां, शीत ऋतु में कोहरा तथा कई अन्य कारणों से अब इनका पुनर्निर्माण नहीं हो पा रहा है, इसलिए वैज्ञानिक इन्हे जीवित फॉसिल की श्रेणी में रखते है।

उष्णकटिबंधीय नदी क्षेत्र वन – इस प्रकार के वनों में पाई जानेवाली प्रमुख जातियाँ हैं – *लोफोपेटालम वाइटियेनम, मधुका नेरीफोलिया, कैलोफायलम* जाति, *हिडनोकार्पस* जाति, *होपिया* जाति, *ऑक्रेईन्यूक्लिया मिसीओनिस, होमोनिया रिपारिया, पेंडेनस फरकेटस, होमेलियम सिलेनिकम, लेजरस्ट्रोमिया* जाति, *ओक्लेंड्रा* जाति, *सिजिजियम* जाति, *वटेरिया इंडिका, विटेक्स ल्यूकोजाइलोन* आदि।

घास स्थल – यहाँ के घास स्थल कई प्रकार के हैं, जैसे – पठारी स्थलों पर, शोला वनों के ऊपरी और निचले हिस्से और बीच के हिस्सों में तथा इसके अलावा खुली पहाड़ियों पर, इसमें पाई जाने वाली घासों की प्रमुख जातियों में *अरुंडिनेल्ला* जाति, *युलालिया* जाति, *इश्चेमम* जाति, *थेमेडा* जाति, *क्राइसोपोगोन* जाति, *सिम्बोपोगोन* जाति, *एराग्रॉस्टिस* जाति, *हिटरोपोगोन कोनटोरट्स, डायमेरिया* जाति, *इसाक्ने* जाति, *क्लोरिस बारबेटा, डीजीटेरिया* जाति, *डाइकैन्थियम* जाति, *पैनिकम जाति आदि।* इसके अलावा इन स्थलों पर अन्य कुलों के पादप भी मिलते हैं, जैसे पठार पर – *इंडिगोफेरा डालजेली, ब्लूमिया जाति, एरिजेरॉन* जाति, *ओस्बेकिया* जाति, *वर्नोनिया* जाति, *केरेक्स* जाति, *इम्पेशन्स* जाति, *स्ट्राइगा* जाति, *ल्यूकस* जाति, *इरिओकॉलोन* जाति, *हेबेनेरिया* जाति, *यूट्रिक्यूलेरिया* जाति, *साइपरस* जाति *जाइरिस* जाति, *ड्रोसेरा* जाति, *कोमेलिना* जाति, *साइनोटिस* जाति, *मुर्डानिया* जाति, *वायसनेरिया ट्राइएंड्रा, यूफोर्बिया* जाति, *फिम्ब्रिस्टाइलिस* जाति, *इफिजिनिया* जाति आदि।

मूकाम्बिका में गहन वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा यहाँ पर करीब 1373 पुष्पी पादपों की जाति पाई गई, जिसमें से 368 जाति पश्चिमी घाट के लिए सीमित क्षेत्री या स्थानिक है। 112 जातियों के साथ यहाँ पोएसी सबसे बड़ा कुल है, दूसरे पर पॅपिलिओनेसी (102 जाति), तीसरे पर ऑर्किडेसी (66 जाति) एवं चौथे स्थान पर साइपरेसी (63 जाति) है। स्थानिकता की दृष्टि से देखा जाए तो यहाँ के 38 प्रतिशत (368 जाति) पादप इस श्रेणी में आते है। इससे ये पता चलता है कि मात्र 247 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 1373 पुष्पी पौधों की जाति के कारण यह अभयारण्य वनस्पति विविधता से भरपूर है, तथा पश्चिमी घाट के कुछ विरल (दुर्लभ) लुप्त प्रायः पादप भी पाए जाते हैं, जिनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है ।

———

पश्चिमी घाट के कुछ स्थानिक सिरोपेजिया

समीर पाटिल, जीवन सिंह जलाल, जे. जयंती एवं ए. बेन्निआमिन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

सिरोपेजिया वंश एपोसायनेसी कुल का सदस्य है। कार्ल वॉन लिनियस ने अपनी किताब जेनेरा प्लांटेरम में इस वंश का सबसे पहले वर्णन किया था। लिनियस के अनुसार इस जाति के पुष्प मोम के फव्वारे की तरह दिखाई देने के कारण इसे इसका नाम सिरोपेजिया प्राप्त हुआ (*सेरोस* = मोम और *पेजी* = फव्वारा)। यह वंश विश्व में मुख्यतः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है । इनकी अलग–अलग जातियाँ दक्षिण पूर्व एशिया, भारत, मैडागास्कर, अरब देश, कैनरी द्वीप समूह, अफ्रीका (भूमध्य क्षेत्र को छोड़कर), न्यू गिनी और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया तक वितरित है । सिरोपेजिया वंश की जातियों में अपने विभिन्न आवास के कारण अत्यधिक विविधता पाई जाती हैं। पूरे विश्व में इस वंश की लगभग 200 से अधिक जातियाँ पाई जाती है । भारत से इस वंश की लगभग 64 जातियाँ अन्वेषित की गई है, तथा अधिकतम जातियों का वितरण केवल पश्चिमी घाट तक ही सीमित है , इसीलिए पश्चिमी घाट को भारत में सिरोपेजिया वंश का विविधता का केंद्र भी माना जाता है । पश्चिमी घाट में सिरोपिजिया की लगभग 34 जातियाँ स्थानिक हैं, एतएव सिरोपेजिया वंश के संरक्षण हेतु पश्चिमी घाट का अपना एक महत्व है ।

इस वंश की पहचान आसानी से इसके विशिष्ट प्रकार के फूलों से होती है, जिनकी संरचना अन्य किसी भी पुष्पीय पौधों की जातियों से नहीं की जा सकती। इनकी एक अन्य विशेषता यह है कि इनकी सभी जातियों में छोटे या बड़े आकार के कंद पाये जाते हैं । इस वंश के पौधों में पत्तियों की विशेष संरचना होती है, जिसमें तने की हर गांठ पर दो पत्तियाँ आमने सामने होती हैं। इस वंश के सभी सदस्य या तो दुर्बल लतायें या फिर खड़े पादप होते हैं। सिरोपेजिया का पुष्प एक छोटे नली के आकार का होता है, जो अपने बाहरी छोर पर पाँच पंखुड़ियों से मिलकर एक पिंजरे जैसी आकृति बनाता है । ऊपर से देखने पर यह पाँच पंखुड़िया किसी छाते के ढांचे जैसा प्रतीत होती हैं। सिरोपेजिया के पुष्पों में पंखुड़ियों से बनी नली 1 से.मी. से 7 से.मी. तक होती है। कुछ जातियाँ में यह नली एक छोर पर फुली होती है। इन पुष्पों की एक और दिलचस्प विशेषता यह है कि उनकी नली के अंदरूनी सतह पर असंख्य बालों जैसी संरचनाए होती हैं, जो छोटे कीटों के लिए एक अस्थायी जाल का काम करती हैं। जब भी कोई कीट इसमें मकरंद के लिए प्रवेश करता है, तो वह इस जाल में फंस जाता है और यह कीट तब तक पुष्प की नली के अंदर फँसा रहता है जब तक नली के अंदर के बाल झड़ नहीं जाते। यह प्रक्रिया सिरोपेजिया के परागण हेतु महत्वपूर्ण है। भारत में पाए जाने वाले सिरोपेजिया की लगभग सभी जातियाँ मौसमी हैं। उनका जीवन काल केवल वर्षा ऋतु के कुछ महीनों तक ही होता है। सीमित जीवन काल, आवास में बदलाव तथा मनुष्यों द्वारा जंगलों के अत्यधिक दोहन के कारण इस वंश की संख्या में बीते वर्षो में भारी गिरावट आँकी गई है। इसके साथ साथ इस वंश के जातियाँ अपने आसपास के वातावरण में बदलाव के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। जिसके कारण यह अपने आसपास के पारिस्थितियों में थोड़े से बदलाव आने पर यह जातियाँ अपने आप को जल्दी से उस वातावरण के प्रति अनुकुलित कर लेती हैं। अतः सिरोपेजिया वंश में उच्च कोटी की भिन्नता पाई जाती है। अपने बदलते आवासों और पश्चिमी घाट में बढ़ते पर्यटक स्थलों के निर्माण हेतु होने वाली नियमित विकासात्मक गतिविधियों के कारण सिरोपेजिया की आबादी में भारी स्तर पर गिरावट दर्ज की गई है। इसके अलावा अतिचराण और मानव द्वारा सिरोपेजिया के औषधीय कंद की खुदाई भी इनकी घटती आबादी का एक प्रमुख कारण है। पश्चिमी घाट में सिरोपेजिया के संरक्षण हेतु आज एक वैज्ञानिक चिंतन व शोध की जरूरत है, नहीं तो आने वाले भविष्य में यह जातियाँ पश्चिमी घाट से विलुप्त हो जायेंगी। इस लेख में पश्चिमी घाट में पाए जाने वाले कुछ स्थानिक सिरोपेजिया का विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

1. *सिरोपेजिया अनंती* (खरपुड़ी) – यह एक 15–40 से.मी. तक ऊंचा शाकीय पौधा है। इसका कंद छोटा एवं गोल होता है। इसके पुष्प 4– 6 से. मी. तक लंबे होते हैं और इनका रंग पीला होता है। इसके परिदल के पंखुड़िया एवं नली की लंबाई एक समान होती है और इसके पंखुड़ियों पर भीतर की ओर छोटे काले धब्बे होते हैं । यह जाति महाराष्ट्र के सिंधुदुर्ग जिले तक ही सीमित है ।

2. *सिरोपेजिया अटेन्यूटा* – यह एक 10– 30 से.मी. तक ऊंचा शाकीय पौधा है । इसका कंद छोटा एवं गोल होता है । इसके पुष्प 5– 7 से.मी. तक लंबे होते हैं। इसके परिदल की नली पीले रंग की होते है और इनकी पंखुड़िया लाल रंग की होती हैं । इसके पुष्प के परिदल के पंखुड़िया एवं नली की लंबाई एक समान होती है और इसके पंखुड़ियों बाहरी छोर पर चोंच के आकार की होती है । यह जाति चट्टानों पर या सौम्य ढलानो पर घास के बीच पाई जाती है। इसका वितरण महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा गोवा के पश्चिमी घाट तक सीमित है ।

3. *सिरोपेजिया बलबोसा* प्रभेद *बलबोसा* – यह एक लता है, इसका कंद मध्यम आकार का एवं गोल होता है। पुष्प दूधिया रंग के होते हैं और इनकी लंबाई 2 से.मी. तक होती है। इसके परिदल के पंखुड़िया लाल रंग की होती हैं एवं उन पर घने सूक्ष्म बाल होते हैं। इसके परिदल की नली निचले छोर पर फुली हुई होती है । यह प्रभेद जाति महाराष्ट्र के जंगलों में सामान्य रूप से झाड़ियों के बीच पाई जाती है ।

4. *सिरोपेजिया कोंकनेन्सिस* – यह 30 से.मी. तक ऊंचा शाकीय पौधा है। इसका कंद छोटा एवं गोल होता है। इसके पत्ते पतले एवं लंबे होते हैं । इसके पुष्प 5 से.मी. तक लंबे और गुलाबी भूरे रंग के होते हैं। इनकी प्रमुख पहचान इसके पुष्प से होती है । इसके परिदल के पंखुड़ियों की लंबाई नली से बहुत छोटी होती है। यह जाति महाराष्ट्र के वेंगुर्ला इलाके के निचले पठारों पर पाई जाती है ।

5. *सिरोपेजिया एवंसी* – यह कोमल लता वाला पौधा है, जिसका कंद मध्यम आकार का होता है। इसके पत्ते चौड़े किन्तु छोटे होते हैं तथा पुष्प 4 से.मी. तक लंबे और सफेद पीले रंग के होते हैं। इनकी पहचान इसके परिदल के बहुत चौडे पंखुड़ियों से की जाती है। यह जाति महाराष्ट्र के लोनावला एवं खंडाला इलाके के खुले जंगलों में पाई जाती है।

6. *सिरोपेजिया हिरसुटा* (हामन, खलोला और खीलोरा) – यह कोमल लता वाला पौधा है, इसके पुष्प 6 से.मी. तक लंबे होते हैं। इनके नली का रंग सफेद होता है, जिस पर बडे बडे भूरे रंग के धब्बे होते हैं और इनके पंखुड़ियों का रंग पीला होता है। इनकी सबसे बड़ी पहचान यह है कि सम्पूर्ण पौधे पर और पुष्प की नली के भीतर पर्याप्त मात्रा में बाल होते हैं। यह जाति पुरे पश्चिमी घाट में खुले सुखे पहाडों के ढलानों पर पाई जाती है।

7. *सिरोपेजिया हुबेरी* – यह कोमल लता वाला पौधा है। इसके पुष्प बेहद केवल 1 से.मी. तक लंबे और सफेद रंग के होते हैं। इनकी सबसे बडी पहचान यह की इसके पुष्प की पंखुड़िया बडी और चौडी होती हैं और इनकी नली बेहद छोटी और ना के बराबर होती हैं। इनकी पंखुड़िया सभी जातियाँ में सबसे सुंदर टोपी के समान दिखयी देती हैं। यह जाति केवल महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट में तिखे ढलानो पर पत्थरों के बीच पाई जाती है।

8. *सिरोपेजिया जंसीया* (कानवेल, बेला गडा) – यह एक कोमल लता वाला पौधा है, इसके कंद लगभग आधे से.मी. से भी कम आकार के होते हैं और कभी कभी इनमें छोटी जडे भी पाई जाती है। इसके पुष्प 6 से.मी. तक लंबे और पीले हरे रंग के होते हैं। इनकी सबसे बडी पहचान यह की इसका तना रसभरा होता है और इसके पत्ते पतले एवं बेहद छोटे या ना के बराबर होते हैं। यह जाति डेक्कन के शुष्क भूभाग पर पाई जाती है।

9. *सिरोपेजिया लावी* (तिलोरी) – यह ऊंचा शाकीय पौधा है, इसका कंद बड़ा और बेडौल होता है। इसके पुष्प 2–4 से.मी. तक लंबे और सफेद रंग के होते हैं तथा पत्ते चौड़े और बादाम के आकार के होते हैं। इनको अपने चौडे पत्तों से और सफेद पुष्प से आसानी से पहचाना जा सकता है, इनकी और एक विशेषता यह की इनके परिदल की पंखुड़ियाँ छोटी और चौडी होती है और इनकी नली लंबी और पतली होती है। यह जाति महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट तक ही सीमित है और यह 1000 मी. से उंचे पहाडों के तीखे ढलानों पर पाई जाती है ।

10. *सिरोपेजिया मैकन्नी* – यह एक 30–100 से.मी. ऊंचा शाकीय पौधा है। इसका कंद माध्यम आकार का होता है । इसके पुष्प 1–2.5 से.मी. तक लंबे और दूधिया रंग के होते हैं । इसके पत्ते लंबे और पतले होते हैं। इनकी सबसे प्रमुख पहचान यह है कि इसके परिदल की पंखुड़ियाँ बेहद सूक्ष्म और पीले रंग की होती हैं और इनकी नली छोर पर फुली होती है। यह जाति महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट के ढलानों पर घास के बीच पाई जाती है।

11. *सिरोपेजिया महाबली* प्रभेद *हेमलतेय* (गवती खरपुडी)– यह एक छोटी शाकीय लता है, इसके पुष्प 6 से.मी. तक लंबे होते है । इनका रंग सफेद गुलाबी होता है । इसके पत्ते लंबे और पतले होते है । अपनी उपजाति से अलग इसके फूल आकार में छोटे होते है और इनपर घने बाल भी होते हैं । इनकी सबसे प्रमुख पहचान यह कि इसके परिदल की पंखुड़ियाँ छोटी और हरे रंग की होती हैं, और इनकी नली के छोर कुछ मात्रा में फुले हुये होते हैं । यह प्रभेद महाराष्ट्र के जुन्नर इलाके तक ही सीमित है ।

12. *सिरोपेजिया मीडिया* (गवती खरपुडी) – यह एक कठोर तने वाली लता है, इसके पुष्प 3 से.मी. तक लंबे तथा दूधिया रंग के होते हैं। परिदल की पंखुड़ियाँ बाहरी छोर पर बैंगनी रंग के होती हैं। इनकी सबसे प्रमुख पहचान यह की इसका पुष्प हनुमान की गदा के समान दिखता है । इसका परिदल बाहरी छोर से चौडा और भितरी छोर से सिकुडा होता है। इनकी पंखुड़ियाँ भी बहुत चौड़ी होती हैं । यह जाति महाराष्ट्र के तीन जिलों (पुणे, सातारा और अहमदनगर) तक ही सीमित है।

13. *सिरोपेजिया ऑक्युलाटा* (तनाची खरपुडी) – यह एक मजबूत लता वाला पौधा है। इसके पुष्प की लंबाई 6 से.मी. तक होती हैं एवं परिदल की पंखुड़िया हरे रंग की और नली भूरे रंग होती है। इनकी सबसे प्रमुख पहचान इसके परिदल के अनोखे गेहरे हरे रंग की पंखुड़ियों से होती है। इनकी

1. *सिरोपेजिया अनंती*, 2. *सिरोपेजिया अटेन्यूटा* 3. *सिरोपेजिया बलबोसा* प्रभेद *बलबोसा* 4. *सिरोपेजिया कोंकनेन्सिस*, 5. *सिरोपेजिया एवंसी*, 6. *सिरोपेजिया हिरसुटा* 7. *सिरोपेजिया हुबेरी*, 8. *सिरोपेजिया जंसीया–सिरोपेजिया लावी*, 10. *सिरोपेजिया मैकन्नी*, 11. *सिरोपेजिया महाबली* प्रभेद *हेमलतेय* 12. *सिरोपेजिया मीडिया* 13. *सिरोपेजिया ऑक्युलाटा* 14. *सिरोपेजिया ओडोराटा*, 15. *सिरोपेजिया पंचगनेंन्सिस*, 16. *सिरोपेजिया सह्याद्रीका*, 17. *सिरोपेजिया विनसीफोलिआ*

और एक पहचान यह की इसके परिदल की नली बाहरी छोर से कीप के समान और भितरी छोर से भारी मात्रा में फुली होती है। इसके परिदल की पंखुड़ियों पर घने बाल होते हैं। यह जाति महाराष्ट्र तक ही सीमित है। यह जाति निचले पहाडों के ढलानों पर झाड़ीयों के बीच पाई जाती है ।

14. *सिरोपेजिया ओडोराटा* (पिवली खरपुडी) – यह एक मजबूत लता वाला पौधा है। इसके पुष्प लगभग 3 – 4 से.मी. तक होते हैं। इसके परिदल की पंखुड़िया पीले रंग होती हैं। इनकी पहचान इनके परिदल के पंखुड़िया और नली की समान लंबाई से होती है। इनकी और एक प्रमुख पहचान यह की इसके परिदल से धीमी सुगंध आती है, जो सिरोपेजिया की किसी अन्य जाती में दिखाई नहीं देती। यह जाति महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान में पाई जाती है । इस जाति को लुप्त समझा गया था, लेकिन यह जाति अभी कुछ हद तक महाराष्ट्र के कोंकण में पाई जाती है ।

15. *सिरोपेजिया पंचगनेंन्सिस* (हाडसांधी खरपुडी) – यह एक 50 से.मी. ऊंची शाकीय जाति है। इसके पुष्प 3–4 से.मी. तक लंबे होते हैं। इसके पुष्प सफेद रंग के होते हैं और इनकी परिदल की पंखुड़ियाँ भीतर से गहरे हरे या काले रंग की होती है। इनकी सबसे प्रमुख पहचान यह की इनके परिदल की नली लंबी और पतली होती है और इनकी पंखुड़ियाँ आधे से.मी. से भी कम आकार की होती है । इसके परिदल की नली एकदम सीधी, कहीं से भी फुली नहीं होती हैं । यह जाति महाराष्ट्र के 1200 मी. से ऊंचे पहाडों के तीखें ढलानों पर चट्टानों के बीच पाई जाती है ।

16. *सिरोपेजिया सह्याद्रीका* (ढवली खरपुडी) – यह 100 से.मी. तक ऊंची शाकीय जाति है। इसका कंद बड़ा और बेडौल होता है। इसके पुष्प 5 से.मी. तक लंबे होते हैं। इसके पुष्प दूधिया रंग के होते हैं और इनकी परिदल की पंखुड़ियाँ अंदर से पीले या गेहरे रंग की होती है। इसके पत्ते चौड़े बादाम के आकार के होते हैं। इस जाति को अपने बडे आकार और मजबूती के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके परिदल की पंखुड़ियाँ छोटी मगर चौड़ी होती हैं। यह जाति महाराष्ट्र तक ही सीमित है और 1000 मी. से ऊंचे पहाडों पर पहुंच से बाहर की ढलानों पर चट्टानों के बीच पाई जाती है ।

17. *सिरोपेजिया विनसीफोलिआ* (खापर खुट्टी) – यह एक कोमल लता वाला पौधा है। इसके पुष्प 3–7 से.मी. तक लम्बे होते हैं, जो दूधिया रंग के होते हैं और उन पर गहरे रंग के धब्बे होते हैं। इस जाति के पुष्प ही इनकी प्रमुख पहचान है, इनके परिदल की पंखुड़ियाँ नली से बड़ी होती है। इनके परिदल की पंखुड़ियाँ बाहरी छोर से गहरे भूरे रंग की और भीतरी छोर से हरे रंग की होती हैं। इनकी प्रमुख पहचान यह की इसके परिदल बाहरी छोर से चौड़े और भीतरी छोर से पतले होते हैं। इसके परिदल की पंखुड़ियों पर घने बाल होते हैं। यह जाति महाराष्ट्र तक ही सीमित है।

आओ पर्यावरण बचायें, धरती माँ का कर्ज चुकायें ।

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभयारण्य की वानस्पतिक विविधता

जे. जयंती और जीवन सिंह जलाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

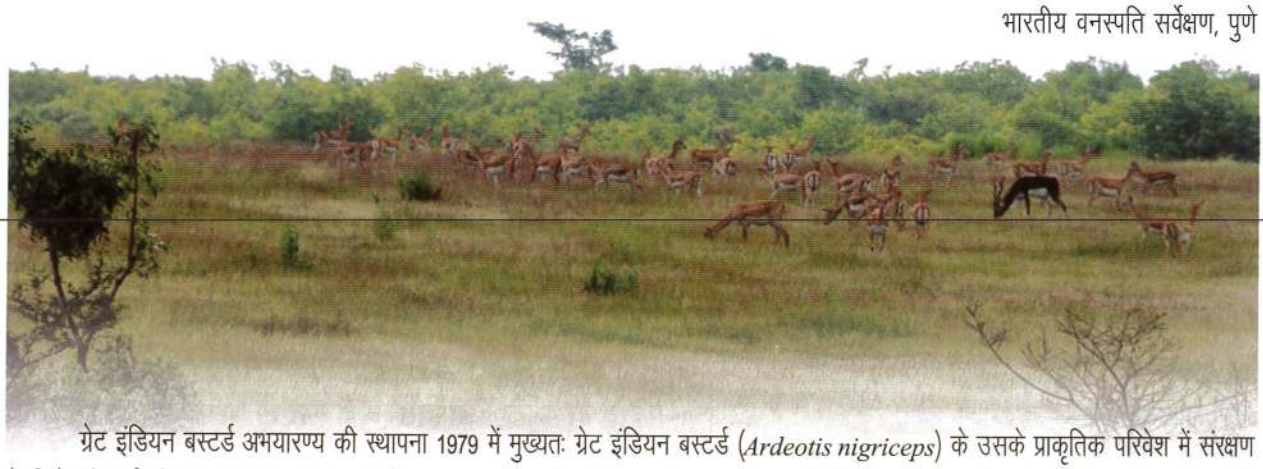

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभयारण्य की स्थापना 1979 में मुख्यतः ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (*Ardeotis nigriceps*) के उसके प्राकृतिक परिवेश में संरक्षण के लिये की गई थी। यह अभयारण्य भारत के महाराष्ट्र राज्य के शोलापुर और अहमदनगर जिलें में 17°22'17" से 18°54'42" उत्तर अक्षांश और 74°23' 34" से 76°15'01" पूर्व देशांतर के मध्य 1,222 कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। भौगोलिक रूप से यह भाग डेक्कन प्रायद्वीप में आता है।

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड को महाराष्ट्र की स्थानीय भाषा मराठी में "मालडोक" के नाम से जाना जाता है, यह एक शुतुरमुर्ग की तरह का पक्षी है, जो आमतौर पर अर्ध शुष्क घास के मैदानों और रेगिस्तान में पाया जाता है। यह भारतीय उपमहाद्वीप का एक स्थानिक पक्षी है। इसे भारतीय वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूची–एक में रखा गया है। अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) ने अपनी रेड डाटा सूची में इसको गंभीर खतरे वाली जाति का दर्जा दिया है। महाराष्ट्र में इस पक्षी की संख्या लगभग 13 के आस पास आंकी गयी हैं, जो कि सिर्फ इसी अभयारण्य में पाये जाते हैं, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड पहले भारत में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में पाया जाता था, परन्तु आज यह आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान के सीमित क्षेत्रों तक ही रह गया है।

ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभयारण्य के लहरदार ढलान, झाड़ीयों, शुष्क और अर्ध शुष्क घास के मैदान इस पक्षी के लिये एक उत्तम आवास बनाते हैं, इसके अलावा इस अभयारण्य में कृष्णमृग व विभिन्न प्रकार के पक्षियों की भी अच्छी खासी संख्या है। इस अभयारण्य में सबसे कम वर्षा, कम नमी, ज्यादा तापमान और उच्च वाष्पीकरण रहता है, जिसके कारण यह महाराष्ट्र के सूखा क्षेत्र के अंतर्गत आता है। यह अभयारण्य सर्दी और गर्मी के माह दिसम्बर से जून की अवधि के दौरान सूखा रहता है, केवल मानसून के दौरान पहली बौछार के बाद यह हरा भरा दिखायी देने लगता है। इस दौरान यहाँ विभिन्न प्रकार के पौधों की जातियाँ दिखने को मिलती हैं। यहाँ पाये जाने वाली कुछ सामान्य पेड़ों की जातियाँ जैसे की*अकेशिया निलोटिका, अकेशिया कटेचु, केपेरिस डेसिडुआ, केसिया* और *माईमोसा हमाटा* सामान्य शाकिय जातियां जैसे *एसचोनोमेनि इंडिका, अल्सिकार्पस वागिनेलिस, बायोफायट्म सेन्सिटिवम, क्लेओम विस्कोसा, ग्लोसोकार्डेया बोसवलिआ, इंडिगोफेरा कार्डफोलिया* इत्यादि। घास की जातियों में *अप्लुन्डा म्युटीका क्रायसोपोगोन फुल्वुस, सेम्पोपोगोन मार्टिनी, डाईकेथियम अन्युलेट्म, हेटरोपोगोन कनंटोरट्स, ईसकेमम अफ्रम, सेटारिआ प्यूमेला* इत्यादि प्रमुख रूप से इस अभयारण्य में पाई जाती हैं ।

वानस्पतिक विश्लेषण– भारतीय वनस्पतिक सर्वेक्षण द्वारा इस अभयारण्य की वानस्पतिक विविधता का आंकलन करने के लिये 2010 से 2013 तक सर्वेक्षण कार्य किया गया। इन अध्ययनों से पता चला कि यहाँ पर कुल 436 पादप जातियाँ पायी जाती हैं, जिनका ब्यौरा तालिका में दर्शाया गया है।

समूह	कुलों की संख्या	वंशों की संख्या	जातियों की संख्या
द्विबीज पत्री	56	190	317
एकबीज पत्री	11	69	119
कुल योग	67	259	436

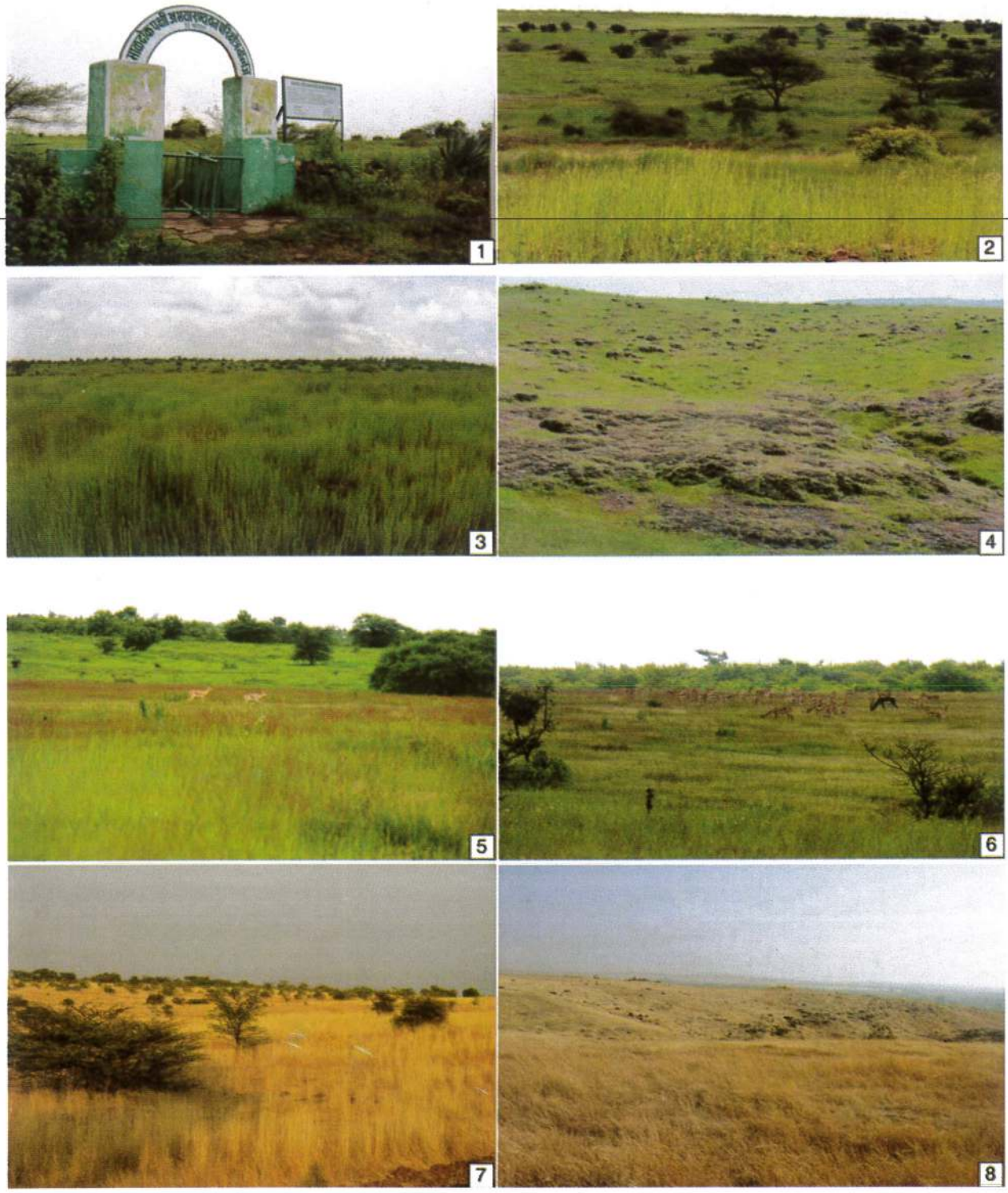

1. अभयारण्य का नान्नज क्षेत्र, 2 एवं 3. बरसात के मौसम में घास के मैदानों का एक विहगंम दृश्य, 4. पथरीले आवास का एक दृश्य, 5 एवं 6. अभयारण्य में अक्सर बरसात के मौसम में दिखायी देने वाले हिरणों का समूह, 7 एवं 8. सर्दियों के मौसम में दिखायी देने वाले सूखी घास के मैदानों का दृश्य.

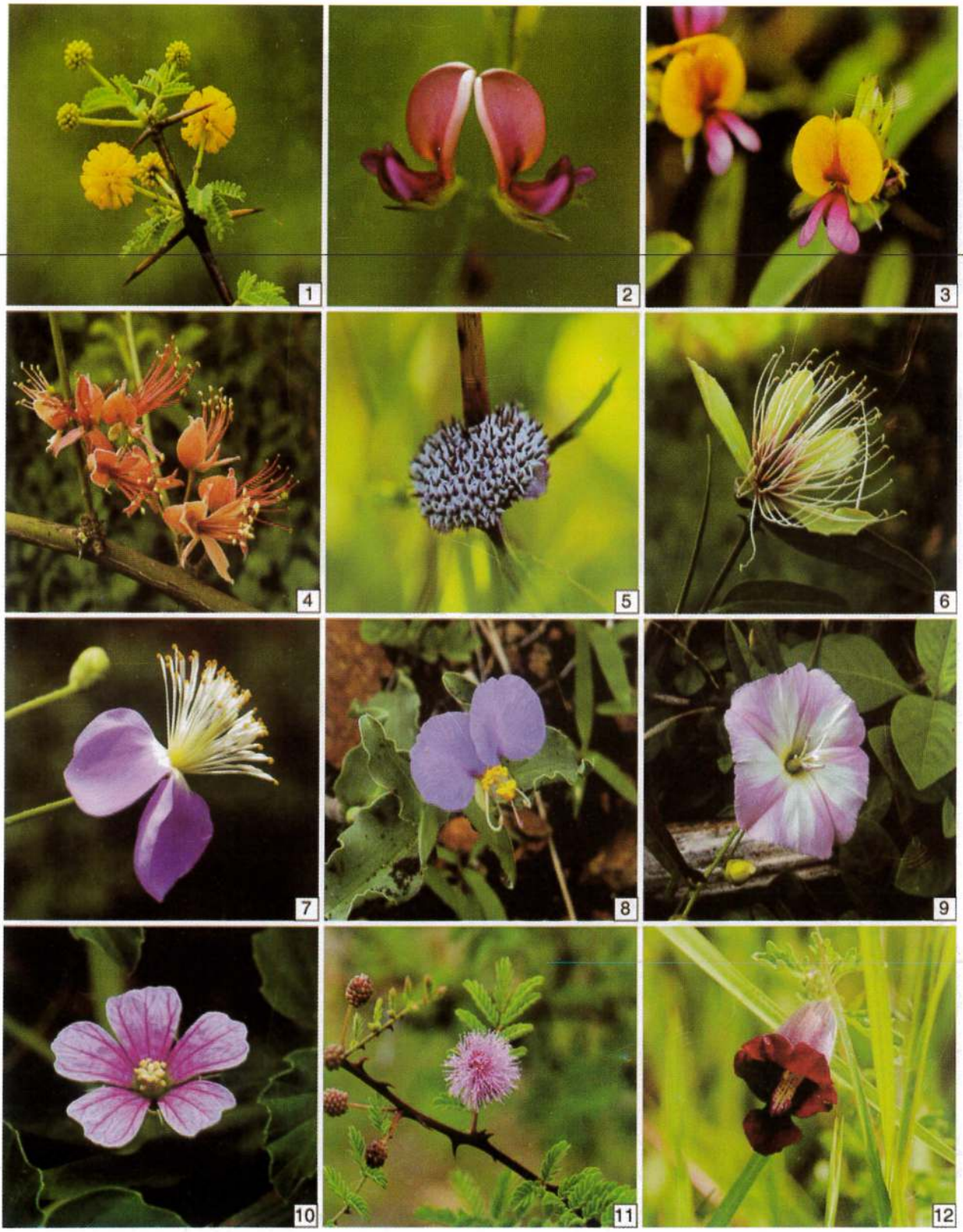

1.*अकेशिया निलोटिका*, 2. *अलसिकार्पस टेट्रागोनोलोबस*, 3. *अलसिकार्पस ग्लुमेसियस*, 4. *कसुलिआ अक्सीलेरिस*, 5. *केपेरिस डेसिडुआ*, 6. *केपेरिस डाईवेरिकाटा*, 7. *क्लेओम चेलिडोनी*, 8. *कोमोलिना ईरेक्टा*, 9. *कोनवोलबुलस आर्विनसस*, 10. *मेमोसा हमाटा* 11. *मोनसोनिया सेनिग्लेनसिस* 12. *सिसेमम लेन्सिनिटम*

यहाँ पर पाये जाने वाली वनस्पतियों में पोएसी की 67 जातियाँ, फेबेसी की 41 जातियाँ, सायप्रेसी की 41 जातियाँ तथा एस्टेरेसी की 30 जातियाँ मिलती हैं।

इस अभयारण्य में सभी प्रकार की वानस्पतिक विविधता दिखने को मिलती जैसे शाक, घास, पेड़, झाड़ियाँ और लतायें लेकिन सामान्य रूप से यहाँ शाकीय पौधों की विविधता अधिक है। पेड़ों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है, पेड़ों की केवल 30 जातियाँ ही इस अभयारण्य में मिलती हैं, जिसमें से *अकेशिया* जाति का प्रतिनिधित्व अधिक है, क्योंकि अर्द्ध शुष्क पारिस्थितिकी की विशेषता है कि ऐसी जगह बबूल का प्रतिनिधित्व बहुत ज्यादा होता है।

घास की जातियाँ – घास की यहाँ 67 जातियाँ पायी जाती हैं, जो इस पारिस्थितिकी तंत्र के प्रमुख घटकों में से एक हैं। इनमें से 24 घास की जातियाँ जो इस अभयारण्य की प्रमुख चारा जातियों में से एक हैं, वे इस प्रकार हैं *अप्लुडा मुटिका , बोथ्रियोक्लोआ पर्टिओसा, सेनक्रर्श सेटिजेरस, क्लोरिस गयाना, सायनोडोन डेक्टायलोन, डेक्टायलोक्टनीयम एजेप्टिएक्म, डायकेन्थियम फोवीलेट्म, डिजीटारिया टरनाटा, इकिनोकोला कोलोनम, एलुसेन इंडिका, इराग्रोस्ट्रीस पायलोसा, इराग्रोस्ट्रीस टेनेला, इराग्रोस्ट्रीस विस्कोसा, हेटेरोपोगोन कन्टार्ट्स, मेलेनोसेन्क्रिस जक्वियओमोन्टाई, ओराईजा सटाइवा, पेनिकम हिपोथ्रिक्स, पेनिकम कर्विफ्लोरम, पेसपलिडीयम फ्लेविडम, पेनिसेट्म पेडिसलेट्म, पेनिसेट्म पर्प्युरिअम, सेहिमा एस्कैमओएडिस, स्पोरोबोलौस इंडिकस, टेइट्रापोगोन टेनलअस* आदि ।

स्थानिक जातियाँ– सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि इस अभयारण्य की कुल 436 पादप जातियों में से 25 जातियाँ स्थानिक हैं, जो इस प्रकार से है– *क्लेओम सिम्प्लिसिफोलिया, क्रोटोलेरिया फिलिप्स, क्रोटोलेरिया वेसटिटा, विगना इंडिका, हार्डविकीआ बिनाटा, डाईक्रोइस्टाकिस सिनेरिआ* प्रभेद *इंडिका, निओनोटिस मोन्थोलोनाई, ग्लोसोकाड्रिया बोसवालिआ, ट्राईकोलिपिस रेडिकैन्स, हेमिग्रैफिस युरेन्स, यूर्फोबिआ नोटोप्टेरा, एरिस्टीडा रिडेक्टा, एरिस्टीडा स्टोक्साई, इराग्रोस्टिऐल्ला ब्रैकिफाइला, ईसचेनि बोराई, ईसकेमम एफ्रम, आईसिलिमा अन्थ्रोफोडोईस,* लोफोपोगोन *ट्राईड्रेनटेटस, ओरोपिसियम रॉक्सब्रुघिऐनम, ओरोपिसियम विलोसुलम, स्पोडिपोगोन राईजोफोरस, ट्रैगस मोन्गोलोरम* और *ट्राईपोगोन जैक्युमोनसी*।

खेती योग्य पौधे– इस अभयारण्य क्षेत्र में 135 खेती योग्य जातियाँ भी पायी जाती हैं, कृषि की मुख्य फसलें चावल, ज्वार, बाजरा, दाल, कपास, गन्ना, मूंगफली, सूरजमुखी, हल्दी, प्याज, बैंगन, लौकी और अंगूर शामिल हैं ।

संकट एवं संरक्षण– दुनिया में घास के मैदान भले ही बड़े पैमाने पर फैले हों परन्तु आज ये उष्णकटिबंधीय वर्षावनों की तुलना में सबसे लुप्तप्रायः पारिस्थितिकी तंत्रों में से बनते जा रहे हैं। प्राकृतिक घास के मैदानों में तेजी से गिरावट के कई कारण हैं। अति चराई व फसलों के लिए भूमि का समाशोधन इस पारिस्थितिकी तंत्र के लिए मुख्य खतरा है। आज दुनिया में लगभग 16 प्रतिशत उष्णकटिबंधीय घास के मैदानों को कृषि या शहरी विकास के लिये उपयोग किया जा रहा है। ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभयारण्य को महाराष्ट्र में पिछले 30 वर्षों के दौरान तेजी से औद्योगिकीकरण और मानव आबादी में वृद्धि का सामना करना पड़ रहा है। कृषि के लिए एवं नये चरागाहों से इस अभयारण्य को दिन प्रतिदिन दबाब का सामना करना पड़ रहा है। कृषि पद्धतियों में बदलाव के कारण जैसे मानसूनी फसल ज्वार और बाजरा की जगह गन्ने और अंगूर की खेती की जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप बस्टर्ड आवास को खतरा पैदा हो रहा है, क्योंकि गन्ने और अंगूर की खेती बस्टर्ड के लिए उपयुक्त फसल नहीं है।

वासस्थान में गिरावट और निकट भविष्य में बस्टर्ड के विलुप्त होने की प्रबल संभावना को देखते हुए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा बस्टर्ड को बचाने के लिए जाति उनमूलन कार्यक्रम की शुरूआत की है। इस कार्यक्रम में एक टास्क फोर्स गठित की गई है, जो कि बस्टर्ड और उनके निवास के संरक्षण के लिए एक कार्य योजना तैयार करेगी । उपयुक्त वासस्थान की पहचान करना और अभयारण्य क्षेत्र के विशिष्ट इलाकों में संरक्षण के उपायों को प्राथमिकता देने की जरुरत है – जैसे गंगेवाडी और चापडगांव जो सामान्य रूप से उपयुक्त क्षेत्रों में से है ऐसे क्षेत्रों के संरक्षण पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। नान्नज, मार्डी, करंबा, अकोलेकाटी क्षेत्रों के संरक्षण के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ग्लिरिसीडिआ, नीम और यूकेलिप्ट्स जैसे वृक्षों का रोपण बस्टर्ड आवास के लिए खतरनाक साबित हो रहा है, इसके अलवा अन्य आक्रमक पौधों जैसे *पार्थेनियम हेटरोफोरस* और *लेन्टाना कमारा* इस अभयारण्य में तेजी से फैल रहे हैं।

अभयारण्य के आस पास रहने वाले लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने की जरूरत है। बस्टर्ड संरक्षण में पहल करने के लिए पारिश्रमिक और पुरस्कार दिया जाना चाहिए, जिससे कि स्थानीय लोगों का बस्टर्ड के प्रति संरक्षणात्मक रवैया बने। तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण और बढ़ती आवश्यकताओं के कारण घास के मैदानों पर भारी पारिस्थितिकीय दबाब है। आम जनमानस के मन में एक अवधारणा ये भी है कि घास के मैदान सिर्फ एक बंजर भूमि हैं, आज इनको संरक्षण करने के लिये तथा इनके पारिस्थितिकी तंत्र को समझने के लिए अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद के वानस्पतिक उद्यान की पादप विविधता

राजीव कुमार सिंह, विनीत कुमार सिंह एवं एस. एल. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अन्तर्गत भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद की स्थापना 31 जुलाई, 1962 को हुई थी। इसके प्रथम कार्यालयाध्यक्ष तत्कालीन वनस्पतिज्ञ डा. जी. पाणिग्राही थे। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र की स्थापना का इतिहास बहुत रोचक है,जिसका प्रारम्भ 13 अप्रैल, 1954 को कोलकाता में केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला की स्थापना से होता है। स्थापना के करीब 7 महीने बाद ही 2 दिसम्बर, 1954 को इसे लखनऊ स्थानान्तरित कर दिया गया था, परन्तु लखनऊ में प्रायोगिक उद्यान हेतु भूमि उपलब्ध न होने के कारण इसे पुनः 4 दिसम्बर, 1957 को इलाहाबाद में एक शताब्दी पुराने आयुक्त कार्यालय के भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया क्योंकि यहाँ पर प्रायोगिक उद्यान हेतु 7 एकड़ भूमि उपलब्ध थी। करीब 5 वर्षों के पश्चात् सन् 1962 में केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला को फिर से हावड़ा में स्थानान्तरित कर दिया गया एवं उसके स्थान पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र की स्थापना हुई।

लगभग 43 वर्षों के बाद 19 नवम्बर, 2004 में यह कार्यालय उसी परिसर में एक नवनिर्मित भवन में स्थानान्तरित हुआ। वर्तमान कार्यालय परिसर से सटा हुआ वानस्पतिक उद्यान लगभग 2.5 एकड़ में विस्तारित है। यह उद्यान प्राकृतिक रुप से निवास करने वाले अनेक वृक्षों, झाड़ियों, शाक एवं लताओं का आलय है। उत्तर भारत की दो प्रमुख नदियाँ गंगा एवं यमुना के तट पर बसे प्रयाग नगरी में यह उद्यान 25° 28′ उत्तरी अक्षांश एवं 81° 51′ पूर्वी देशान्तर के साथ ही समुद्र तल से 180 मी. की ऊँचाई पर अवस्थित है।

इस उद्यान में सभी प्रकार के पादपों की लगभग 633 जातियाँ पाई जाती है, जिनका संबंध पुष्पीय पादपों के 112 कुलों से है। इन 663 जातियों में 182 छोटे एवं बड़े वृक्ष, 169 झाड़ियाँ, 36 छोटी झाड़ियाँ और 246 शाकीय पौधों की जातियॉ पाई जाती है (इनमें 10 जलीय शाक भी शामिल हैं)। साथ ही इन्हीं में से लगभग 70 जातियॉ विभिन्न प्रकार के लताओं की भी पाई जाती है। खरपतवारों की जातियों को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। उद्यान को पादपों के अनुसार विभिन्न इकाइयों में बांटा गया है, जैसे – गुलाब सम्भाग, औषधीय सम्भाग, हरित गृह, सजावटी पौधे, वनस्पति वाटिका (आरबोरेटम), विरल एवं लुप्तप्रायः सम्भाग आदि। उद्यान के औषधीय पादप भाग में रत्ती, बेल, घृतकुमारी, कालमेघ, मुसली की जातियॉ, सदाबहार, हुरहुर, सतावर, अग्निशिखा, कुचला, लक्ष्मणफल, सर्पगंधा, अश्वगंधा, पीपली, गिलोय आदि महत्वपूर्ण औषधीय पादपों को उगाया जाता है। साथ ही यह पादप विज्ञान एवं पौधों पर अध्ययन करने वाले लोगों के लिए गागर में सागर भरने का काम करता है। इसके अलावा विभिन्न प्रदेशों से महत्वपूर्ण पौधों के जर्मप्लाज्म को लाकर यहाँ उगाया भी जाता है।

इसके अतिरिक्त विरल एवं विलुप्ती के कगार पर पहुँच गये महत्वपूर्ण पादप जातियों का प्रवेशन, एकत्रीकरण, संर्वधन एवं संरक्षण किया जाता है। इस उद्यान के कुछ अत्यंत महत्व रखने वाले पादप हैं – उलट कमल, गुग्गुल, *फ्रेरिया इंडिका, फ्लेमिंजिया स्ट्रिकटा* उपजाति *टेरोकॉर्पस*, श्योनाक आदि। यहाँ पर सजावटी एवं आर्थिक रूप से उपयोग होने वाले पौधों का मनमोहक संग्रहण है।

प्रस्तुत लेख में इस उद्यान की वानस्पतिक विविधता को उनके कुल, वानस्पतिक नाम, प्रकृति, पुष्पन–फलन (फिनोलॉजी) में बेंथम–हूकर के वर्गीकरण के आधार पर वर्णित किया गया है।

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
डिलिनियेसी			
	डिलिनिया इंडिका	वृक्ष	मई – फरवरी
	डिलिनिया पेंटागायना	वृक्ष	नवम्बर – मार्च
एनोनेसी			
	एनोना म्यूरीकेटा	वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
	एनोना स्कायमोसा	झाड़ी	मई – जनवरी
	पॉलीएलथिया लॉगीफोलिया	वृक्ष	मार्च – सितम्बर
	पॉलीएलथिया सुबरोसा	छोटी झाड़ी	अप्रैल – दिसम्बर
मेनीस्पर्मेसी			
	सिसेमपिलॉस परेरा	लता झाड़ी	जुलाई – अक्टूबर
	काक्यूलस हिरस्यूटस	लता झाड़ी	अगस्त – अक्टूबर
	टिलियाकोरा एक्यूमिनेटा	लता झाड़ी	अप्रैल – दिसम्बर
	टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया	लता झाड़ी	जनवरी – मई

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
निमफिऐसी			
	निमफिया नोचाली	जलीय शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	निमफिया प्यूबिसेन्स	जलीय शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	निमफिया एब्रा	जलीय शाक	सम्पूर्ण वर्ष
निलम्बोनेसी			
	निलम्बो न्यूसीफेरा	जलीय शाक	मार्च – दिसम्बर
पेपावेरेसी			
	आर्जीमोन मेक्सिकाना	कटीली खरपतवार	सम्पूर्ण वर्ष
ब्रेसिकेसी			
	रोरीपा इंडिका	शाक	अप्रैल – जून
कैप्पारेसी			
	कैपेरिस सेपीएरिया	झाड़ी	मार्च – नवम्बर
	कैपेरिस जिलेनिका	झाड़ी	फरवरी – अगस्त
	क्लीओम गायनेन्ड्रा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	क्लीओम विसकोसा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	क्रेटेवा मैगना	वृक्ष	मार्च – अगस्त
वायोलेसी			
	हिबेन्थस एनीयार्स्मस	शाक	अप्रैल – सितम्बर
बिक्सेसी			
	बिक्सा ओरीलाना	छोटा वृक्ष	अगस्त – फरवरी
फ्लाक्वारसिएसी			
	सिसेरिया टोमेन्टोसा	वृक्ष	दिसम्बर – जून
	फ्लाक्वारसिया इंडिका	छोटा वृक्ष	दिसम्बर – अगस्त
पॉरटूलेकेसी			
	पॉरटूलाका क्वाड्रीफिडा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	पॉरटूलाका एफ्रा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	टेलिनम कैलीसिनम	शाक	जून – सितम्बर
क्लूसिएसी			
	कैलोफिलम इनोफिलम	वृक्ष	जनवरी – अक्टूबर
	मेसुआ फेरा	वृक्ष	जून – अक्टूबर
डिपटेरोकारपेसी			
	शोरिया रोबस्ता	वृक्ष	फरवरी – जुलाई
मालवेसी			
	अबेलमोसकस मोसकेटस	छोटी झाड़ी	अक्टूबर – दिसम्बर
	अब्यूटिलान इंडिकम	छोटी झाड़ी	सितम्बर – अप्रैल
	अलसिया रोजिया	शाक	मार्च – सितम्बर
	गेसिपियम हिरस्यूटम	छोटी झाड़ी	दिसम्बर – अप्रैल
	हिबिसकस कैनाबिनस	कटीली शाक	अगस्त – नवम्बर
	हिबिसकस रोजा–साइनेंसिस	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	हिबिसकस सबडेरीफोलिया	शाक	अगस्त – जनवरी
	हिबिसकस साइजोपिटेलस	झाड़ी	अप्रैल – सितम्बर
	हिबिसकस साइरिकस	झाड़ी	जुलाई – अक्टूबर
	मालवेस्ट्रम कोरोमेंडिलियानम	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	मालवाविसकस आरबोरियस	झाड़ी	जून – अक्टूबर
	सिडा एक्यूटा	शाक	सितम्बर – मई
	सिडा क्वाडेटा	शाक	सितम्बर – वनम्बर
	सिडा क्वार्डिफोलिया	शाक	सितम्बर – नवम्बर
	सिडा रॉम्बिफोलिया	शाक	जुलाई – दिसम्बर
	यूरेना लोबेटा	छोटी झाड़ी	अगस्त – दिसम्बर
	यूरेना साइन्यूटा	छोटी झाड़ी	अगस्त – दिसम्बर
बॉम्बाकेसी			
	अेडेनसोनिया डिजिटेटा	वृक्ष	अप्रैल – अक्टूबर
	बॉम्बेक्स सिबा	वृक्ष	फरवरी – मई
	सिबा पेन्टेन्ड्रा	वृक्ष	दिसम्बर – अप्रैल
स्टरक्यूलिएसी			
	अब्रोमा अंगस्टम	छोटा वृक्ष	जून – फरवरी
	डोमबेया मास्टेरसी	झाड़ी	जनवरी – अप्रैल
	गुआजुमा अलमीफोलिया	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
	हेलिक्ट्रस आइसोरा	झाड़ी	अप्रैल – जनवरी
	टेरोस्पर्मम असेरिफोलियस	वृक्ष	मार्च – दिसम्बर
	टेरोस्पर्मम सुबेरिफोलियम	वृक्ष	जून – फरवरी
	टेरीगाटा एलेटा	वृक्ष	दिसम्बर – मार्च
	स्टरक्यूलिया फोयटिडा	वृक्ष	फरवरी – अगस्त
	स्टरक्यूलिया यूरेन्स	वृक्ष	अक्टूबर – अप्रैल
	स्टरक्यूलिया विलोसा	वृक्ष	दिसम्बर – सितम्बर
टिलिएसी			
	कॉरकोरस अस्टुआन्स	शाक	अगस्त – फरवरी
	ग्रिविया एशियाटिका	छोटा वृक्ष	नवम्बर – सितम्बर
	ग्रिविया रोथाई	छोटा वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
	ग्रिविया सेरुलाटा	वृक्ष	अप्रैल – जनवरी
	ग्रिविया टिलिफोलिया	वृक्ष	जून – अक्टूबर
इलियोकारपेसी			
	इलियोकारपस स्फेरिकस	वृक्ष	अगस्त – फरवरी
मलपिगिएसी			
	गालफिमिया ग्रोसीलिस	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	हिप्टेज बंगालेन्सिस	लता झाड़ी	जनवरी – अप्रैल
	मालपीगिया काकसिगेरा	झाड़ी	अक्टूबर – दिसम्बर
	मालपीगिया ग्लेब्रा	झाड़ी	जून – नवम्बर
जाइगोफिलेसी			
	ग्वायूकम ऑफीसीनेल	छोटा वृक्ष	मार्च – दिसम्बर
ऑक्जेलीडेसी			
	ऑक्जेलिस कार्नीकुलेटा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	ऑक्जेलिस कोरेम्बोसा	शाक	सितम्बर – मार्च
	ऑक्जेलिस देहरादूनेन्सिस	शाक	जून – नवम्बर
	बायोफायटम सेन्सिटिवम	शाक	अक्टूबर – जून

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
एवरहोएसी			
	एवेराहा कैरमबोला	वृक्ष	मई – अगस्त
बालसामिनेसी			
	इमपेसेंस बालसेमिना	शाक	जुलाई – सितम्बर
रुटेसी			
	एगिल मार्मेलास	वृक्ष	मार्च – दिसम्बर
	सिट्रस आरेन्सिफोलिया	झाड़ी	पुष्पन–फलन नहीं
	सिट्रस लिमॉन	झाड़ी	अप्रैल – सितम्बर
	सिट्रस मैक्सिमा	छोटा वृक्ष	मई – अक्टूबर
	लिमोनिया एसिडिसिमा	वृक्ष	मार्च – दिसम्बर
	मुराया क्योनगी	झाड़ी	मार्च – जुलाई
	मुराया पेनीकुलेटा	वृक्ष	फरवरी – जुलाई
	नारिंगी क्रेनुलाटा	वृक्ष	मार्च – अगस्त
	रेवेनिया स्पेक्टाबिलिस	झाड़ी	फरवरी – मई
	रुटा ग्रेवीओलेंस	शाक	सितम्बर – फरवरी
	टोडेलिया एशियाटिका	झाड़ी	सितम्बर – जनवरी
	ट्राइफेसिया ऑरेंटिओला	झाड़ी	फरवरी – मई
सिमारौबेसी			
	एलियेन्थस एक्सेलसा	वृक्ष	दिसम्बर – जुलाई
बरसेरेसी			
	कॉमीफोरा वाइटी	झाड़ी	फरवरी – नवम्बर
मेलिएसी			
	अजाडिरेक्टा इंडिका	वृक्ष	फरवरी – सितम्बर
	मिलिया एजाडिरेक	वृक्ष	मई – दिसम्बर
	स्वीसेनिया मेक्रोफिला	वृक्ष	अप्रैल – मार्च
	स्वीसेनिया महोगनी	वृक्ष	अप्रैल – नवम्बर
रहम्नेसी			
	वेंटिलागो डेन्टिकुलेटा	लता झाड़ी	सितम्बर – जून
	जिजीफस मॉरीसियाना	वृक्ष	सितम्बर – नवम्बर
	जिजीफस इनोप्लीया	झाड़ी	अगस्त – दिसम्बर
विटेसी			
	एमपेलोसिसस लेटीफोलिया	लता झाड़ी	मई – नवम्बर
	सिसस क्वाड्रेनगुलेरिस	लता झाड़ी	जून – जनवरी
	केरेसिया ट्राइफोलिया	लता झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	विटिस विनिफेरा	लता झाड़ी	मई – अगस्त
सैपिन्डेसी			
	कार्डियोस्पर्मम हेलीकाकाबम	शाक	अगस्त – सितम्बर
	डोडोनिया विसकोसा	झाड़ी	जनवरी – सितम्बर
	सपिन्डस इमारजिनेटस	वृक्ष	अक्टूबर – मई
	सपिन्डस लॉरीफोलियस	वृक्ष	सितम्बर – मार्च
	स्केलीकेरा ओलीओसा	वृक्ष	फरवरी – नवम्बर
एनाकार्डियेसी			
	एनाकार्डियम ऑक्सीडेन्टाले	छोटा वृक्ष	जनवरी – मई

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
	बुचानेनिया लेन्जन	वृक्ष	जनवरी – मई
	मैंगीफेरा इंडिका	वृक्ष	फरवरी – मई
	स्पॉनडियस पिन्नेटा	वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
मोरींगेसी			
	मोरींगा ऑलीफेरा	वृक्ष	फरवरी – जून
फैबेसी			
	अब्रस प्रिकेटोरियस	लता	अगस्त – मार्च
	एलसीकारपस मोनीलिफर	शाक	अगस्त – जून
	एलसीकारपस वेजीनेलिस	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	एटायलोसिया प्लेटीकार्पा	शाक	अगस्त – सितम्बर
	ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	वृक्ष	जनवरी – मई
	क्रिस्टिया वेस्परटीलियोनिस	शाक	अगस्त – सितम्बर
	क्लाइटोरिया टरनेसिया	लता शाक	जुलाई – मार्च
	क्रोटालेरिया स्पेक्टाबिलिस	छोटी झाड़ी	नवम्बर – जून
	क्यूलेन कारीलिफोलियम	शाक	अगस्त – दिसम्बर
	डलबर्जिया लेन्सीओलेरिया	वृक्ष	अप्रैल – जनवरी
	डलबर्जिया सीसू	वृक्ष	फरवरी – जून
	डेसमोडियम कॉनसीनम	झाड़ी	अगस्त – अक्टूबर
	डेसमोडियम डाइकोटोमम	शाक	सितम्बर – मई
	डेसमोडियम गैंगेटिकम	छोटी झाड़ी	जुलाई – अप्रैल
	डेसमोडियम ट्राइक्वेट्रम	छोटी झाड़ी	अगस्त – मार्च
	इरेथ्रिना सूबेरोसा	वृक्ष	मार्च – अप्रैल
	इरेथ्रिना वेराइगेटा	वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
	इरेथ्रिना वेसपरटीलियो	वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
	फेलेमिनगिया स्ट्रीक्टा	झाड़ी	मार्च – मई
	ग्लिरीसिडिया सेपियम	वृक्ष	फरवरी – मार्च
	हीमेटोजाइलम कमपेसियानम	छोटा वृक्ष	फरवरी – अप्रैल
	इंडोपीपटाडिनिया अवधेन्सिस	छोटा वृक्ष	अप्रैल – जुलाई
	लबलब परप्यूरियस	लता शाक	नवम्बर – अप्रैल
	लेथायरस ओडोरेटस	लता शाक	जनवरी – मार्च
	मिलिसया पेगूइन्सिस	वृक्ष	फरवरी – अप्रैल
	म्यूकूना प्रूरियेन्स	लता झाड़ी	सितम्बर – मई
	पाइसेम सटाइवम	लता शाक	दिसम्बर – अप्रैल
	पोंगेमिया पिन्नेटा	वृक्ष	जुलाई – फरवरी
	टेरोकार्पस मारसुपियम	वृक्ष	जुलाई – मार्च
	टेरोकार्पस सेंटालाइनस	वृक्ष	जुलाई – मार्च
	प्यूरेरिया ट्यूबरोसा	लता झाड़ी	फरवरी – अप्रैल
	सेसबेनिया ग्रेन्डीफ्लोरा	वृक्ष	सितम्बर – मार्च
	टेफरोसिया परप्यूरिया	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	टेरामनस लेबिऐलिस	लता शाक	अगस्त – अप्रैल
	ट्राइगोनेला फोइनम–ग्रेसियम	शाक	फरवरी – अप्रैल
	यूरेरिया लेगोपस	छोटी झाड़ी	जुलाई – सितम्बर
	विगना मूंगो	शाक	सितम्बर – दिसम्बर

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
विगना रेडियेटा	शाक	सितम्बर – दिसम्बर
विस्टेरिया साइनेन्सिस	लता झाड़ी	अप्रैल – अगस्त
सिसेलपिनिएसी		
बाउहिनिया एक्यूमिनेटा	वृक्ष	मार्च – सितम्बर
बाउहिनिया ब्लेकियाना	छोटा वृक्ष	नवम्बर – जनवरी
बाउहिनिया परप्यूरिया	वृक्ष	अक्टूबर – फरवरी
बाउहिनिया रेसीमोसा	वृक्ष	अप्रैल – जुलाई
बाउहिनिया रुफीसेन्स	छोटा वृक्ष	फरवरी – जुलाई
बाउहिनिया वेहलाई	लता झाड़ी	सितम्बर – जनवरी
बाउहिनिया वेराइगाटा	वृक्ष	जनवरी – मार्च
ब्राऊनिया कॉकसिनिया	वृक्ष	फरवरी – अप्रैल
सिसेलपिनिया कोरीएरिया	वृक्ष	मार्च – अगस्त
सिसेलपिनिया पुलचेराइमा	झाड़ी	फरवरी – नवम्बर
कासिया एलेटा	झाड़ी	अक्टूबर – मार्च
कासिया बाईकैप्सूलेरिस	झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
कासिया फिस्टूला	वृक्ष	अप्रैल – मई
कासिया जैवेनिका	वृक्ष	अप्रैल – मई
कासिया ऑक्सीडेन्टालिस	शाक	सितम्बर – मई
कासिया सिमिया	वृक्ष	सितम्बर – मई
कासिया सल्फ्यूरिया	छोटा वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
कासिया सुराटेन्सिस	वृक्ष	नवम्बर – फरवरी
कासिया टोरा	छोटी झाड़ी	अगस्त – अप्रैल
डेलोनिक्स रिजिया	वृक्ष	अप्रैल – अगस्त
गिलिडिटसिया ट्राइकेन्थस	झाड़ी	मार्च – जून
हार्डविकिया बाइनेटा	वृक्ष	अक्टूबर – अप्रैल
परकिनसोनिया एक्यूलिएटा	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
पेलटोफोरम टेरोकार्पम	वृक्ष	सितम्बर – अप्रैल
सराका अशोका	वृक्ष	ज्नवरी – जून
तमारिन्डस इंडिका	वृक्ष	दिसम्बर – जुलाई
मिमोसेसी		
अकेसिया आरीक्यूलीफारमिस	वृक्ष	अगस्त – मई
अकेसिया कटेचू	वृक्ष	अगस्त – मार्च
अकेसिया मैनगियम	वृक्ष	जनवरी – मई
अकेसिया निलोटिका	वृक्ष	अगस्त – अप्रैल
अडेननथेरा पेवोनिना	वृक्ष	मार्च – अगस्त
अलबिजिया लेबेक	वृक्ष	अप्रैल – जनवरी
अलबिजिया लूसीडियोर	वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
अलबिजिया प्रोसेरा	वृक्ष	मई – अगस्त
कैलीएन्ड्रा हिमेटोसिफेला	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
ल्यूसिनिया लेटीसिलका	वृक्ष	अगस्त – फरवरी
माइमोसा हिमालयाना	झाड़ी	अगस्त – मार्च
पारकिया तिमोरियाना	वृक्ष	दिसम्बर – मई
पिथेसेलोबियम डल्से	वृक्ष	जनवरी – जून
प्रोसोपिस सिनेरेरिया	वृक्ष	दिसम्बर – मई
समेनिया समन	वृक्ष	मार्च – जून
रोजेसी		
रोजा बारबोनियाना	झाड़ी	अक्टूबर – अप्रैल
रोजा हेलेनी	झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
रोजा मल्टीफ्लोरा	छोटी झाड़ी	सितम्बर – नवम्बर
रोजा ओडोरेटा	लता झाड़ी	मार्च – जून
क्रेसुलेसी		
केलेन्चू ब्लासफेलडियाना	शाक	जनवरी – मार्च
केलेन्चू डायग्रेमोन्टियाना	शाक	नवम्बर – जनवरी
केलेन्चू लोन्सियोलाटा	शाक	अक्टूबर – जनवरी
केलेन्चू पिन्नेटा	शाक	अक्टूबर – फरवरी
कॉम्ब्रेटेसी		
क्यूसक्वेलिस इंडिका	छोटी झाड़ी	मार्च – जुलाई
टरमिनेलिया अर्जुना	वृक्ष	अप्रैल – नवम्बर
टरमिनेलिया बेलिरिका	वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
टरमिनेलिया चेबुला	वृक्ष	मार्च – अक्टूबर
टरमिनेलिया कटापा	वृक्ष	मार्च – सितम्बर
मिरटेसी		
कैलिसटीमान सिट्रिनस	झाड़ी	फरवरी – जून
यूकेलिप्टस टेरेटीकॉरनिस	वृक्ष	अप्रैल – अगस्त
सिडियम फ्रिड्रिकैशथैलियानम	छोटा वृक्ष	नवम्बर – फरवरी
सिडियम गुआजावा	छोटा वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
सइजाइजियम कुमीनी	वृक्ष	अप्रैल – जुलाई
लेसीथिडेसी		
बैरिंगटोनिया एक्यूटएंग्यूला	वृक्ष	अप्रैल – नवम्बर
कैरया आरबोरिया	वृक्ष	मार्च – जुलाई
लिथरेसी		
लेजरस्ट्रोमिया इंडिका	झाड़ी	मई – अगस्त
लेजरस्ट्रोमिया पारवीफ्लोरा	वृक्ष	मई – अक्टूबर
लेजरस्ट्रोमिया स्पीसीओसा	वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
लाऊसोनिया इनरमिस	झाड़ी	अप्रैल – सितम्बर
प्यूनीकेसी		
प्यूनिका ग्रेनेटम	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
कैरीकेसी		
कैरिका पपाया	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
कुकुरबिटेसी		
काकसिनिया ग्रैन्डिस	लता झाड़ी	मार्च – दिसम्बर
कुकुमिस सटाइवस	लता शाक	मार्च – अक्टूबर
कुकरबिटा मैक्सिमा	लता शाक	मार्च – अगस्त
लेजनेरिया साइसेररिया	लता शाक	जुलाई – मई
लुफ्फा एक्यूटएंग्यूला	लता शाक	जुलाई – अक्टूबर
लुफ्फा सिलेंडरिका	लता शाक	जून – दिसम्बर

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
मोमारडिका चैरँसिया	लता शाक	जुलाई – अक्टूबर
ट्राइकोसैंथिस एंग्यूना	लता शाक	मई – अगस्त
बिगोनियेसी		
बिगोनिया पिक्टा	शाक	जुलाई – दिसम्बर
कैकटेसी		
ओपनसिया इलेटिआर	मासल झाड़ी	मार्च – सितम्बर
ओपनसिया डिलेनी	कटीली झाड़ी	फरवरी – जून
एपियेसी		
सेन्टेला एशियाटिका	शाक	फरवरी – नवम्बर
कोरिएन्ड्रम सटाइवम	शाक	दिसम्बर – अप्रैल
एरालियेसी		
पालीसियास बालबोरियाना	झाड़ी	जनवरी – मई
पालीसियास फ्रूटीकोसा	झाड़ी	पुष्पन–फलन नहीं
पॉलीसियास गुइलफोयलई	झाड़ी	पुष्पन–फलन नहीं
स्केफलेरा बेनूलोसा	छोटी झाड़ी	मई – नवम्बर
रुबिएसी		
एन्थोसिफेलस चाइनेन्सिस	वृक्ष	मई – फरवरी
कैटबेया स्पाइनोसा	झाड़ी	अप्रैल – अगस्त
काफिया बेंगालेंसिस	झाड़ी	मार्च – जून
काफिया अरेबिका	झाड़ी	मार्च – दिसम्बर
गारडिनिया गम्मीफेरा	झाड़ी	मार्च – नवम्बर
गारडिनिया जैसमीनोइडिस	झाड़ी	मार्च – अक्टूबर
गारडिनिया लैटिफोलिया	वृक्ष	मार्च – दिसम्बर
हमेलिया पेटेन्स	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
हाइमेनोडिकटिआन ओरीजेन्स	वृक्ष	जुलाई – फरवरी
इक्जोरा बारबेटा	झाड़ी	अप्रैल – दिसम्बर
इक्जोरा चाइनेन्सिस	झाड़ी	फरवरी – दिसम्बर
इक्जोरा काकसिनिया	झाड़ी	फरवरी – अप्रैल
इक्जोरा फिनलेसोनियाना	झाड़ी	मार्च – अप्रैल
इक्जोरा लुटिया	झाड़ी	फरवरी – मई
इक्जोरा सिंगापुरेन्सिस	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
मित्रगाइना पार्विफ्लोरा	वृक्ष	मार्च – अगस्त
मुसेन्डा फिलिपिका	झाड़ी	अप्रैल – सितम्बर
मिट्रागायना पार्वीफ्लोरा	वृक्ष	सितम्बर – फरवरी
पायडेरिया स्केनडेन्स	झाड़ी	अगस्त – दिसम्बर
पोर्टलेन्डिया ग्रैन्डिफ्लोरा	झाड़ी	मार्च – नवम्बर
रोनडेलिटिया ओडोरेटा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
एस्टरेसी		
इक्लिप्टा प्रोसट्रेटा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
इलिफैनटोपस स्केबर	शाक	अगस्त – जनवरी
गैलिनसोगा पार्वीफ्लोरा	शाक	अगस्त – फरवरी
नैफेलियम पेरीग्राइनम	शाक	दिसम्बर – मार्च
हेलियन्थस एनऊस	शाक	अगस्त – मार्च
स्पिलेथस एसमेल्ला	शाक	अगस्त – मई
टेजिटस एरेक्टा	शाक	दिसम्बर – अप्रैल
टेजिटस पटुला	शाक	अक्टूबर – मार्च
वेडोलिया चाइनेन्सिस	शाक	मार्च – सितम्बर
जैनथियम इंडिकम	शाक	मार्च – दिसम्बर
प्लमबेगीनेसी		
प्लमबेगो जिलेनिका	छोटी झाड़ी	अगस्त – जनवरी
प्राइमुलेसी		
एनागैलिस आरवेन्सिस	शाक	नवम्बर – अप्रैल
मिरसीनेसी		
आरडिसिया सोलेनेसिया	वृक्ष	अप्रैल – अक्टूबर
थेओफरास्टेसी		
जैकुनिया रुसीफोलिया	झाड़ी	अप्रैल – जुलाई
सैपोटेसी		
मधुका लॉगीफोलिया	वृक्ष	फरवरी – जुलाई
मैनिलकारा हेक्सेन्ड्रा	वृक्ष	अक्टूबर – मई
मैनिलकारा जपोटा	छोटा वृक्ष	अक्टूबर – अप्रैल
माइमूसोप्स एलंगी	वृक्ष	अप्रैल – अक्टूबर
इबेनेसी		
डायोसपायरस मालाबेरिका	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
डायोसपायरस मिलेनेजायलॉन	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
ओलिऐसी		
जैसमिनम आरबोरिसेन्स	झाड़ी	मार्च – मई
जैसमिनम ग्रैन्डिफ्लोरम	झाड़ी	नवम्बर – फरवरी
जैसमिनम सैमबैक	झाड़ी	मार्च – जुलाई
निकटेन्थस आरबार–ट्रिसटिस	छोटा वृक्ष	सितम्बर – फरवरी
एपोसाइनेसी		
एलामैन्डा कैथारटिका	झाड़ी	फरवरी – सितम्बर
एल्सटोनिया मैक्रोफिला	वृक्ष	जुलाई – दिसम्बर
एल्सटोनिया स्कोलेरिस	वृक्ष	दिसम्बर – मार्च
कैरिसा कैरेन्डस	झाड़ी	अप्रैल – अक्टूबर
कैरिसा कॉनजेस्टा	झाड़ी	मई – नवम्बर
कैथरेन्थस रोजीयस	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
होलारिना प्यूबिसेन्ट	वृक्ष	मई – फरवरी
काप्सिया फ्रूटिकोसा	झाड़ी	मई – दिसम्बर
निरीयम ओलीयन्डर	झाड़ी	अप्रैल – जनवरी
प्लूमेरिया एक्यूमिनेटा	छोटा वृक्ष	मार्च – अक्टूबर
प्लूमेरिया अल्बा	छोटा वृक्ष	मार्च – सितम्बर
प्लूमेरिया रुब्रा	छोटा वृक्ष	मार्च – नवम्बर
रॉऊलफिया सरपेन्टाइना	छोटी झाड़ी	मई – सितम्बर
रॉऊलफिया ट्रेटाफिला	छोटी झाड़ी	अप्रैल – जून
टेबरनेमोन्टाना डाइवेरीकेटा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
थिविसिया पेरुवियाना	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
राईटिया आरबोरिया	वृक्ष	मार्च – जून
राईटिया टिंकटोरिया	वृक्ष	मार्च – अक्टूबर
एस्कलेपिडिएसी		
एस्कलेपियास क्यूरेसेविका	छोटी झाड़ी	अप्रैल – अक्टूबर
कैलोट्रोपिस गाइजेंसिया	झाड़ी	अक्टूबर – जुलाई
कैलोट्रोपिस प्रोसेरा	झाड़ी	मार्च – अगस्त
क्रिपटोलेपिस बुचनानी	झाड़ी	मई – फरवरी
ड्रिगिया वालूविलिस	लता झाड़ी	जून – फरवरी
फेरेरिया इंडिका	शाक	सितम्बर – जनवरी
जिमनिमा हिरसुटम	झाड़ी	अप्रैल – जुलाई
जिमनिमा सिलवेसट्री	झाड़ी	अक्टूबर – दिसम्बर
हेमीडेसमस इंडिकस	झाड़ी	अगस्त – जनवरी
लेप्टाडिनिया रेटीकुलेटा	झाड़ी	जुलाई – अप्रैल
टायलोफोरा इंडिका	छोटी झाड़ी	जून – सितम्बर
लोगानिएसी		
स्ट्राइकनस नक्शवोमिका	वृक्ष	मार्च – जनवरी
बोरागीनेसी		
कार्डिया डाइकोटोमा	वृक्ष	मार्च – अगस्त
हिलियोट्रोपियम इंडिकम	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
कॉनवॉल्वुलेसी		
आरजिरिया नरवोसा	लता झाड़ी	अगस्त – अप्रैल
आईपोमिया बटाटस	शाक	अक्टूबर – दिसम्बर
आईपोमिया कार्निया	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
कसक्यूटेसी		
कसक्यूटा रिफलेक्सा	शाक	अक्टूबर – अप्रैल
सोलेनेसी		
ब्रनफेलसिया अमेरिकाना	झाड़ी	मार्च – नवम्बर
सेस्ट्रम डाइयूरेनम	झाड़ी	मार्च – अगस्त
सेस्ट्रम नॉक्टूरनम	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
धतूरा इनोक्सिया	छोटी झाड़ी	जुलाई – जनवरी
धतूरा मेटल	छोटी झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
धतूरा स्ट्रामोनियम	छोटी झाड़ी	अगस्त – दिसम्बर
निकोसियाना प्लमबाजिनीफोलिया	शाक	सितम्बर – मई
सोलेनम डाइफाइलम	झाड़ी	मार्च – सितम्बर
सोलेनम ग्रेन्डिफ्लोरम	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
सोलेनम इनकैनम	छोटी झाड़ी	जनवरी – मई
सोलेनम नाइग्रम	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
सोलेनम परप्यूलिनीयटम	शाक	दिसम्बर – मई
सोलेनम टॉरवम	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
सोलेनम वायोलेसियम	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
सोलेनम विरजिनियानम	छोटी झाड़ी	अगस्त – जून
विदानिया सोमनीफेरा	छोटी झाड़ी	अक्टूबर – मई

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
एस्क्रोफुलेरीएसी		
एन्टीरहिनम मेजस	शाक	दिसम्बर – फरवरी
बकोपा मोनरी	शाक	जुलाई – मार्च
रुसेलिया इक्यूसिटीफोरमिस	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
स्कोपेरिया डलसिस	शाक	जुलाई – दिसम्बर
बिग्नोनिएसी		
बिगनोनिया एलिएसिया	लता झाड़ी	जुलाई – मार्च
क्रेससेन्सिया क्यूजेट	वृक्ष	मार्च – जुलाई
डॉलीकेनड्रोने स्पेथेसिया	वृक्ष	अप्रैल – सितम्बर
फर्ननेडोआ एडिनोफिला	वृक्ष	अगस्त – अप्रैल
काइजेलिया अफ्रीकाना	वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
मैकफैडिना यंगुस–काटी	लता झाड़ी	फरवरी – अगस्त
मिलिंगटोनिया होर्टटेन्सिस	वृक्ष	अक्टूबर – मई
ओरोजाइलम इंडिकम	वृक्ष	जून – मार्च
पारमेन्टियरा सेरीफेरा	छोटा वृक्ष	जून – दिसम्बर
पायरोस्टीगीया वेनूस्टा	कटीली झाड़ी	अक्टूबर – अप्रैल
रेडरमेकेरा साइलोकार्पा	वृक्ष	फरवरी – अक्टूबर
स्पेथोडिया कैम्पेनूलाटा	वृक्ष	जुलाई – दिसम्बर
टेबेबुआ एवेलानडी	वृक्ष	मार्च – मई
टेबेबुआ क्राइसेन्था	छोटा वृक्ष	फरवरी – जून
टेबेबुआ पैलिडा	वृक्ष	मार्च – जुलाई
टेबेबुआ पालमेरी	छोटा वृक्ष	फरवरी – जून
टेकोमा गाऊडीचाऊडी	झाड़ी	फरवरी – जुलाई
टेकोमा स्टेन्स	झाड़ी	फरवरी – अक्टूबर
पेडालिएसी		
मारटिनिया एनुआ	शाक	अगस्त – दिसम्बर
एकॉनथेसी		
एंड्रोग्राफिस पेनीकुलेटा	शाक	दिसम्बर – जुलाई
बारलेरिया क्रिस्टाटा	छोटी झाड़ी	अक्टूबर – मार्च
बारलेरिया लुपुलिना	झाड़ी	अक्टूबर – जून
बारलेरिया प्रायोनाइटिस	झाड़ी	अक्टूबर – मई
बेलोपेरोन गटाटा	झाड़ी	जुलाई – दिसम्बर
क्रोसेन्ड्रा इनफंडीबुलीफॉर्मिस	छोटी झाड़ी	जुलाई – अक्टूबर
डिप्टेराकेन्थस प्रोस्ट्रेटस	शाक	जुलाई – दिसम्बर
एलीट्रेरिया एकुलिस	शाक	अक्टूबर – जनवरी
इरेथ्रिमम नरवोसम	झाड़ी	दिसम्बर – मई
इरेथ्रिमम परप्यूरासेन्स	छोटी झाड़ी	अक्टूबर – अप्रैल
हाइग्रोफिला आऊरीक्यूलेटा	शाक	अक्टूबर – मार्च
जसटिसिया अधाटोडा	झाड़ी	दिसम्बर – मार्च
जसटिसिया जेनडारुसा	झाड़ी	मार्च – अगस्त
पेरिसट्रोफे पानिकुलेटा	शाक	अगस्त – मार्च
रुइलिया टयूबरोसा	शाक	अगस्त – अप्रैल
थुनबर्जिया एलाटा	लता झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
	थुनबर्जिया इरेक्टा	झाड़ी	सितम्बर – फरवरी
	थुनबर्जिया ग्रैन्डिफ्लोरा	लता झाड़ी	मार्च – अक्टूबर
वरबिनेसी			
	क्लीरोडेन्ड्रम चाइनेंस	झाड़ी	मार्च – अक्टूबर
	क्लीरोडेन्ड्रम इंडिकम	झाड़ी	अप्रैल – दिसम्बर
	क्लीरोडेन्ड्रम इनरमी	झाड़ी	मई – दिसम्बर
	क्लीरोडेन्ड्रम सेरेटम	झाड़ी	जुलाई – नवम्बर
	डुरान्टा रिपेन्स	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	मेलाइना आरबोरिया	वृक्ष	फरवरी – जुलाई
	मेलाइना फिलीपेन्सिस	झाड़ी	अप्रैल – अक्टूबर
	होम्सकियोडिया सेन्यूनिया	झाड़ी	नवम्बर – जून
	लेन्टाना कमारा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	लेन्टाना मोन्टीविडेन्सिस	झाड़ी	मार्च – अगस्त
	पेट्रिया वोलूविलिस	झाड़ी	फरवरी – जनवरी
	टेक्टोना ग्रैन्डिस	वृक्ष	अगस्त – जनवरी
	वाइटेक्स निगण्डु	झाड़ी	जून – दिसम्बर
लेमीएसी			
	कोलियस अबोइनिकस	शाक	फरवरी – जुलाई
	कोलियस स्कूटीलेरीओइडिस	छोटी झाड़ी	सितम्बर – मई
	हिप्टिस सुआवियेन्स	छोटी झाड़ी	अक्टूबर – जनवरी
	ल्यूकास असपरा	शाक	जुलाई – मार्च
	मेन्था आरवेन्सिस	शाक	जून – दिसम्बर
	निपेटा ग्रेसीलीफ्लोरा	छोटी झाड़ी	जनवरी – मार्च
	ओसिमम बेसीलीकम	शाक	अगस्त – फरवरी
	ओसिमम टेनूइफ्लोरम	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	आर्थोसाइफान पैलिडस	शाक	जुलाई – नवम्बर
	सालविया एजिप्टिका	छोटी झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
निक्टाजिनेसी			
	बोयरहाविया डिफ्यूजा	शाक	अगस्त – मार्च
	बोगेनविलिया ग्लेब्रा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	बोगेनविलिया स्पेकटाविलिस	झाड़ी	फरवरी – जून
	कॉमीकारपस चाइनेन्सिस	शाक	अगस्त – अप्रैल
	मिराबिलिस जलापा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
अमरेन्थेसी			
	अकाइरेन्थस असपरा	शाक	अगस्त – अप्रैल
	अर्वा लेनाटा	शाक	नवम्बर – मार्च
	अल्टरनेनथेरा सिसेलिस	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	अमरेन्थस विरीडिस	शाक	अगस्त – मई
	सिलोसिया अरजेन्टिया	शाक	अगस्त – दिसम्बर
	गोमफ्रिना ग्लोबोसा	शाक	अगस्त –दिसम्बर
चिनोपोडिएसी			
	चिनोपोडियम अल्बम	शाक	अक्टूबर – मार्च
बसेलाएसी			
	बसेला अल्बा	शाक	मार्च – दिसम्बर
फाइटोलेकेसी			
	रिविना हयूमिलिस	शाक	अगस्त – जनवरी
पॉलीगोनेसी			
	ऐन्टीगोनन लेप्टोपस	लता शाक	जुलाई – दिसम्बर
	पॉलीगोनम ग्लेब्रम	शाक	सितम्बर – फरवरी
पाइपरेसी			
	पेपरोमिया पेलूसिडा	शाक	अगस्त – दिसम्बर
	पाइपर लॉगम	छोटी झाड़ी	सितम्बर – मार्च
लाऊरेसी			
	लिटसिया ग्लूटिनोसा	छोटा वृक्ष	मार्च – नवम्बर
लॉरेनथेसी			
	डेनड्रोपथी फलकटा	झाड़ी	नवम्बर – अप्रैल
सेंटालेसी			
	संटालम एल्बम	छोटा वृक्ष	अक्टूबर – अप्रैल
यूफोर्बियेसी			
	अकालिफा इंडिका	शाक	अगस्त – फरवरी
	अकालिफा विलकेसियाना	झाड़ी	जनवरी – अगस्त
	ब्रेनिया विटिस–आइडिया	झाड़ी	मई – अक्टूबर
	कोडियम वेराइगेटम	झाड़ी	अक्टूबर – फरवरी
	क्रोटन बोनप्लेनडियानस	शाक	मई – मार्च
	ड्रिप्टिस रॉक्सबर्गाई	वृक्ष	मार्च – अक्टूबर
	यूफोर्बिया एंटीकोरम	झाड़ी	नवम्बर – जनवरी
	यूफोर्बिया कोटिनीफोलिया	झाड़ी	फरवरी – अगस्त
	यूफोर्बिया हेटेरोफिला	शाक	फरवरी – अगस्त
	यूफोर्बिया हिरटा	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
	यूफोर्बिया मिली	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	यूफोर्बिया निरीफोलिया	झाड़ी	अप्रैल –जुलाई
	यूफोर्बिया निवूलिया	झाड़ी	जनवरी – अप्रैल
	यूफोर्बिया पुलचाराईमा	झाड़ी	नवम्बर – अप्रैल
	यूफोर्बिया तिरुकालाई	झाड़ी	जुलाई –अक्टूबर
	एक्सोकेरिया कानसिनचाइनेन्सिस	झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
	जेट्रोफा करकस	झाड़ी	मई – जनवरी
	जेट्रोफा ग्वासीपीफोलिया	झाड़ी	फरवरी – जून
	जेट्रोफा इंटिग्रेरिमा	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
	जेट्रोफा मल्टीफिडा	झाड़ी	फरवरी –सितम्बर
	जेट्रोफा पोडागरिका	झाड़ी	जुलाई – सितम्बर
	मैलोटस फिलिपेन्सिस	वृक्ष	अक्टूबर – मार्च
	मेनीहाट एसक्यूलेंटा	झाड़ी	फरवरी – अगस्त
	पेडीलेन्थस तिथाईमैलोआइडिस	झाड़ी	मार्च – जून
	फाइलैन्थस एसिडस	वृक्ष	मई – जुलाई
	फाइलैन्थस अमारुस	शाक	जुलाई – दिसम्बर

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
फाइलैन्थस अम्बलिका	वृक्ष	फरवरी – दिसम्बर
फाइलैन्थस यूरीनेरिया	शाक	जुलाई – नवम्बर
रिसिनस कम्यूनिस	झाड़ी	सितम्बर – जून
सूरगाडा मल्टीफ्लोरा	छोटा वृक्ष	मार्च – नवम्बर
ट्रेमा ओरियन्टेलिस	झाड़ी	नवम्बर – अप्रैल
ट्रिविया न्यूडीफ्लोरा	वृक्ष	जनवरी – अक्टूबर
अर्टीकेसी		
लेपोर्टिया इंटरप्टा	शाक	जुलाई – अक्टूबर
पाइलिया माइक्रोफिला	शाक	नवम्बर – मार्च
अलमेसी		
होलोप्टिलया इंटेगेरिफोलिया	वृक्ष	फरवरी – मई
कैनाबेसी		
कैनाविस सटाइवा	शाक	मार्च – नवम्बर
मोरेसी		
आरटोकार्पस हेटेरोफिलस	वृक्ष	दिसम्बर – जुलाई
आरटोकार्पस लकूचा	वृक्ष	दिसम्बर – अगस्त
फाइकस अरनोटियाना	वृक्ष	मार्च – जून
फाइकस बंगालेन्सिस	वृक्ष	अप्रैल – जुलाई
फाइकस एलास्टिका	छोटा वृक्ष	जनवरी – जून
फाइकस कृष्णाई	वृक्ष	अक्टूबर – जनवरी
फाइकस हिसपिडा	छोटा वृक्ष	मार्च – जुलाई
फाइकस रेसीमोसा	वृक्ष	फरवरी – जून
फाइकस रिलिजिओसा	वृक्ष	मार्च – सितम्बर
फाइकस वाइरेन्स	वृक्ष	दिसम्बर – जून
मोरस अल्बा	छोटा वृक्ष	जनवरी – मई
मोरस आस्ट्रोलिस	छोटा वृक्ष	दिसम्बर – मई
कैजूराइनेसी		
कैजूराइना इक्विसिटीफोलिया	वृक्ष	फरवरी – जुलाई
अराऊकेरिएसी		
अगेथिस रोबस्टा	वृक्ष	सम्पूर्ण वर्ष
अराऊकेरिया कनिगघामी	वृक्ष	पुष्पन–फलन नहीं
क्यूपरेसेसी		
थूजा ओरियन्टेलिस	वृक्षा	फरवरी – अप्रैल
साइकेडेसी		
साइकस सिरसिनेलिस	छोटा वृक्ष	दिसम्बर – जून
साइकस रेवेल्यूटा	छोटा वृक्ष	अप्रैल – जून
साइकस रम्फी	छोटा वृक्ष	अप्रैल – जून
जैमिया पिगामिया	झाड़ी	सम्पूर्ण वर्ष
हाइड्रोकैरिटेसी		
हाइड्रिला वरटीसिलेटा	शाक	अप्रैल – दिसम्बर
ऑर्किडेसी		
यूलोफिया नूडा	शाक	अप्रैल सितम्बर
जियोडोरम डेन्सीफ्लोरम	शाक	जून – नवम्बर
रिंकोस्टाइलिस रेटूसा	शाक	मई – अगस्त
वन्डा टेसेलाटा	शाक	मार्च – अक्टूबर
जिन्जिबेरेसी		
अलपिनिया कैलकेराटा	शाक	दिसम्बर – जून
अमोमम सुबुलेटम	शाक	अप्रैल – अगस्त
करक्यूमा अमादा	शाक	जुलाई – अक्टूबर
करक्यूमा अंगस्टीफोलिया	शाक	मई – अक्टूबर
करक्यूमा एरोमेटिका	शाक	जुलाई – नवम्बर
करक्यूमा सिसिया	शाक	मई – अगस्त
करक्यूमा लांगा	शाक	अगस्त – दिसम्बर
करक्यूमा सल्केटा	शाक	मई – अक्टूबर
करक्यूमा जियोडेरिया	शाक	सितम्बर – फरवरी
ग्लोब्बा मैरनटिना	शाक	मई – अगस्त
ग्लोब्बा ओरीजेन्सिस	शाक	अगस्त – अक्टूबर
ग्लोब्बा रेसीमोसा	शाक	अगस्त – नवम्बर
हेडीकियम कोरोनेरियम	शाक	मई – अक्टूबर
हेडीकियम स्पीकेटम	शाक	सितम्बर – अप्रैल
कैमिफेरिया अंगस्टीफोलिया	शाक	जुलाई – नवम्बर
कैमिफेरिया गैलंगा	शाक	अगस्त – दिसम्बर
जिंजिबर ऑफिसिनाले	शाक	अगस्त – नवम्बर
जिंजिबर परप्यूरियम	शाक	अगस्त– दिसम्बर
जिंजिबर रोजीयम	शाक	अगस्त – नवम्बर
जिंजिबर जेरुमबेट	शाक	अगस्त – अक्टूबर
कोस्टेसी		
कोस्टस स्पीसीओसस	शाक	अगस्त – जनवरी
मूसेसी		
मूसा पैराडीसियाका	झाड़ी	मार्च – सितम्बर
एस्ट्रेलीजियेसी		
हेलीकोनिया रोस्ट्रेटा	शाक	अप्रैल – सितम्बर
रेवेनाला मैडागीस्करियन्सिस	वृक्ष	अगस्त – दिसम्बर
कैनाएसी		
कैना काकसिनिया	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
कैना इंडिका	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
इरीडेसी		
बेलामकैन्डा चाइनेन्सिस	शाक	अगस्त – दिसम्बर
ग्लेडिओलस अलेटस	शाक	फरवरी – मई
एमारेलीडेसी		
एमारेलिस विटेटा	शाक	जुलाई – सितम्बर
क्राइनम अमाबाइल	शाक	जुलाई – दिसम्बर
क्राइनम एशियाटिकम	शाक	जून – दिसम्बर
क्राइनम लेटीफोलियम	शाक	अप्रैल – अक्टूबर
हिमेन्थस कॉकसिनियस	शाक	अप्रैल – जून
जैफाईरेन्थस अजेक्स	शाक	जुलाई – दिसम्बर

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
जैफाईरेन्थस रोजिया	शाक	जुलाई – नवम्बर
हाइपोजीटेसी		
करक्यूलिगो ओरकिआइडिस	शाक	जून – सितम्बर
अगेवेसी		
अगेव अमेरिकाना	झाड़ी	फरवरी – मई
कॉडिलाईन टरमिनालिस	झाड़ी	मार्च – मई
ड्रसीना फ्रैगरेन्स	झाड़ी	जून – सितम्बर
फरकेरिया फोइटिडा	झाड़ी	अगस्त – जनवरी
पोलीएन्थिस टयूबरोसा	शाक	अप्रैल – जून
सेन्सीवियरियो सिलेन्डेरिका	शाक	दिसम्बर – मार्च
सेन्सीवियरियो इहरेनबरगाई	शाक	पुष्पन–फलन नहीं
सेन्सीवियरियो किरकी	शाक	पुष्पन–फलन नहीं
सेन्सीवियरियो लाओरेन्टी	शाक	अगस्त – नवम्बर
सेन्सीवियरियो ट्राईफेसीकेटा	शाक	अगस्त – दिसम्बर
युक्का ग्लोरीओसा	झाड़ी	अगस्त – जनवरी
डायस्कोरियेसी		
डायस्कोरिया बल्बीफ्लोरा	शाक	अगस्त – दिसम्बर
डायस्कोरिया यसकुलेन्टा	शाक	अगस्त – नवम्बर
डायस्कोरिया हिसपिडा	छोटी झाड़ी	जून – नवम्बर
डायस्कोरिया अपोजिटीफोलिया	शाक	जुलाई – दिसम्बर
डायस्कोरिया पेंटाफाइला	झाड़ी	अगस्त – अक्टूबर
डायस्कोरिया टोमेन्टोसा	शाक	जुलाई – अक्टूबर
लिलिएसी		
अलोइ वेरा शाक	नवम्बर – मई	
असपेरेगस गोनोक्लेडस	छोटी झाड़ी	जुलाई – नवम्बर
असपेरेगस सिटेसियस	शाक	अक्टूबर – फरवरी
असपेरेगस रेसीमोसस	छोटी झाड़ी	जून – नवम्बर
क्लोरोफाइटम अरुंडीनेशियम	शाक	जून – सितम्बर
क्लोरोफाइटम बोरीविलिनिया	शाक	जुलाई – अगस्त
क्लोरोफाइटम टयूबरोसम	शाक	मई – दिसम्बर
ड्रिमिया इंडिका	शाक	मार्च – जून
ग्लोरिओसा सर्पबा	लता शाक	जुलाई – नवम्बर
स्माइलेक्स ओवलिफोलियो	झाड़ी	मई – अक्टूबर
पोन्टेडेरिएसी		
आइकार्निया केसीपस	शाक	अप्रैल – नवम्बर
कोमोलिनेसी		
कोमोलिना बेंगालेन्सिस	शाक	जुलाई – दिसम्बर
कोमोलिना हासकर्ली	शाक	अगस्त – नवम्बर
रोहियो स्पैथेसिया	शाक	सम्पूर्ण वर्ष
जेब्रिना पेन्डुला	शाक	जनवरी – जून
अरेकेसी		
अरेका कटेचू	छोटा वृक्ष	अप्रैल – दिसम्बर
बोरेसस फ्लेबेलीफर	वृक्ष	मार्च – अक्टूबर
कैलेमस टेनूइस	झाड़ी	जुलाई – दिसम्बर
करोटा माइटिस	वृक्ष	मार्च – अगस्त
करोटा यूरेन्स	वृक्ष	अप्रैल – अक्टूबर
कायसेलीडोकारपस ल्यूटीसेंस	झाड़ी	सितम्बर – जनवरी
हिफनी थिबैका	वृक्ष	जनवरी – अप्रैल
लिविस्टोनिया चाइनेन्सिस	वृक्ष	दिसम्बर – जून
फिनिक्स एक्यूलिस	छोटा वृक्ष	फरवरी – जुलाई
फिनिक्स सिलवेस्ट्रिस	वृक्ष	जनवरी – अक्टूबर
रायस्टोनिया रिजिया	वृक्ष	सितम्बर – जून
पैन्डानेसी		
पैन्डानस ओडोरेटिसिसमिस	झाड़ी	अप्रैल – अगस्त
टाइफेसी		
टाइफा अंगस्टीफोलिया	शाक	मार्च – अक्टूबर
अरेसी		
एकोरस कैलमस	शाक	फरवरी – जून
एलोकेसिया इंडिका	शाक	फरवरी – मई
एलोकेसिया सैन्डेरियाना	शाक	पुष्पन–फलन नहीं होता
एमॉफोफिलस बल्बीफर	शाक	जून – सितम्बर
एमॉफोफिलस पियोनीफोलियस	शाक	जून – नवम्बर
एरिसिमा टॉरटूओसम	शाक	जून – नवम्बर
कैलाडियम बाईकलर	शाक	जुलाई – सितम्बर
कोलोकेसिया यसकुलेन्टा	शाक	अगस्त – नवम्बर
डाईफेनाबेकिया पिक्टा	झाड़ी	पुष्पन–फलन नही होता
मॉन्सटेरा डिलिसीओसा	झाड़ी	सितम्बर – दिसम्बर
पिस्टिया स्ट्रेटीओइटिस	शाक	नवम्बर – जनवरी
साऊरोमेन्टम वेनोसम	शाक	अगस्त – दिसम्बर
टायफोनियम ट्राईलोवेटम	शाक	अप्रैल – सितम्बर
लेम्नेसी		
लेम्ना गिब्बा	शाक	सितम्बर – दिसम्बर
लेम्ना ट्राईसलाका	शाक	अगस्त – दिसम्बर
स्पाईरोडेला पॉलीराईजा	शाक	दिसम्बर – अप्रैल
ऊलफिया अराइजा	शाक	जुलाई – नवम्बर
साइपेरेसी		
साइप्रस कमप्रेसस	शाक	जुलाई – अक्टूबर
साइप्रस डिफोर्मिस	शाक	अगस्त – दिसम्बर
साइप्रस इनवूकेटस	शाक	जून – दिसम्बर
साइप्रस इरिया	शाक	अगस्त – फरवरी
साइप्रस रोटन्डस	शाक	जून – दिसम्बर
साइप्रस टयूबरोसस	शाक	अगस्त – दिसम्बर
फ्रिमरीस्टाईलिस डाइकोटोमा	शाक	मई – अक्टूबर
फ्रिमरीस्टाईलिस क्यूनकयोनगुलेरिस	शाक	अक्टूबर – जनवरी
पोयेसी		
एक्रेने रेसीमोसा	शाक	जुलाई – दिसम्बर

कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन	कुल वानस्पतिक नाम	प्रकृति	पुष्पन–फलन
एप्लूडा म्यूटिका	शाक	अक्टूबर – मार्च	*इकाइनोक्लोवा स्टैगनिना*	शाक	अगस्त – दिसम्बर
एरिसटिडो एडसिनसिआनिस	शाक	अगस्त – जनवरी	*इरगोस्टीस सिलिएरिस*	शाक	अगस्त दिसम्बर
बम्बूसा बम्बास	झाड़ी	जीवन में एक बार	*इरगोस्टीस क्वारकाटा*	शाक	जुलाई – फरवरी
बम्बूसा न्यूटन्स	झाड़ी	जीवन में एक बार	*इरगोस्टीस गैंगटिका*	शाक	अप्रैल – नवम्बर
बम्बूसा टुलडा	झाड़ी	जीवन में एक बार	*इरगोस्टीस माइनर*	शाक	अप्रैल – सितम्बर
बम्बूसा वुलगैरिस	झाड़ी	जीवन में एक बार	*इरगोस्टीस पाइलोसा*	शाक	अगस्त – जनवरी
बोथ्रिक्लोआ ब्लेदाई	शाक	सितम्बर – जनवरी	*इरगोस्टीस टेनेला*	शाक	अगस्त – दिसम्बर
ब्रैकिएरिया सबक्वाड्रीपारा	शाक	नवम्बर – फरवरी	*इरगोस्टीस यूनियोलोइडिस*	शाक	अगस्त – दिसम्बर
सेन्क्रस सेटीगर	शाक	अगस्त – नवम्बर	*ओपलिसमेनस बर्मनी*	शाक	सितम्बर – दिसम्बर
क्लोरिस बारबेटा	शाक	सितम्बर – दिसम्बर	*पैसपलीडियम फ्लेविडम*	शाक	जुलाई – नवम्बर
क्लोरिस विरगाटा	शाक	सितम्बर – नवम्बर	*पैसपैलम स्क्रोबिकुलेटम*	शाक	अगस्त – दिसम्बर
सिमबोपोगान सिट्रेटस	शाक	अक्टूबर – दिसम्बर	*पेनीसिटम ग्लाऊकम*	शाक	सितम्बर – दिसम्बर
सिमबोपोगान फ्लक्सीओसस	शाक	अक्टूबर – दिसम्बर	*पॉलीपोगान मानपेलीएन्सिस*	शाक	फरवरी – अप्रैल
सिमबोपोगान मार्टनी	शाक	अक्टूबर – दिसम्बर	*रॉटबोयलिया कॉकीनचाइनेन्सिस*	शाक	अक्टूबर – दिसम्बर
साइनोडान डेक्टिलान	शाक	सम्पूर्ण वर्ष	*सैक्रम बंगालेंस*	शाक	अक्टूबर – जनवरी
डैक्टायलोटिनियम इजिप्सियम	शाक	अगस्त – मार्च	*सैक्रम स्पॉनटेनियम*	शाक	अगस्त – नवम्बर
डेन्ड्रोकैलमस स्ट्रिकटस	झाड़ी	जीवन मे एक बार	*सिटेरिया इंटरमिडिया*	शाक	अगस्त – दिसम्बर
डेस्मोस्टेकइया बाइपिन्नाटा	शाक	मई – नवम्बर	*सिटेरिया प्यूमिला*	शाक	अगस्त – नवम्बर
डाइकैन्थीयम एनुलेटम	शाक	अगस्त – नवम्बर	*सिटेरिया वर्टिसिलेटा*	शाक	सितम्बर – दिसम्बर
डिजिटेरिया एबलुडेन्स	शाक	सितम्बर – नवम्बर	*सॉरगम हेलपेन्स*	शाक	अक्टूबर – जनवरी
डिजिटेरिया सिलिएरिस	शाक	अगस्त – नवम्बर	*स्पोरोबोलस कोरोमंडेलियानस*	शाक	नवम्बर – जनवरी
डिजिटेरिया सैनगुनेलिस	शाक	सितम्बर – दिसम्बर	*स्पोरोबोलस टेन्यूसिसिमस*	शाक	अक्टूबर – जनवरी
इकाइनोक्लोवा कोलोना	शाक	जुलाई – दिसम्बर	*यूरोक्लोवा पेनीक्वाइडिस*	शाक	अगस्त – मार्च
			वेटीवेरिया जिजेनिओइडिस	शाक	अगस्त – जनवरी

पशु–पक्षी तथा इंसान,
हरियाली ही जीवन दान।
पेड़ ही तो जीवन है,
पेड़ है धरती की शान।।

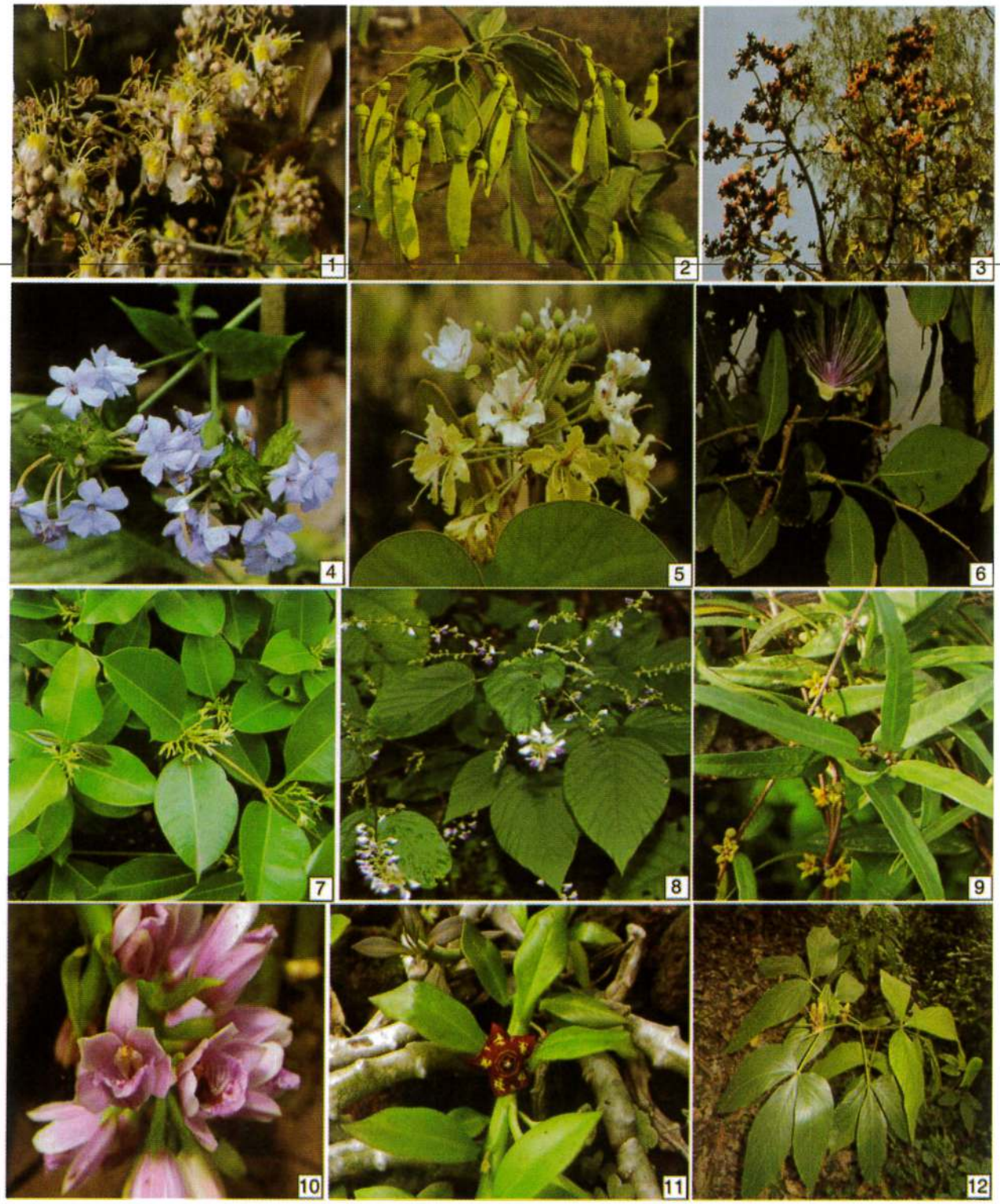

1. *हिप्टेज बंगालेन्सिस*, 2.*वेंटिलागो डेन्टिकुलेटा*, 3. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*, 4. *इरेशिमम परप्यूरासेन्स*, 5. *बाउहिनिया वेहलाई*, 6. *कैपेरिस जिलेनिका*, 7. *क्रिप्टोलेपिस बुचनानी*, 8. *टेरामनस लेबिऐलिस*, 9. *हेमीडेसमस इंडिकस*, 10. *जियोडोरम डेन्सीफ्लोरम*, 11. *फेरेरिया इंडिका*, 12. *फेलेमिनगिया स्ट्रीक्टा*

अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह में काष्ठ को विलगित करने वाले कवकों की विविधता

दीपा मिश्रा, जे. आर. शर्मा एवं बी. पी. उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह भारत के कोरोमण्डल तट से लगभग 1200 कि.मी. की दूरी पर बंगाल की खाड़ी में 6^0 एवं 14^0 उत्तर तथा 92^0 एवं 94^0 पूर्व की भोगौलिक सीमाओं के बीच स्थित है। 319 के लगभग छोटे बड़े द्वीपों से मिलकर बना यह द्वीप समूह लगभग 8249 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। इस द्वीप समूह का अधिकांश भू–भाग पहाड़ी है। इन पहाड़ियों में 732 मी. ऊँची "सैडलपीक" उत्तरी अण्डमान में एवं 642 मी० ऊँचा "माउण्ट थूलियर" ग्रेट निकाबोर में सम्पूर्ण समूहों में उच्चतम शिखर हैं।

इन द्वीप समूहों की भूमध्य रेखा के निकट निकटता के कारण यहाँ की जलवायु सामान्यतः गर्म तथा नम होती है और औसत तापमान $22–35^0$ से. तक रहता है। यहाँ पर औसत वर्षा 300–380 से.मी. एवं सापेक्ष आर्द्रता 80 प्रतिशत तक रहती है।

यहाँ की वनस्पति को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है–समुद्र तटीय एवं अन्तः स्थलीय। समुद्र तटीय में कच्छ वनस्पतियाँ (*राईजोफोरा, ब्रूगियेरा, सेरिऑप्स एवीसेनिया* तथा *नीमा* आदि वंशों) की जातियाँ सम्मिलित हैं तथा लिट्टोरल वनस्पतियाँ (*पैन्डेनस, वैरिगटोनिया* तथा *हिबिस्कस* आदि वंशों) की जातियाँ पाई जाती हैं।

अन्तः स्थलीय वनस्पतियों में सदाबहार वन (*डिप्टेरोकार्पस मीरिस्तिका, होपिया बुकनेनिया* इत्यादि वंशों की जातियाँ); पर्णपाती वन (*टेरोकार्पस, टर्मिनेलिया, पैरिशिया, अल्बीजिया डिप्लोनेमा* इत्यादि वंशों की जातियाँ) व घास के मैदानी क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं।

जलवायु एवं वृक्षों की विविधता व उनकी मृत लकड़ियों के अवशेष विलगन पैदा करने वाले कवकों के लिए अच्छा वातावरण उपलब्ध करवाते हैं और इसी कारण इन कवकों की कई जातियाँ यहाँ पाई जाती हैं। इनकी इसी विविधता का उल्लेख इस लेख में किया जा रहा है।

विभिन्न प्रकार के वनों में काष्ठ को विगलित करने वाले कवकों की कुल 186 जातियाँ वर्णित की गयी हैं, जो कि 10 कुलों के 69 वंशों से सम्बन्धित हैं। यह संख्या भारत में पाये जाने वाले 188 वंशों तथा 680 जातियों का क्रमशः 37 प्रतिशत व 21 प्रतिशत तथा विश्वभर में पाये जाने वाले इस प्रकार के कवकों के 350 वंशों व 3200 जातियों का क्रमशः 19 प्रतिशत व 6 प्रतिशत है।

पॉलीपोरेसी कुल में सबसे अधिक 35 वंश व 67 जातियाँ हैं। इसके पश्चात् क्रमशः हाइमीनोकिटेसी (7/61), लेक्नोक्लेडियेसी (4/12), गैनोडरमिटेसी (2/8), कौर्टिसियेसी (5/6), सटीरियेसी (3/6) का स्थान आता है।

इस क्षेत्र में हाईमीनोकिट लगभग 28 जातियों के साथ सबसे बड़ा एवं विस्तृत वंश है। इसके बाद *फैलिनस* (25), *कोरियोलाप्सिस* (7), *साइटिनोस्ट्रोमा* (6), *पालीपोरस* (4), *सेरीपोरिया* (4), *लोफेरिया* (4) का स्थान है।

यहाँ पर पाई जाने वाली 186 जातियों में से लगभग 6 ही ऐसी जातियाँ हैं जो जमीन पर उगती हैं। शायद ये पेड़ो की जड़ों के साथ कवकमूल (मायकोराइजल) संबंध बनाती हैं। कवक मूल बनाने वाली जातियों में मुख्यतः *लिगनोसस, माइक्रोपोरेलस, कोलट्रिसिया* जैसे वंशों की जातियाँ हैं। जबकि शेष 180 जातियाँ लकड़ी पर उगने वाली हैं। इन कवकों के लिये आवृतबीजी वृक्ष मुख्य आधार होते हैं।

निम्नलिखित जातियाँ ही अधिकतर इन द्वीप समूहों के जगलों में दिखाई देती हैं। इनमें *फैलिनस पंक्टेटस, फैलिनस जिलवस, फैलिनस सीनेक्स, फैलिनस बेडियस, फैलिनस सबलिनटियस, माईक्रोपोरेलस डेलबेटस, माईक्रोपोरेलस चोकोलेटस, डेडालिया सुलकेटा, लेनजाइटिस एक्यूटा, सेरिपोरिया परप्यूरिया, निगरोपोरस विनोसस, हैक्सागोनिया टेनुइसट्रेमिटस कोटोनियस* तथा *लोफेरीया फलवा* प्रमुख हैं। वृक्षों पर उगने वाले लगभग 69 वंशो में से केवल 4 (6 प्रतिशत) वंश भूरा विलगन (Brown rot) पैदा करते हैं। इनमें से *एन्ट्रोडियला, फोमिटोपसिस, डैडालिया* व *लैन्जाईटस* प्रमुख हैं।

186 लिग्नीकोलस जातियों में से केवल 12 (7 प्रतिशत) जातियाँ ही भूरा विलगन पैदा करती हैं। इनमें प्रमुख हैं–*फोमिटोपसिस, एकयोटिलेटा, लेनजाइटिस एक्यूटा, लेनजाइटिस वेस्पेसिया, फोमिटोपसिस, रोडोफेसियस, डेडालिया सुलकेटा, एन्ट्रोडियला फिजीलीफारमिस, एन्ट्रोडियला हुनुआ, एन्ट्रोडियला लीबमैनाई* आदि हैं।

वृक्षों पर आश्रित शेष 65 वंश (94 प्रतिशत) श्वेत विलगन (white rot) उत्पन्न करते हैं। इनमें *फैलिनस, हाइमीनोकीट, ऑरिफिकेरिया, निग्रोफोमिस, हेक्सागोनिया, कोरियोलाप्सिस, ट्रोमिटस* आदि की जातियाँ मुख्य हैं।

1 *डेडालिया सुलकेटा* 2. *फैलिनस सेंक्टोजोरजाई* 3. *ओक्जीपेरस स्याक्यूलिफर* 4. *फोमिटोप्सिस रोहडोफैकुलस* 5. *फैलिनस पैक्टिनेटस* 6.*गैनोडर्मा एप्लेनेटम*

ज्ञात 186 लिग्निकोलस जातियों में से 168 (91 प्रतिशत) जातियाँ श्वेत विलगन पैदा करती हैं। अधिकतर दिखाई पड़ने वाली जातियों में *फैलिनस पैचीफ्लोइयस, फैलिनस पंक्टेटस, फैलिनस जिलवस, फैलिनस सिनेक्स, फैलिनस केरियोफिलाई, फैलिनस सबलिनटीयस, फैलिनस सेंक्टोजोरजाई, फैलिनस फस्चुओसस, लिगनोस ससेसर, पालीपोरस ग्रामोसिफैलस, नीग्रोफोमि समिलेनोपोरस, निगरोपोरस डयूरस* आदि हैं।

लिग्नीकोलस कवकों की जातियों की एक प्रतिशत से भी कम जातियाँ जीवित वृक्षों पर पायी जाती हैं। जबकि शेष जातियाँ जमीन पर पड़ी लकड़ियों पर उगती हैं।

कुछ ऐसी हानिकारक जातियाँ हैं जो 70 प्रतिशत से अधिक पेड़ों को नुकसान पहुंचाती हैं, इनमें *फैलिनस पैचिफ्लोइयस, फैलिनस सबलिनटियस, फैलिनस मैरीलाई, फैलिनस मिलेनोडरमस, निगरोपोरस डयूरस, फ्यूनेलिया लियोनिया, डेडालिया सुलकेटा* आदि मुख्य हैं।

काटे वृक्ष, उजड़ते वन,
दे रहा प्रलय के घाव।
कड़ी धूप है जलते पांव,
होते पेड़ तो मिलती छांव।।

पुरातत्व महत्व के स्मारकों एवं मूर्तियों पर शैवाल

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

किसी भी देश की सांस्कृतिक विरासत का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है, उसके पुरातत्व महत्व के स्मारक, प्रस्तर मूर्तियाँ, प्राचीन मंदिर, पौराणिक एवं ऐतिहासिक भवनावशेष प्राचीन चित्र एवं हस्तलिखित सामग्री। सांस्कृतिक संरक्षण के लिये एवं आने वाली पीढ़ियों को अपने प्राचीन गरिमामयी इतिहास से परिचित कराने में इन विरासतों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आज हम कितनी भी प्रगति कर चुके हों, भले ही हम चंद्रमा या मंगल पर जा पहुँचे हों, परन्तु हमारी जड़ें तो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, लुम्बनी, पाटलिपुत्र, सोमनाथ, रामेश्वरम्, खजुराहो आदि से ही जुड़ी हुई हैं। जो हमें हमारे गौरवशाली इतिहास से परिचित कराती हैं। अतीत के इस इतिहास के गूढ़ रहस्यों में ही हमारी भावी योजनाओं की सफलता की कुंजी विद्यमान है, इनको जाने बिना हम कितनी भी प्रगति कर जायें, हमारी सांस्कृतिक विरासत अधूरी ही रहेगी। अतः इनका संरक्षण करना एवं इनके मूल स्वरूप को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक श्रमसाध्य कार्य है।

पुरातत्व महत्व की सभी धरोहरों को उनके मूल स्वरूप में संरक्षित करने के लिये संरक्षणकर्त्ताओं को काफी मशक्कत करनी पड़ती है। काफी समय तक हमने ऐसी पौराणिक धरोहरों के संरक्षण के लिये वैज्ञानिक विधियों का उपयोग नहीं किया, जिसके कारण कई ऐतिहासिक महत्व की ईमारतें नष्ट हो गईं और कुछ नष्ट होने की कगार पर हैं। आज पुरातत्वविदों, वनस्पतिज्ञों,जन्तु वैज्ञानिकों,रसायन विज्ञानियों, वास्तुकारों एवं संस्कृति–इतिहास के जानकारों के द्वारा संयुक्त रूप से इस बात का अध्ययन–विश्लेषण कर पौराणिक महत्व की इन इमारतों को संरक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। सामान्यतः देखा गया है कि इन धरोहरों के नष्ट होने के मुख्य रूप से तीन कारण होते हैं।

अ. प्राकृतिक कारण– सूर्य का प्रकाश, वातावरण का तापक्रम, अतिवृष्टि, आर्द्रता, वायु का रासायनिक संगठन, क्रमिक रूप से धरोहरों को प्रभावित करते हैं और उनके अपरदन एवं क्षय का कारण बनते हैं। बहुत लम्बे समय के अन्तराल में ये प्राकृतिक कारक पुरातत्व महत्व की ध रोहरों को गंभीर हानि पहुँचाते हैं।

ब. रासायनिक/मानवीय कारण – बढ़ते हुये औद्योगिकीकरण से वायु, जल एवं मृदा में अत्यधिक रासायनिक परिवर्तन हुये हैं। विभिन्न उद्योगों से निकले रसायन मृदा के रासायनिक संगठन में परिवर्तन कर देते हैं, जो पुनः वर्षा जल के साथ बह कर पुरातत्व महत्व की धरोहरों को क्षति पहुँचाते हैं। वहीं उद्योगों, वाहनों से निकली गैसें जैसे सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन–डाई–ऑक्साइड, कार्बन–मोनो–ऑक्साइड आदि गैसें वर्षा जल के साथ मिलकर अम्ल वर्षा के रूप में पुरातन इमारतों को गंभीर रूप से क्षति पहुँचाती हैं। ताजमहल के संगमरमर का बदलता रंग एवं अन्य ऐतिहासिक इमारतों के मूल स्वरूप में परिर्वतन इसी का एक उदाहरण है। वैश्विक तापमान वृद्धि, मानवीय हस्तक्षेप, अशिष्ट पर्यटन से भी पुरातत्व महत्व की इमारतों को खतरा उत्पन्न हुआ है।

स. जैविक कारण– पुरातत्व महत्व की धरोहरों को नष्ट करने में जैविक कारण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इन स्मारकों पर सामान्यतः वनस्पतियाँ उग जाती हैं, और साथ ही साथ केंचुए घोंघे, दीमक, चीटियाँ, चूहे, साँप आदि भी इन धरोहरों को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। इन ध रोहरों का बाहरी भाग जहाँ वनस्पतियों से संक्रमित होता है, वहीं लकड़ी वाले भाग दीमक तथा अन्य कीटों से नष्ट हो जाते हैं। सूक्ष्म विश्लेषण किया जाये तो धरोहरों के क्षय के जैविक कारणों में मूल रूप से शैवाल भी प्रमुख कारणों में से एक हैं।

प्राचीन काल में इमारतों को बनाने में सीमेंट के स्थान पर मिट्टी, दालों, गुड़, शीरा, पत्थर का चूरा, चूना पत्थर, लाख आदि का उपयोग किया जाता था। इनमें से अधिकतर पदार्थ कार्बनिक घटक होते हैं, जो वातावरण की आर्द्रता से अपक्षयित हो जाते हैं, प्राचीन मूर्तियाँ मुख्यतः कैल्शियम एवं सिलिकॉन की बनी हैं जो वातावरणीय कारकों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। वर्षाकाल में प्राचीन धरोहरों स्मारकों एवं मूर्तियों पर नील–हरित शैवाल उग जाते हैं जो अपरदन की क्रिया को प्रारम्भ करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। वैज्ञानिक विश्लेष्णों से 57 से अधिक नील–हरित शैवाल जातियों एवं 15 हरित शैवालों की जातियाँ ज्ञात की गई हैं, जो पौराणिक धरोहरों की क्षति के लिये उत्तरदायी हैं।

सामान्य अध्ययनों में पाया गया है कि चाहे कम्बोडिया में अंकोरवाट के प्राचीन मंदिर हों या भारत के पुरी, भुवनेश्वर, रामेश्वरम्, द्वारिका, काशी के पौराणिक मंदिर हों अथवा लाल किला, फतेहपुर सिकरी, लखनऊ का इमामबाड़ा, नालंदा व पाटलीपुत्र के भवनावशेष, इन सभी पर कहीं

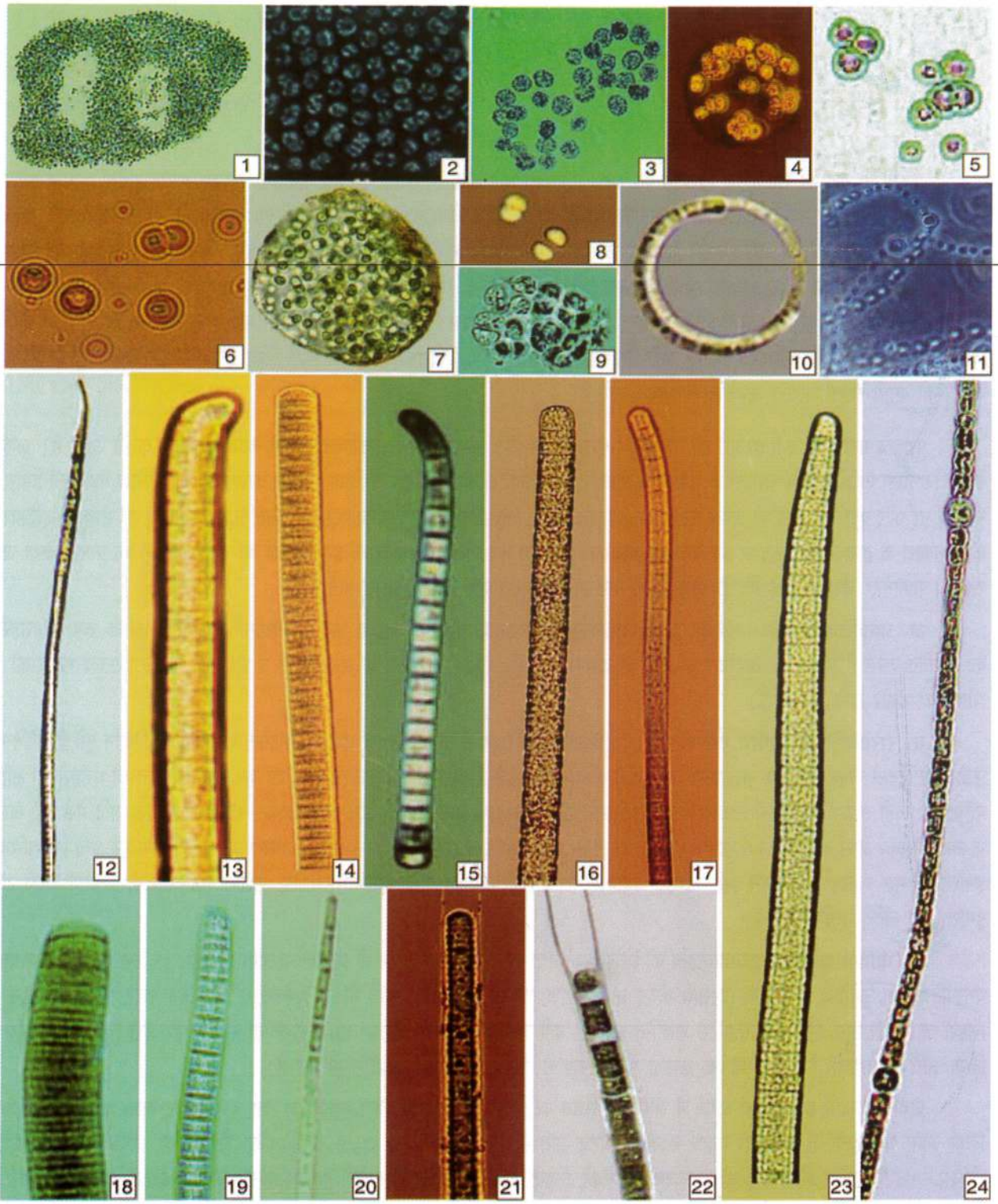

1. *माइक्रोसिस्टिस एरिगनोसा*, 2. *माइक्रोसिस्टिस फ्लोसएक्वी*, 3. *माइक्रोसिस्टिस रोबस्टा*, 4. *माइक्रोसिस्टिस विरिडिस*, 5. *क्रोकोकस माइनर*, 6. *ग्लोइयोकैप्सा नाइग्रेसेन्स*, 7. *एफैनोकैप्सा ग्रेवीली*, 8. *सिनेकोसिस्टिस पेवालेकी*, 9. *मिक्सोसारसिना स्पेक्टाबिलिस*, 10. *लिन्बिया कॉनटार्टा*, 11. *नॉस्टाक केल्सीकोला*, 12. *ऑसिलेटोरिया एमोइना*, 13. *ऑसिलेटोरिया चेलेबिया*, 14. *ऑसिलेटोरिया लाइमोसा*, 15. *ऑसिलेटोरिया ओकेनी*, 16. *ऑसिलेटोरिया सब्रेविस*, 17. *ऑसिलेटोरिया विल्लई*, 18. *ऑसिलेटोरिया प्रिन्सिप्स*, 19. *फोर्मीडियम एम्बिगम*, 20. *फोर्मीडियम टेन्यू*, 21. *लिन्बिया मार्टेन्सिआना*, 22. *लिन्बिया मीसोट्राइका*, 23. *ऑसिलेटोरिया टेन्यूइस*, 24. *एनाबिना फरटीलीसिम्मा*

ना कहीं शैवाल अवश्य उपस्थित रहते हैं। ये शैवाल इन इमारतों को न केवल हरे चकतों से बदरंग करते हैं, अपितु इनके स्थापत्य को भी गंभीर हानि पहुँचाते हैं। नम भूमि, वर्षा वन क्षेत्र, समुद्र तटीय क्षेत्रों में जहाँ अधिक आर्द्रता होती है, शैवालों के उत्पन्न होने को उपर्युक्त आवास मिलता है। इन इमारतों पर विशेष रूपसे नील हरित शैवाल तीव्रता से वृद्धि करते हैं। ये नील हरित शैवाल एक जैविक झिल्ली का निर्माण करते हैं जिस में जीवाणुओं की कई जातियाँ भी विकसित हो जाती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ आने पर यह जैविक झिल्ली विघटित होकर ह्यूमस की परत बनाती है जो अन्य पौधों के उगने के लिये उर्वरक क्षेत्र का काम करती है।

ऐतिहासिक इमारतों, स्मारकों पर पाये जाने वाले हरे नीले, काले भूरे चकतों में विशेषतः *टोलिपोथ्रिक्स, लिन्बिया, ग्लियोकैपसोपसिस, फोर्मिडियम, प्लेक्टोनिमा, ग्लोइकोथीस, मिक्सोसारसिना, क्रकोसिडियोप्सिस, साइटोनिमा, प्लेक्टोनीमा, नॉस्टाक, केलोथ्रिक्स, क्लोरोग्लोइऑप्सिस, फ्रिश्चेरेला, हेप्लोसाइफोन* इत्यादि शैवालों की विभिन्न जातियाँ पाई जाती हैं।

पुरातत्व महत्व के स्मारकों पर पाई जाने वाले कुछ नील हरित शैवाल निम्न हैं– *माइक्रोसिस्टिस, एरिगनोसा, माइक्रोसिस्टिस फ्लोस–एक्वी, माइक्रोसिस्टिस रोबुस्टा, माइक्रोसिस्टिस विरिडिस, क्रोकोकस माइनर, ग्लोइयोकैप्सा नाइग्रेसेन्स, एफैनोकैप्सा ग्रेवीली, सिनेकोसिस्टिस पेवालेकी, मिक्सोसारसिना स्पेक्टाबिलिस, लिन्बिया कॉनटार्टा, नॉस्टाक केल्सीकोला, ऑसिलेटोरिया एमोइना, ऑसिलेटोरिया चेलेबिया, ऑसीलेटोरिया लाइमोसा, ऑसिलेटोरिया ओकेनी, ऑसिलेटोरिया सब्रेविस, ऑसिलेटोरिया विल्लई, ऑसिलेटोरिया प्रिन्सिप्स, फोर्मिडियम एम्बिगम, फोर्मिडियमटेन्यू, लिन्बिया मार्टेन्सिआना, लिन्बिया मीसोट्राइका, ऑसिलेटोरिया टेन्यूइस* एवं *एनाबिना फरटीलिसिम्मा* (चित्र 1–24) ।

शैवालों की वृद्धि पर अंकुश लगाने के लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं –

1. शैवालों की वृद्धि को रोकने, पनपने न देने के लिये उचित रखरखाव एवं साफ सफाई आवश्यक होती है।
2. शैवालों के उगने वाली जगहों पर शैवाल–नाशक/खरपतवार नाशक/जीव नाशक रसायनों जैसे बेनजॉल कोनियम, क्लोराइड, रोट्राजिन, एल एजी 2006016,, वोकोसेन 15 टी०के०इत्यादि का उपयोग कर शैवाल वृद्धि को रोका जा सकता है।
3. भविष्य में शैवालों की वृद्धि ना हो इसके लिये प्रस्तर संरक्षण रसायनों (स्टोन प्रिजरवेटिव) जैसे–सिलिकोनेट, साइलरेट, मोरसोनेरी, पॉली विनाइल ऐसिटेट, आदि का उपयोग कर ऐतिहासिक इमारतों के संवेदनशील स्थानों पर आवरण बना देना चाहिये ।
4. नवीन वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग कर स्मारकों, पौराणिक धरोहरों को संरक्षित किये जाने के प्रयास किये जाने चाहिये ।

केरल की समुद्री शैवाल विविधता : एक अवलोकन

एम. पलनिसामी एवं एस. के. यादव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयंबत्तूर

केरल, अरब सागर के तट पर भारतीय प्रायद्वीप में स्थित एक मध्यम आकार का राज्य है। 1 नवम्बर 1956 को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में भारतीय मानचित्र पर आये इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग 38,863 वर्ग कि०मी० है। वस्तुतः 'केरल' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'केरलम' से हुयी है, जिसका अर्थ होता है 'नारियल की भूमि'। यह राज्य अपनी प्राकृतिक सुंदरता, आसमान छुने को लालायित दूर–दूर तक फैले नारियल के बागानों, पश्चिमी घाट के मनमोहक घने एवं सदाबहार जंगलों के बीच दिखाई पड़ती गगनचुम्बी पहाड़ियों, अरब सागर के समानांतर स्थित अपने लम्बे समुद्री तट पर प्राकृतिक एवं कृत्रिम तटों, मैंग्रूव वनों से आच्छादित बैकवाटर क्षेत्रों, विश्व प्रसिद्ध श्री पद्मनाभम् स्वामी मंदिर, श्री कृष्ण मंदिर, श्री अयप्पा मंदिर के साथ–साथ अतुल्य प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर संजोये है। जो न केवल स्वदेशी बल्कि बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटकों तथा प्रकृति प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। इस तरह से यह राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह भी है कि बढ़ते प्रदूषण एवं तटीय क्षेत्र में लोगों द्वारा अनाधिकृत निर्माण कार्यों के कारण केरल के समुद्री तटों में पाए जाने वाले समुद्री शैवालों की विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

केरल तट एवं शैवाल विविधता–भारतीय समुद्री तटों की कुल लम्बाई अंडमान एवं लक्षद्वीप दोनों द्वीपसमूहों के साथ लगभग 7516. 6 कि.मी. है। जिसमें पश्चिम तट पर स्थित केरल की समुद्री तटीय लम्बाई लगभग 580 कि.मी. है। राज्य के कुल 14 जिलों में से 9 जिले तटवर्ती हैं। राज्य के अधिकांश दक्षिणी तट जैसे तिरुवनंतपुरम, कोल्लम तथा मध्य एवं उत्तरी भाग में स्थित कोलिकोड, माहे एवं कन्नूर तट मुख्यतः पथरीले क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में स्थित कुछ प्रमुख तटों जैसे सोमतीरम (चोवरा), वीलिंजियम, कोवलम, वर्कला, एडवा, तिरूमुल्लावरम, थंगाचेरी, कडलुंडीनगरम, थिक्कोडी, माहे, एलिमला एवं चम्बरिका इत्यादि क्षेत्रों में शैवाल विविधता अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत कुछ इलाके जैसे अलप्पुला, एर्नाकुलम, त्रिसूर, मलप्पुरम एवं कासरगोड के अधिकांश भाग बलुई है तथा यहाँ प्राकृतिक पत्थरों की उपलब्धता अपेक्षाकृत कम है, अतः इन इलाकों में शैवालों का विकास एवं इनकी विविधता अपेक्षाकृत कम है। भारतीय समुद्री तटों पर पाये जाने वाले कुल 844 समुद्री दीर्घ शैवालों (सी–वीड्स) में से लगभग 100 जातियां केरल तट पर पायी जाती हैं। अतः शैवाल विविधता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण तटवर्ती क्षेत्र है।

पर्यटन एवं मानव अधिग्रहण का केरल की शैवाल विविधता पर प्रभाव–केरल हमेशा से ही पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है, लेकिन हाल के कुछ वर्षो में बढ़ते पर्यटन उद्योग एवं अवैध मानव अधिग्रहण के कारण दीर्घ शैवालों की विविधता एवं उनके आवास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। लेखकों ने वर्ष 2011–2013 के बीच केरल के विभिन्न तटों के सर्वेक्षण के दौरान पाया कि कई जगहों पर अत्यधिक तटीय दोहन के कारण शैवालों की वृद्धि एवं इनकी विविधता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बड़ी संख्या में पर्यटकों के आवागमन के कारण इन तटीय इलाकों में अनेक अवैध निर्माण कार्य कर होटलों, रेस्टोरेंटो एवं अस्थायी दुकानों को बनाया गया है। भारी मात्रा में शीशा एवं प्लास्टिक कचरे को तटीय क्षेत्रों में फेंका जाता है। ये सभी पदार्थ पत्थरों पर जमा होकर मोटी परत बना देते हैं एवं शैवालों की वृद्धि तथा इनके विकास को रोकते हैं। इसके अलावा यह भी पाया गया कि कई जगहों जैसे वर्कला, एडवा एवं थिक्कोडी तट पर पाये जाने वाले प्राकृतिक पत्थरों को स्थानीय निवासियों द्वारा गृह निर्माण हेतु अवैध रूप से काटा जा रहा है। इससे शैवालों के प्राकृतिक आवास का क्षरण हो रहा है। केरल तट पर स्थित कुछ ऐसे प्रमुख स्थान जहाँ बढ़ते पर्यटन एवं अवैध निर्माण कार्यो के कारण शैवाल विविधता प्रभावित हुई है, वे मुख्यतः निम्नलिखित है– कोवलम तट, वर्कला तट (तिरुवनंतपुरम), तिरूमुल्लावरम तट, अलिक्कल तट (कोल्लम), अलप्पुला तट (अलप्पुला), कोच्ची फोर्ट तट, वैपिन द्वीप(एर्नाकुलम), पोन्नानी तट (मलप्पुरम), तानूर तट (मलप्पुरम), कडलुंडीनगरम तट, बेपोर तट, कालीकट तट, कप्पाड तट, थिक्कोडी तट (कोलिकोड या कालीकट), माहे तट, माहे (पोंडिचेरी यू टी), मुलपिलंगाड तट, एलिमला तट (कन्नूर), बेकल फोर्ट तट, चम्बरिका तट, एवं होसबेट्टु तट कासरगोड ।

सुनामी के बाद केरल तट की स्थिति–लेखकों ने केरल तट के तीन वर्ष के सर्वेक्षण के दौरान पाया कि राज्य के बहुत से तटवर्ती इलाके, जहाँ गांव समुद्र तट से सटे हुए थे, 2004 में आयी भयंकर सुनामी के कारण काफी प्रभावित हुए। कई लोगों के घर समुद्र में समां गए। आज भी कई जगहों पर अधिक भूमिक्षरण के कारण गांव एवं लोगों के घरों पर खतरा बना हुआ है। इसके अलावा यह भी पाया गया कि कई जगहों पर समुद्री ज्वार–भाटे के कारण प्राकृतिक रूप से तटों का कटान लगातार जारी है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए केरल सरकार द्वारा इन प्रभावित

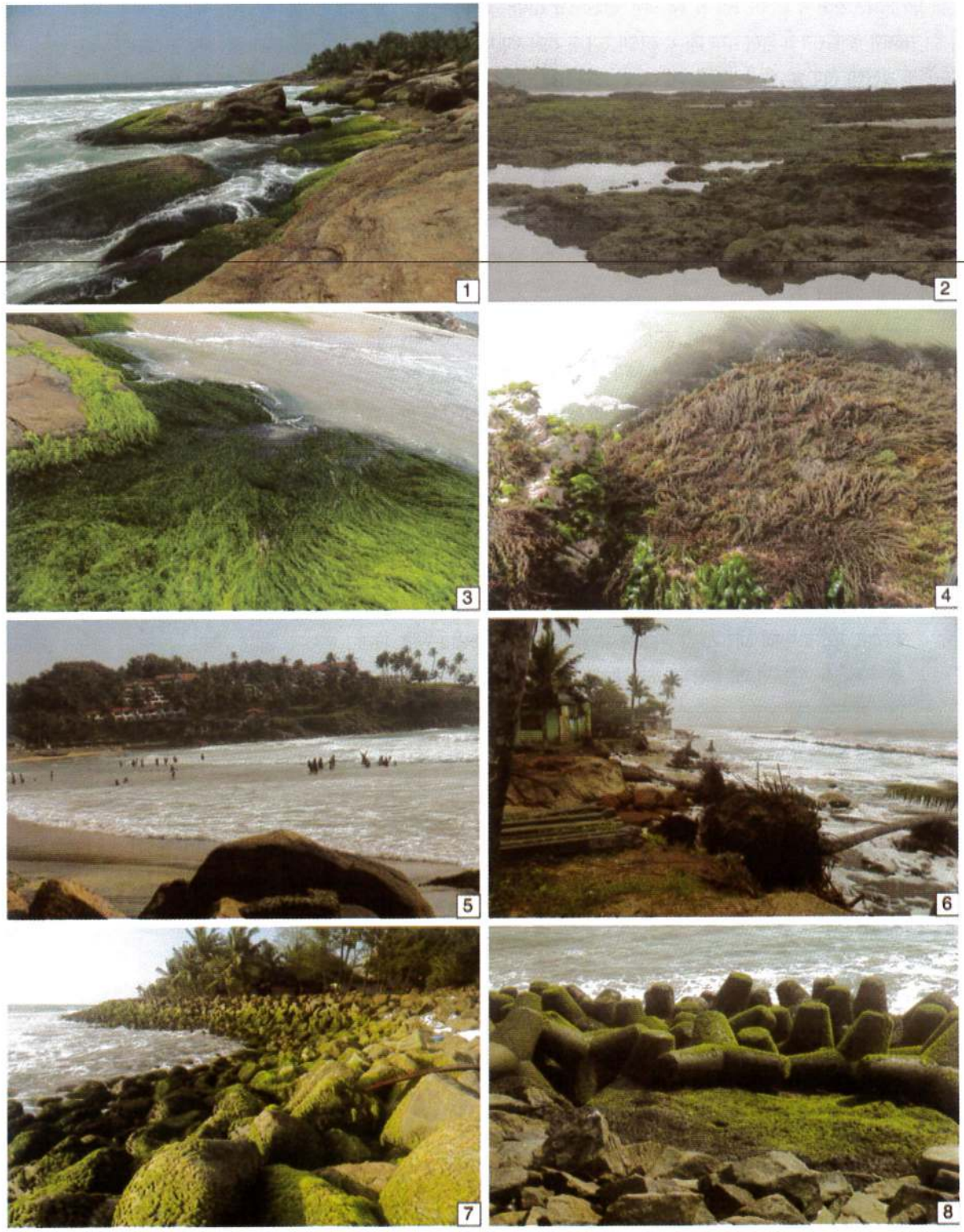

1. मुलूरकडलपुरम् तट पर स्थित प्राकृतिक पत्थरों पर शैवालों का विकास, 2. थिक्कोडी तट पर कम ज्वार के दौरान उजागर समुद्री शैवाल, 3. सोमतीरम तट पर पाये जाने वाले पत्थरों पर हरे शैवालों का प्रचुर विकास, 4. थिक्कोडी तट पर स्थित चूना पत्थरों पर शैवालों का मिश्रित विकास, 5. कोवलम् तट पर रिसॉर्ट्स एवं पर्यटकों का एक मनोरम दृश्य, 6. समुद्र में आयी ऊची ज्वार के कारण तटीय गावों की क्षति, 7–8. अलिक्कल एवं थंगाचेरी तट पर तटीय सुरक्षा हेतु कृत्रिम रूप से डाले गए पत्थरों एवं सीमेंट ब्लॉक्स पर मौजूद शैवाल वनस्पतियां।

इलाकों एवं निचले क्षेत्रों में कृत्रिम रूप से बड़े–बड़े पत्थरों एवं सीमेंट के बने त्रिपादों, चतुर्पादों इत्यादि (ट्राई–टेट्रापॉड्स सीमेंट ब्लॉक्स) को डाला गया है। सर्वेक्षण के दौरान ये पाया गया कि ये कृत्रिम रूप से डाले गए पत्थर बहुत से शैवालों के लिए प्राकृतिक आवास का काम करती है। सर्वेक्षण के प्रारंभिक अवस्था (वर्ष 2011) में इन पत्थरों पर बहुत कम ही शैवाल उगे थे, लेकिन उसके बाद के वर्षों (2012–2013) में मानसून सहित सभी मौसमों में यह पाया गया कि इन कृत्रिम रूप से डाले गए पत्थरों पर पाये जाने वाले शैवालों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा थी। इससे यह अनुमान लगाया गया कि भविष्य में ये कृत्रिम आवास अनेकों नये शैवालों को आश्रय प्रदान करते हुए राज्य एवं देश की शैवाल विविधता को बढाने एवं संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसके अलावा, लेखकों ने यह भी पाया कि उत्तरी केरल के कुछ जिलों जैसे कन्नूर एवं कासरगोड के अधिकांश इलाके, उदाहरण स्वरूप पैयम्बलम तट, पयनूर, नीलेश्वर, बेकल फोर्ट तट (पल्लिकेरे), उप्पल, चम्बरिका, मंजेश्वर, होसबेट्टु, थलपाडी इत्यादि में ये पत्थर अपेक्षाकृत कम डाले गए हैं तथा वहाँ तटीय क्षरण तेजी से हो रहा है, अतः ऐसे इलाके में जल्द ही इन पत्थरों को बिछाकर तटीय कटाव को रोका जाना अपेक्षित है।

शैवाल विविधता संरक्षण एवं वृद्धि के उपाय – केरल के तटों पर पाये जाने वाले समुद्री शैवालों को संरक्षित रखने एवं उनकी विविधता को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

1. उन तटीय इलाकों में जहाँ शैवालों के प्राकृतिक आवास यानि पत्थर नहीं पाये जाते हैं, वहाँ कृत्रिम रूप से सरकार द्वारा पत्थरों को बिछाया जाना चाहिए ताकि तटीय कटाव को रोका जा सके एवं शैवालों के विकास के लिए नए आवास भी प्रदान किया जा सकें।
2. आर्थिक महत्व वाले समुद्री शैवालों जैसे *जेलिडियम, गेलिडिएला, पोरफाइरा, ग्रासिलेरिया, सर्गासम, अल्वा, इन्टेरोमोर्फा, कलर्पा* इत्यादि की कुछ जातियों के बारे में स्थानीय लोगों के बीच जन जागरूकता अभियान चलाये जाने चाहिए। साथ ही, इन शैवालों की व्यावसायिक कृत्रिम खेती के बारे में लोगों को बताया जाना चाहिए।
3. समुद्री शैवालों पर अनुसंधान करने वाले देश के प्रमुख शोध संस्थानों जैसे भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केंद्रीय समुद्री मत्स्य उद्योग अनुसंधान संस्थान, केंद्रीय नमक और समुद्री–रसायन अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, केंद्रीय औषध–अनुसंधान संस्थान इत्यादि एवं गैर–सरकारी संस्थानों को मिलकर कार्य करते हुए देश की समृद्ध शैवाल विविधता पर गहन अध्ययन कर इसे मानव कल्याण के लिए दवा, भोजन, पशु आहार, उर्वरक इत्यादि के रूप में योजनाबद्ध उपयोग करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
4. सर्वेक्षण के दैरान पाया गया की जिन तटवर्ती क्षेत्रों में *केजुराइना* वृक्षारोपण किया गया था वहाँ तटीय क्षरण कम था, अतः स्थानीय लोगों को नारियल वृक्षारोपण के साथ–साथ *केजुराइना* वृक्षारोपण के प्रति अभियान चलाकर जागरूक किया जाना चाहिये।

वृक्ष धरा का आभूषण है, करता दूर प्रदूषण है।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 53-56(2014)

पर्णांगों का विभिन्न पादप समूहों एवं जीवों से पारस्परिक सम्बन्ध

पुष्पेश जोशी, बृजेश कुमार, बी. एस. खोलिया एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पर्णांग, संवहनी पौधों में पुष्पीय पौधों के बाद सबसे बड़े पादप समूह हैं। विश्व में केवल आर्कटिक, अंटार्कटिक व समुद्रीय क्षेत्रों के अतिरिक्त पर्णांग लगभग सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं, उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों, मानसून वनों व हिमालयी क्षेत्रों में ये बहुतायत मिलते हैं। कुछ क्षेत्रों में इनकी मात्रा पुष्पीय पौधों से भी अधिक पाई गई है एवं वहाँ की पारिस्थितिकी में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। जैसे–जैसे हम विषुवत रेखा से उत्तर व दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, इनकी संख्या में कमी होती जाती है। पर्णांग अपने खूबसूरत आकार के कारण सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इनके बड़े अत्यन्त विच्छेदित एवं चमकदार हरे पत्तों के कारण ये चित्ताकर्षक होते हैं। इसलिए इन्हें सजावटी पादपों के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है। पर्णांग, पुष्पीय एवं अपुष्पीय, दोनों समूहों के लक्षण दर्शाते हैं, जैसे पुष्प की अनुपस्थिति तथा संवहन ऊतकों की उपस्थिति। पर्णांगों की जातियाँ समशीतोष्ण, उपोष्ण एंव शीतोष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। फल, बीज एवं फूल के अनुपस्थित होते हुए भी इनकी विलक्षण प्रजनन क्षमताओं के कारण मनुष्य पर्णांगों एवं पर्णांग–मित्रों को प्रकृति के अनुपम उपहार एवं रहस्मय पादपों के रूप में अनुशंसित करता आया है।

भारत की विशेष भौगोलिक स्थिति एवं पारिस्थितिकीय विविधता पर्णांगों के उगने के लिए अनुकूल है। विश्व की लगभग सभी जलवायु एवं वनों का मिश्रण भारत में है, अतः यहां विश्व की लगभग 10 प्रतिशत पर्णांग जातियाँ पायी जाती हैं जो मात्र भारत के 2 प्रतिशत भूभाग में उगती हैं।

सम्पूर्ण विश्व में पर्णांगों का उपयोग कृषि, खाद्य पदार्थ, औषधि आदि में मनुष्यों द्वारा प्राचीन समय से किया जाता रहा है। *डिप्लेजियम* एवं *मेट्यूक्सिया* जाति के क्रोजियर खाद्य पदार्थ के रूप में क्रमशः भारत एवं अमेरिका में उपयोग में लाए जाते हैं। *हुपर्जिया सीरेटा* मिर्गी रोग की रोकथाम एवं उपचार हेतु प्रयोग किया जाता है। एशियाई देशों के कुछ हिस्सों में हरी खाद के रूप में उपयोग में लायी जाने वाले *एजोला* वंश के जलीय पर्णांग नाइट्रोजन स्थिरीकरण में मुख्य भूमिका निभाते हैं। भारत के कई हिस्सों में यह दुग्ध उत्पादन की वृद्धि के लिए दुधारू पशुओं को भी खिलाई जाती है। दक्षिण अफ्रिकी पर्णांग *रुमोरा एडिएंटिफॉर्मिस* को सजावटी मूल्य के कारण व्यावसायिक रूप से उगाया जाता है। *टेरिस विट्टाटा* को फाइटोरेमेडीयेशन के लिए प्रयोग किया जाता है, जिससे मृदा में जहरीले एवं हानिकारक तत्वों यथा आर्सेनिक व फ्लोराइड से निजात मिलती है। कदाचित पूर्ववर्ती शोध पर्णांगों के पारिस्थितिकीय अध्यनन को ध्यान में रखकर किए गये थे। आधुनिक समय में भी पर्णांगों के पारिस्थितिक महत्व के कारण इनके पारस्थितिकीय अध्ययन में तीन गुना वृद्धि हुई है। क्राइस्ट (1910) ने पर्णांगों का जैव भौगोलिक अध्ययन किया एवं बताया कि पर्णांग उत्तर शीतोष्ण क्षेत्रों की तुलना में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ज्यादा पाये जाते हैं। वर्तमान में अधिकतम पर्णांग जातियाँ नम कटिबंधीय क्षेत्रों में पायी जाती हैं। जबकि कुछ पर्णांग समूहों ने स्वयं को शीतल जलवायु के अनुकूल स्थापित किया। उष्ण कटिबंधी क्षेत्र पर्णांगों के निवास के लिए व्यापक वातावरण प्रदान करते हैं, जहाँ उनका विकास विभिन्न रूपों जैसे ट्री फर्न, जलीय पर्णांग, अधिपादप के रूप में होता है।

वाकर (1994) ने उष्णकटिबंधीय भूस्खलन वाले क्षेत्रों में खरपतवार फर्न जैसे *ग्लेचेनेल्ला पेक्टिनाटा* की घनी झाड़ियों द्वारा अनेक वृक्षों के बीजांकुरण विकास का प्रतिरोध करते हुए पाया। लेकिन पादप अनुक्रमण के बाद के चरणों में यह मृदा अवस्था में सुधार करके एवं ढलानों को स्थिर करके अंकुर विकास को सुगम करता है।

पर्णांग एवं पर्णांग–मित्रों ने कवक और जन्तुओं के साथ विरोधी एवं पारस्परिक सम्बधों को विकसित किया है। जबकि कुछ सम्बन्ध अत्यन्त पुराने हैं और अत्यन्त लम्बे समय तक आश्रयी पादप के साथ मौजूद रहते हैं, जैसे–*एन्डोमाईकेराइजा* । कुछ दूसरे सम्बन्धों (जैसे शाकाहारी कीटों का पर्णांगों के साथ) की उत्पत्ति हाल में ही हुई है।

पर्णांगों के वायवीय भाग पर सहजीवी समागम, परजीवी सम्बन्ध एवं अन्तःपादपीय संक्रमण अन्य बीजी पादपों के भाँति ही पाया जाता है। जबकि इसके अनुपात में कीटों का हमला पर्णांगों में 3–7 गुना कम पाया जाता है।

पर्णांग-जीव सम्बन्धों के प्रकार : मुख्यतः पर्णांगों में तीन प्रकार की पारस्परिक क्रियाएं पायी जाती है।

1. *निष्पक्ष सम्बन्ध (न्यूट्रेलिज्म) आश्रयी–उपरिरोही सम्बन्ध* – इसमे अधिपादप पर्णांग, आश्रयी वृक्ष पर उगने के लिए उपलब्ध स्थान का लाभ उठाते हैं, लेकिन प्रतिफल में किसी भी प्रकार का लाभ अथवा हानि नहीं पहुंचाते हैं।
2. *प्रतिरोधक सम्बन्ध (एन्टागोन्जिम)* – परजीवी सम्बन्ध की भाँति इसमें एक जीव लाभान्वित होता है, जबकि दूसरे जीव को इसमें हानि होती है।

3. *सहोपकारिक सम्बन्ध (म्यूचल्जिम)*– इस प्रकार के सम्बन्धों में दोनों ही जीव एक दूसरे से लाभान्वित होते हैं।

अधिकाशतः यह माना गया है कि प्रतिरोधक (एन्टागोन्जिम) और सहोपकारिक (म्यूचल्जिम) समागम एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्धों में विकसित होते हैं, परन्तु पूर्वकथित निष्पक्ष (न्यूट्रेलिज्म) अधिपादप–आश्रयी पादप सम्बन्ध भी अतिविशिष्ट है। वृक्ष पर्णांग (ट्री फर्न) की जड़ों की जल संचयन क्षमता अत्यधिक होती है, अतः यह पर्णांग अधिपादपों के लिए सर्वोत्तम आश्रयदायी पादप है, इसी कारण आज वृक्ष पर्णांगों का अत्यधिक दोहन हो रहा है। पर्णांगों का स्थलीय से अधिपादपीय आवास में परिवर्तन कठिन होता है इसके लिए कई प्रकार के पारिस्थितिकीय सामंजस्य स्थापित करने अनिवार्य होते हैं। इसके विपरीत, अधिपादपीय से स्थलीय आवास में परिवर्तन सुगमता से होता है।

पर्णांग कवक सम्बन्ध– अन्तः पादपीय कवक परजीवी, निष्पाक्ष या सहोपकारिक कवक होते हैं। यह आश्रयी पादपों के जीवित ऊतकों (वायवीय भाग अथवा मूल) में चर अवधि के लिए पाये जाते हैं। इनमें से अधिकतम कवकों की उपस्थिति आश्रयी पादपों में उत्पन्न होने वाले लक्षणों से स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ–कुछ परजीवी कवक मृत पर्ण चित्तियों का निर्माण करते हैं, जबकि कुछ सहजीवी एक्टोमाईकोराइजल कवक मूल को कवकजाल से घेरती है। कुछ हानिकारक अथवा लाभदायक कवक अपनी उपस्थिति के स्पष्ट लक्षणों को प्रदर्शित नहीं करते हैं। अतः प्रारंभिक अवस्था में इन कवकों को इनके लक्षणरहित व्यवहार एवं पारिस्थितिकीय भूमिकाओं के कारण आश्रयी पादपों के लिए निष्पक्ष (न्यूट्रेलिज्म) समझा गया, लेकिन बाद के चरणों में इनमें से कुछ परजीवी अथवा कुछ सहोपकारिक के रूप में स्वयं को प्रदर्शित करते हैं। अन्तः पादपीय कवक पर्णांगों के साथ मुख्यतः 2 प्रकार के सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं 1) मृतजीवी और परजीवी कवक 2) सहोपकारिक माइकोराइजा।

पर्णांगों के लिए कवकों के द्वारा ही आदर्श अधिपादपीय स्थितियाँ पैदा होती हैं जहाँ एक ओर काष्ठ विगलन करने में कवक आवश्यक भोज्य पदार्थ व सूक्ष्म तत्वों का निर्माण करते है वहीं दूसरी ओर माईकोराइजा पर्णांगों को स्थापित करने में सहायता करती है।

मृतजीवी एवं परजीवी कवक– मृतजीवी कवक मृत एवं सड़े–गले जीवों पर उग उनसे भोजन प्राप्त करते हैं। मृतजीवी कवक व्यापक रूप से विभाजित होते हैं। पर्णांगों के जीवनकाल में यह कवक पर्णांगों को किसी प्रकार की प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुचांते हैं। मेडल एवं हेरनार्डज (2008) ने *लेप्नम* 5 जातियों को ट्री फर्न की सड़ी–गली पत्तियों से सूचित किया। इसी प्रकार *लेप्नम ओन्कोस्पर्मेटिस* पोषक विशिष्ट (होस्ट स्पेसिफिक) है, और यह केवल *डिक्सोनिया सेलोवियाना* की सड़ी–गली पत्तियों पर पाई जाती है। जबकि कुछ जातियाँ ट्री फर्न की सभी जातियों के साथ पायी जाती है। मृतजीवी कवकों पर अध्ययन की कमी की वजह से जानकारियों का अभाव है, अतः इन कवकों पर भविष्य में नई खोजें सम्भव हैं।

परजीवी कवक मृत पर्णांगों की जगह जीवित पर्णांगों पर पाई जाती हैं। *रूमोहारा एडीएन्टिफोर्मिस* पर कवक का संक्रमण उसके पत्तों को सजावटी रूप प्रदान करता है। अन्य पर्णांगों पर परजीवी कवक संक्रमण का कोई आर्थिक महत्व नहीं है एवं इन संक्रमण पर उचित कवकनाशी (फंगीसाइड) द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है। *रूमोहारा एडीएन्टिफोर्मिस* की इसके सजावटी महत्व के कारण हवाई, फ्लोरिडा, कोस्टारिका आदि स्थानों पर खेती की जाती है। *कोलेट्राइकम* जातियों पर परजीवी कवक गम्भीर *एन्थ्रोक्नोसिस* को जन्म देती है। (एन्थ्रोक्नोसिस एक मृदा–जनित रोग है, जिसमें पर्णांगों की पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं)। प्रौढ़ पत्तियाँ एवं राइजोम इस संक्रमण के प्रति असंवदेनीशील होते हैं। इस *कोलेट्राइकम* जातियाँ पर कवकनाशक औषधियाँ प्रभावहीन प्रतीत होती हैं, अतः इस बीमारी का निवारण एहतियाती उपायों जैसे संक्रमित भाग को अलग करके, मृदा एवं औजारों को रोगाणुमुक्त आदि करके किया जाता है ।

अधिकतर पर्णांगों पर पाये जाने वाले कवक परजीवी इन्हें गम्भीर रूप से प्रभावित नहीं करते। कभी–कभी यह कवक पर्णांग जातियों को पहचानने में सहायता प्रदान करती हैं। पर्णांग वर्गीकी वैज्ञानिकों ने कुछ खास पर्णांग जातियों की पहचान की है जो विशेष कवक जातियों से सक्रंमित होते हैं। बीजाणुओं के आसान वितरण के कारण यह पर्णांगों की भौगोलिक सीमा में आश्रयी पर्णांगों के साथ पाये जाते हैं।

कुछ पर्णांगों (जैसे *ब्लेचनम, वुडवार्डिआ, एक्रोफोरस* आदि) की युवा पत्तियाँ लाल, गुलाबी या बैंगनी रंग की होती हैं, ऐसा क्लोरोफिल से पहले एन्थोसाइनिन उत्पादन के कारण होता है, इसके फलतः ये पर्णांग युवावस्था में शाकाहारी जीवों एवं कवकों के आक्रमण से अपनी सुरक्षा कर पाने में सक्षम होते हैं।

माईकोराइजा– माईकोराइजा पादप मूल एवं कवकों के बीच होने वाले सहजीवी समागम की उत्पत्ति है। माईकोराइजा पादप जातियों में जल, खनिज एवं पोषक तत्वों के अवशोषण में वृद्धि करता है (मुख्यतः नाइट्रोजन एवं फोस्फोरस) और साथ ही में आश्रयी पादपों की सूखा सहिष्णुता क्षमता में भी वृद्धि करता है। माईकोराइजा परजीवी कवक के साथ प्रतिस्पर्धा करके आश्रयी पादपों की परजीवी कवक संक्रमण से रक्षा करते हैं। माईकोराइजा के विभिन्न लाभों की जानकारी प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा प्रदान की गई है। पर्णांगों में यह पाया गया है कि माईकोराइजा का संक्रमण,

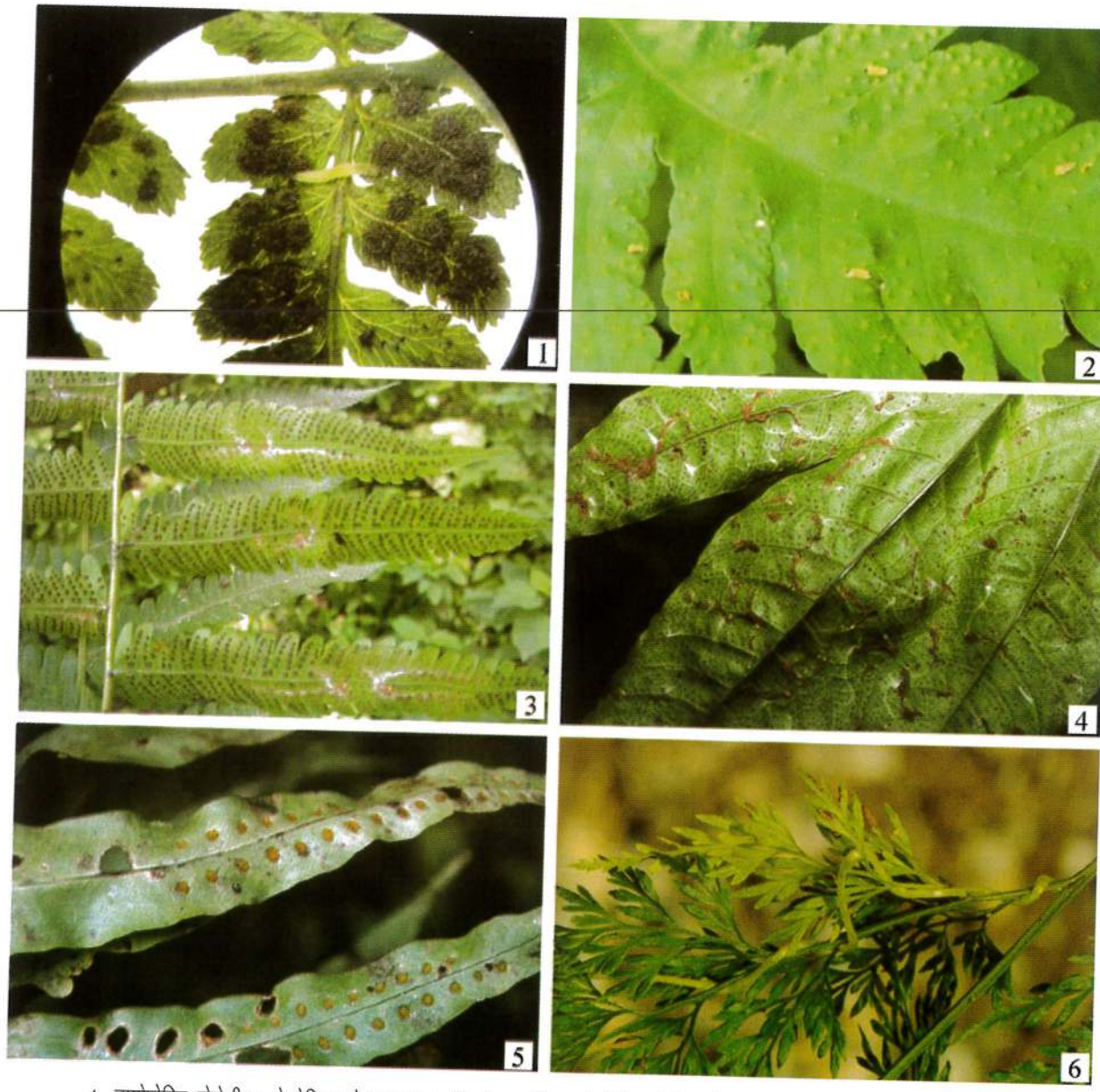

1. *ड्रायोप्टेरिस कैरोली* 2. *टेक्टेरिया कोआडुनाटा* 3. *क्रिस्चेला* जाति 4. *टेक्टेरिया पॉलीमार्फा* 5. *लेपिसोरस* जाति 6. *ओनाईकियम* जाति

संक्रमित पादपों में असंक्रमित की तुलना में, विकास को बढ़ावा देता है। सिद्धिकी एवं पिशेल (2008) ने 7 प्रकार के माईकोराइजा वर्णन किया, जिसमें से दो प्रकार के पर्णांगों में मुख्यतः एन्डोमाईकोराइजा पाये जाते हैं या फिर फर्न–एरिकाइड माईकोराइजा। पर्णांगों में ऐक्टोमाईकोराइजा की उपस्थिति विवादास्पद है।

पर्णांगों में उपस्थित दोनों ही पीढ़ियों युग्मोदभिद एवं बीजाणुद्भिद में माईकोराइजा की उपस्थिति पाई जाती है। लाइकोपोडिएसी, सिलोटेसी एवं ओफिओग्लोजेसी कुल के युग्मोद्भिदों में ऑबलीगेट माईकोराइजा पाये जाते हैं। अन्य सभी पर्णांग कुलों की युग्मोद्भिद अवस्था में फेक्लटेटिव माईकोराइजा पाये जाते हैं, या माईकोराइजा अनुपस्थित होते हैं। लाइकोपोडिएसी कुल में विभिन्न प्रकार के जीवन रूप एवं माईकोराइजल कवकों से सम्बन्ध पाये जाते है। *लाइकोपोडिऐला सरनुआ* का युग्मोद्भिद मृदा सतह पर पाया जाता है जो कवक से जल एवं खनिज प्राप्त करता है व हरे रंग के कारण प्रकाश संश्लेषण करता है, जबकि *लाइकोपोडियम क्लेवेटम* का युग्मोद्भिद धीरे–धीरे विकसित होने वाला क्लोरोफिल रहित एवं भूमिगत होता है, इसलिए इनमें कवक युग्मोदभिद के लिए कार्बोहाइड्रेट का स्रोत है।

फर्न एरिकाइड माईकोराइजा (एफईएम) एक्टोमाईकोराइजा के समान जड़ के चारों ओर कवक तंतुओं का जाल बनता है, साथ ही साथ एन्डोमाईकोराइजा की भांति जड़ की कोशिकाओं में प्रवेश कर जाता है। सर्वप्रथम कोस्टारिका के कुछ अधिपादपीय पर्णांग वंशों (*इलेफोगलोसम, ग्रेमिटिस, हाइमेनोफिल्लम* आदि) में फर्न एरिकाइड माईकोराइजा की उपस्थिति पाई गई। बाद में इक्वेडोर के उपर्युक्त वंशों की 27 जातियों से लेहनेर्ट आदि (2007) ने फर्न एरिकाइड माईकोराइजा की उपस्थिति सूचित की।

पर्णांग जन्तु सम्बन्ध – पर्णांगों का जीव–जन्तुओं के सम्बन्ध आसानी से देखा गया है। पर्णांगों पर जीव–जन्तु का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप में देखा गया है। पर्णाग–जन्तु सम्बंधों में मुख्यतः प्रतिरोधक सम्बन्ध (Antagonistic) प्रकार पाया जाता है, लेकिन यदा–कदा सहोपकारिक समागम (Mutualistic) की भी उपस्थिति पाई जाती है। केंचुओं की एक जाति (*Lumbricus rubellus*) के अध्ययन से मिनेसोट्टा की एक संकटग्रस्त पर्णांग जाति *बोट्रिकियम मोर्मो (Botrychium morma)* की आबादी की तबाही के कारण ज्ञात हुए हैं। परन्तु ये केचुएं पर्णांगों को खाते नहीं हैं, यह मिट्टी की गहराई को कम करके उसमें उपस्थित खनिज पदार्थों को पादप जातियाँ के लिए अनुपलब्ध बना देते हैं।

शाकाहार–जीवाश्म साक्ष्यों द्वारा पर्णांगपोषी संधिपादों की कार्बोनिफेरस एवं ट्राइजिक काल में उपस्थिति का पता चलता है। वर्तमान में संधिपाद मुख्य प्रकार के पर्णांगपोषी हैं, लेकिन समय समय पर कशेरूकी प्राणियों के उदाहरण भी मिलते हैं। *प्यार्हुला मुरिना* नामक पक्षी ग्रीष्म एवं शरद ऋतु के दौरान अपने आहार में फल, बीज आदि हटाकर पर्णांगों की पत्तियों एवं बीजाणुधनियां को शामिल करते हैं।

पर्णांग एवं चींटियों का सहोपकारिक समागम– पर्णांग चींटियों के साथ विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं, यह पर्णांगों को किसी प्रकार का लाभ पहुँचाये बिना अवसरवादी सम्बन्ध से दोनों ही सहभागियों को लाभान्वित करने वाला अत्यन्त विशेषीकृत सहोपकारिक समागम प्रस्तुत करता है, जिसमें दोनों में से कोई भी सहभागी एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकता। मेक्सिकन मैन्ग्रूव में पायी जाने वाली विशाल लेदर फर्न *ऐक्रोस्ट्राइचम दानिफोलियम* में चींटियों का वास अवसरवादी समागम का उत्कृष्ट उदाहरण है। आहार एवं अन्डे देने के प्रयोजन से *माइक्रोलेपिडोपटेरस* लारवा पर्णवृन्त एवं रेकिस में प्रवेश कर जाता है, एवं युवा अवस्था में निकासी द्वारा बाहर आता हैं। *माइक्रोलेपिडोपटेरस* लारवा के खाने के कारण बनी सुंरगों का उपयोग चींटियों की कुछ जातियाँ जैसे *तापिनोमा सेसाइल* (*Tapinoma sessile*) एवं *वासमान्निया ओरोपंक्टाटा* (*Wassmannia auropunctata*) अपने आवास के लिये करती हैं। यह चींटीयाँ अपने आश्रयी पादप *एक्रोस्ट्राइचम दानिफोलियम* (*Acrostichum danaeifolium*) में कुल 6 से 7 महीनों के लिए निवास करती हैं।

पर्णांग चींटी सहोपकारिक समागम– इस प्रकार के समागम में दोनों ही जीव लाभान्वित होते हैं, पर्णांग चींटियों को वास के लिए स्थान (नेक्टरीज या डोमाटिया) प्रदान करती है, प्रतिफल में चींटियाँ पर्णांगों की अन्य जीवों से रक्षा करती हैं। नेक्टरीज मुख्यतः अधिपादपीय पर्णांगों में पाये जाते हैं जैसे–*ड्रायनेरिया, अगलाओमोफर्ड, पोलीपोडियम, एवं प्लेटीसीरियम* लेकिन कुछ स्थलीय वंश जैसे *टेरिडियम* में भी इनकी उपस्थिति पायी जाती है। चींटियां नेक्टरीज से नेक्टर प्राप्त करती हैं, जिसमें ऊर्जा प्रदान करने वाली शर्करा (*प्लीओपेलटिस* की पांच जातियाँ) एवं नाइट्रोजन के स्रोत, अमिनो अम्ल (*ड्रायनेरिया क्वेर्सिफोलिया*) समाविष्ट होती हैं। प्रतिफल में चींटीयों की जातियाँ अपने आश्रयी पर्णांगों की विभिन्न प्रकार के जन्तुओं (एफिड्स आदि) से रक्षा करती हैं। पर्णांग चींटी सहोपकारिक समागम जो अधिपादपीय पर्णांगों के 2 वर्षों में पाया जाता है, लेनिन्जर के अनुसार इस समागम में चींटियाँ डोमेटिया का निर्माण करती हैं। डोमेटिया एक प्रकार के रूपांतरित खोखले राइजोम होते हैं। पर्णांगं इन चींटियों की अपशिष्ट सामग्री से पोषक तत्वों को अवशोषित करते हैं। वर्तमान में कई वैज्ञानिकों ने अपने शोध में इस प्रकार के समागम का विवरण दिया है।

अतः यह सिद्ध हो गया है कि, भले ही पर्णांग पुष्पीय पौधों की तरह परोक्ष रूप से दैनिक जीवन में उतने उपयोगी नहीं हैं, फिर भी ये भोजन, सब्जियों, चारे, औषधियाँ, रेशे, वसा–तेल, इत्र, रंजक, स्वाद धार्मिक महत्व व हॉर्टिकल्चर में उपयोगी है। साथ ही वर्तमान समय में इनके जीवाणु रोधी, प्रति आक्सिकारक, प्रतिरक्षा विज्ञानी एवं मृदा पुर्नजीवन एवं हाइपर एक्यूमूलेटर रूप में इनका उपयोग हो रहा है। ब्रेकन फर्न *टेरिडियम एम्यूलाइनम* से कैंसर रोधी दवा की खोज की जा रही है। अभी भी इनके कई पारिस्थितिक रहस्यों की खोज बाकी है। अतः विश्व समुदाय व वनस्पति संगठनों ने इनके महत्व को देखते हुए इस नेगलेक्टेड श्रेणी के पौधों पर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता जताई है। कौन जाने इस समूह के पौधों में कई ऐसे गुण हमें मिल जायें जो मानव सभ्यता में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दें।

पर्णांग मार्सिलिया – एक परिचय

पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया, बृजेश कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पर्णांग पादप जगत का एक विशिष्ट समूह है, जिसमें अपुष्पी एवं पुष्पी दोनों के लक्षण पाये जाते हैं। पुष्प की अनुपस्थिति के कारण पर्णांग अपुष्पी पादपों से समानता दर्शाते हैं, जबकि संवहन ऊतकों की उपस्थिति इनकी पुष्पी पादपों से समानता दर्शाती है। इस कारण पर्णांगों को संवहनी अपुष्पी पादप (Vascular cryptogams)कहा जाता है। यद्यपि इनके संवहन तंत्र में एधा (केम्बियम) का अभाव होता हैं अतः द्वितीयक वृद्धि नहीं पाई जाती है। ये सबसे आद्य प्रकार के संवहनी अपुष्पी पादप है, जो डिवोनियन तथा कार्बोनिफेरस काल में पृथ्वी की प्रमुख वनस्पति थे और विशाल वृक्षों के रूप में विद्यमान थे। वर्तमान में पाये जाने वाले पर्णांग अधिकांशतः शाकीय हैं।

पर्णांग के जीवनचक्र में दो अवस्थायें पाई जाती हैं, मुख्य पादप बीजाणुद्भिद (Sporophyte) होता है, जो प्रायः जड़, तना एवं पत्तियों मे विभेदित रहता हैं। यह द्विगुणित और दीर्घ जीवनकाल वाला होता है। बीजाणुओं को धारण करने वाली बीजाणुधानियाँ भी इसी मुख्य पादप पर उत्पन्न होती हैं। इन बीजाणुधानियों में अगुणित बीजाणु बनते हैं, जो विकसित होकर पादप की एक दूसरी स्वतंत्र अविभेदित युग्मकोद्भिद (Gametophyte) अवस्था बनाते हैं, जिसे प्रोथेलस कहते हैं। इसी युग्मकोद्भिद् अवस्था में जननांगों (पुंधानी एवं स्त्रीधानी) का विकास होता है। पुंधानी में नर युग्मक एवं स्त्रीधानी में मादा युग्मकों का परिवर्धन होता है, जो अगुणित होते हैं। इन युग्मकों के संयोजन से द्विगुणित भ्रूण बनता है, जो विकसित होकर बीजाणुद्भिद् पादप बनाता है।

लगभग 200 वर्ष पूर्व महान वनस्पतिज्ञ केरोलस लिनियस (1753) ने *मार्सिलिया* वशं का नाम प्रसिद्ध इतालवी प्रकृतिविज्ञ लुइगी फर्डिनांडो मार्सिग्ली (1656–1730) के सम्मान मे रखा था। पर्णांग *मार्सिलिया* एक विश्वव्यापी वंश है, जो शीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बहुतायत में पाया जाता है। इसकी अधिकांश जातियाँ उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं एशिया में मिलती हैं। विश्व में इस वंश की लगभग 10 जीवाश्म जातियाँ और 86 जीवित जातियाँ पाई जाती हैं।

भारत में पर्णांगों की सर्वाधिक विविधता हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं एवं पश्चिमी और पूर्वी घाटों में पाई जाती है, क्योंकि पर्णांग नम एवं छायादार भूमि में उगते हैं। पर्णांगों में संरचनात्मक विभिन्नता भी पाई जाती है, जिसके कारण इनमें आवासीय भिन्नता भी होती है, ये भूमि, पेड़ों, चट्टानों, दलदली भूमि या पानी में भी उग सकते हैं। पर्णांगों की भारत में लगभग 1268 जातियाँ पाई जाती हैं, जिनको 34 कुलों एवं 144 वंशों में वर्गीकृत किया गया है (पादप अन्वेषण–2013)। कुल मार्सिलियेसी, जिसका प्रारूप वंश *मार्सिलिया* है। इसकी विभिन्न जातियाँ खाद्य, औषधीय एवं सजावटी महत्व के कारण बहुत ही उपयोगी है। भारत के विभिन्न भागों में *मार्सिलिया* के कई नाम प्रचलित हैं जैसे– जल चौपतिया (Water clover),सुशनी साग, सुनिष्णक, शिसी, शितिकर इत्यादि।

भारत में पायी जाने वाली *मार्सिलिया* की विभिन्न जातियों का वितरण (स्त्रोत–के. एम. गुप्ता, 1962; एस. चन्द्रा, 2000)

मार्सिलिया माइन्यूटा – लगभग सम्पूर्ण भारत

मार्सिलिया माइन्यूटा प्रजाति *इण्ड़िका* – महाराष्ट्र

मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया– कश्मीर

मार्सिलिया एजिप्टिएका – गुजरात, ओडिशा एवं राजस्थान

मार्सिलिया कन्डेन्स्टा– राजस्थान

मार्सिलिया केदारमली– तमिलनाडु

मार्सिलिया राजस्थानेन्सिस – राजस्थान

मार्सिलिया कोरोमंडेलिका– लगभग सम्पूर्ण भारत

मार्सिलिया ब्रैकीपस – पंजाब, तमिलनाडू

मार्सिलिया ब्रेकिकार्पा– कर्नाटक

मार्सिलिया ग्रासीलेन्टा– महाराष्ट्र

पादप संरचना–*मार्सिलिया* का पादप शरीर जड़, तना एवं पत्तियों मे विभेदित होता हैं। प्रकन्द की पर्वसंधियों (इंटरनोड) से नीचे की ओर अनेक अपस्थानिक जड़ें उत्पन्न होती है। *मार्सिलिया माइन्यूटा* तथा *मा. एजिप्टिएका* में जड़ें पर्वों से भी निकलती हैं, जड़ें शाखित तथा अग्राभिसारी क्रम में उत्पन्न होती हैं।

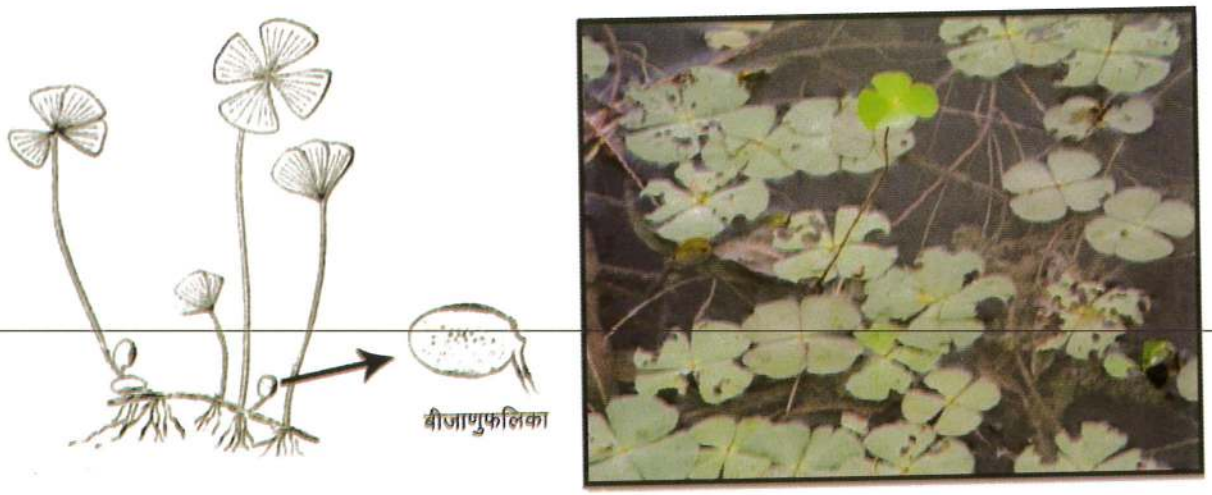

मार्सिलिया पादप प्रकृति एवं आवास

मार्सिलिया का तना भूमिगत प्रकन्द होता है, जो पतला, द्विविभाजित, शाखित और भूमि पर अथवा मिट्टी के नीचे रेंगता हुआ वृद्धि करता है। तने की वृद्धि असीमित होती है। प्रकन्द पर्व तथा पर्वसंधियों मे विभेदित होता है। जलीय जातियों में पर्व लम्बे एवं स्थलीय जातियों मे पर्व अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। प्रकन्द की पर्वसंधियों पर ऊपर की ओर पर्ण तथा नीचे की ओर जड़ें होती हैं।

प्रकन्द पर पर्ण दो एकान्तर पंक्तियों में पर्वसंधियों से परिवर्धित होती हैं। पर्ण लम्बे, संयुक्त व सवृन्त होते हैं, जो तरूण अवस्था में कुण्डलित विन्यास दर्शाते हैं। दलदल में उगने वाली जातियों में पर्णवृन्त लम्बे व कोमल होते हैं। संयुक्त पर्णफलक समान परिमाप वाले चार पर्णकों में विभाजित रहता है, जिसमें पर्ण चतुर्पर्णकी प्रतीत होती है। पर्णक प्रतिअण्डाकार, दीर्घवृत्तीय या फानाकार होते हैं। पर्णकों के किनारे अच्छिन्न अथवा दन्तुर तथा इनमें बहुशाखित जालिकावत् शिराविन्यास पाया जाता है।

पर्णांगों में संवहन तंत्र जाइलम तथा फ्लोएम से मिलकर बना होता है यद्यपि पर्णांगों के जाइलम में वाहिकाओं का अभाव होता है, लेकिन *मार्सिलिया* की कुछ जातियों जैसे *मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया, मा. ड्रमोंडी, मा. हिसुर्टा आदि* की जड़ों मे वाहिकायें पाई जाती हैं। फ्लोएम में सहकोशिकाओं तथा चालनी नलिकाओं का अभाव होता है।

मार्सिलिया की अधिकांश जातियां जलोद्भिद् हैं जैसे–*मार्सिलिया माइन्यूटा, मा. क्वाड्रिफोलिया,* जबकि कुछ जातियां जलस्थलीय जैसे– *मा. एजिप्टिएका* तथा कुछ जातियां मरूद्भिद जैसे–*मा. कन्डेन्स्टा, मा. राजस्थानेन्सिस* आदि। यह जलीय जातियाँ जलाशयों, पोखरों, तालाबों आदि के किनारों पर उगती हैं, जिनमें धीरे धीरे जल सूख जाने के कारण ये अनावृत हो जाती हैं। तब इनके पर्णवृन्त के आधारी भाग से सेम के आकार की अलैंगिक जनन संरचनाए बीजाणुफलिकायें उत्पन्न होती है जो सवृन्त एवं द्विबीजाणुधानिक (Bisporangiate) होती है। *मार्सिलिया* की बीजाणुफलिकावृन्त के पर्णवृन्त पर जुड़ने के विन्यास के आधार पर इसकी विभिन्न जातियों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं–

(क) इसमें बीजाणुफलिकावृन्त सीधे ही पर्णवृन्त पर रेखिय क्रम में जुड़े रहते हैं, जैसे–*मार्सिलिया पोलीकार्पा, मा.सबएन्गुलेटा* आदि में।

(ख) सभी बीजाणुफलिकावृन्त आपस में जुड़ने के बाद, पर्णवृन्त पर एक साथ जुड़े होते हैं, जैसे–*मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया*में।

(ग) बीजाणुफलिकावृन्त स्वतन्त्र रूप से या थोड़े से जुड़कर पर्णवृन्त के आधार पर जुड़े रहते हैं, जैसे–*मार्सिलिया माइन्यूटा, मा. कोरोमंडेलिका* आदि में।

***मार्सिलिया* का जीवन चक्र**–*मार्सिलिया* में जनन मुख्य रूप से निम्न दो प्रकार का होता है –

1. **कायिक जनन**– *मार्सिलिया* में कायिक जनन कन्दों द्वारा होता है, जो छोटी तथा कलिकानुमा संरचनायें होती हैं। कन्द शल्कों से ढका रहता है। अनुकूल परिस्थितियों मे ये प्रस्फुटित होकर नये पादप को जन्म देती हैं।

2. **अलैंगिक जनन**– *मार्सिलिया* में अलैंगिक जनन बीजाणुओं द्वारा होता है। बीजाणु दो प्रकार के, लघुबीजाणु एवं गुरूबीजाणु होते हैं, अतः *मार्सिलिया* एक विषमबिजाण्विक वंश है। लघुबीजाणु आकार में छोटे जबकि गुरूबीजाणु अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। लघुबीजाणुओं का विकास लघुबीजाणुधानीयों (प्रत्येक में 32–64) में तथा गुरूबीजाणुओं का विकास गुरूबीजाणुधानीयों (प्रत्येक मे एक) में तनुबीजाणुधानीय

(Leptosporangiate) प्रकार से होता है। ऐसी बीजाणुधानियाँ केवल एक प्रारम्भिक कोशिका से परिवर्धित होती हैं, जो कि पर्णांगों के उच्च (Advanced) वंशों मे पाई जाती हैं। दोनों प्रकार की बीजाणुधानियाँ, बीजाणुफलिकाओं में परिवर्धित होती हैं।

बीजाणुफलिका की भित्ती अत्यधिक कठोर व मोटी होने के कारण इसके गलने में 2–3 वर्ष का समय लगता है। अनुकूल परिस्थितियों मे बीजाणुफलिका अभ्यक्ष सतह से दो कपाटों मे फट जाती है, जिससे जिलेटिनी वलय जल अवशोषित होकर फूल जाती है, जिसमें बीजाणुधानीयाँ अंतःस्थापित होती हैं। अन्त में बीजाणुधानीयों की भित्ती के विघटन से बीजाणु मुक्त हो जाते है।

प्रत्येक लघुबीजाणु पर एक अस्पष्ट त्रिअरिय कटक होता है तथा इसमें एक अगुणित केन्द्रक व कई स्टार्च कण होते हैं। बीजाणु भित्ती तीन स्तरों– अन्तःचोल, बाह्यचोल और बीजाणुचोल की बनी होती है। लघुबीजाणु (नरयुग्मकोद्भिद) जैसे ही जल के संपर्क में आते हैं, इनका अंकुरण आरंभ हो जाता है। कुछ ही समय में एक लघुबीजाणु से 16 पुमणु जल में विमुक्त कर दिये जाते हैं।

प्रत्येक गुरूबीजाणु वृहत्त अण्डाकार से दीर्घवृत्तीय आकार की संरचना होती है जिस पर एक शीर्षस्थ पेपिला पाई जाती है। इसकी भित्ति अग्र भाग की ओर पतली जबकि पश्च भाग में काफी मोटी होती है। केन्द्रक शीर्ष पेपिला में पाया जाता है। गुरूबीजाणु (स्त्रीयुग्मकोद्भिद) मे उत्तरोत्तर विभाजनों द्वारा गुरूबीजाणुधानी का विकास होता है। जिसमे एक अण्ड़ कोशिका बनती है, जिसे कशाभिक पुमणु निषेचित करता है। निषेचन के फलस्वरूप द्विगुणित युग्मनज का निर्माण होता है, जो परिमाप मे शीघ्रता से बढ़ता है तथा इससे 2 से 4 दिन में ही एक तरूण बीजाणुद्भिद् पादपकाय परिवर्धित हो जाता हैं।

आर्थिक महत्व– *मार्सिलिया* के अर्न्तगत आने वाली विभिन्न जातियों का आर्थिक महत्व निम्नलिखित हैं–

1. **भोज्य पदार्थ के रूप में–** *मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया,* प्रचलित नाम – सुषनी साग, इस जाति के पर्णकों का झारखण्ड़ की 'हो' जनजाति द्वारा सब्जी के रूप मे इस्तेमाल किया जाता हैं। स्टार्च की अधिकता के कारण इसके बीजाणुओं को पीसकर उसे आटे मे मिलाकर रोटी भी बनाई जाती हैं, आस्ट्रेलिया मे कुछ आदिम जनजातियाँ *मार्सिलिया* की बीजाणुफलिकाओं को पीसकर दलिया के रूप में उपयोग करती है जिसे वे 'नार्डू' कहते हैं ।

2. **औषधीय महत्व**– *मार्सिलिया* की विभिन्न जातियों में मूत्रल, कफनिस्सारक, सम्मोहक, कामोत्तेजक, मधुर, शुद्धिकारक, वीर्यवर्धक, निद्राकर, रक्तपित्तनाशक, कटुतिक्त, पीड़ानाशक, शामक आदि गुण होते हैं। इसलिए इसका उपयोग उच्च रक्तचाप, सिर दर्द, बदन दर्द, नैत्रप्रदाह, अस्थमा, मिरगी, माइग्रेन, कब्ज, त्वचा रोग, बदहजमी, ज्वर, कोढ़, सर्प दंश, फोडा, अनिद्रा आदि रोगों की औषधी के रूप में किया जाता है। *मार्सिलिया माइन्यूटा* की पत्तियों के अदरक के साथ बने काढ़े का प्रयोग खाँसी एवं श्वसन रोगों में किया जाता है।

3. **सजावटी महत्व**– *मार्सिलिया* की कुछ कम ऊँचाई वाली जातियाँ जैसे– *मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया, मार्सिलिया हिर्सुटा* आदि एक्वेरियम के तल में उगाई जाती हैं, जो तल में फैलकर एक हरी चटाई के रूप में अत्यन्त सुन्दर लगती हैं।

पर्णांग–प्रथम स्थलीय पौधों का समूह

विनीत कुमार रावत
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

भारत में हिमालय क्षेत्र, मध्य भारत एवं पश्चिमी घाट पर्णांगों (टेरिडोफाइट्स) की विविधता के समृद्ध क्षेत्र हैं। कहीं–कहीं उन्हें खरपतवार समझकर काट दिया जाता है, जिस कारण सामान्य रूप से पायी जाने वाली जातियों के साथ–साथ अतिविरल संकटग्रस्त जातियां भी समाप्त हो जाती हैं। इनके संरक्षण के लिए पारंपरिक ज्ञान व आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक के मध्य सामंजस्य की अत्यन्त आवश्यकता है, ताकि ऐसे विरल एवं अद्भुत पादप समूह को नष्ट होने से बचाया जा सके। विश्वभर में विविधात्मक स्वरूप तथा आकृति के पर्णांग पाये जाते हैं। धरती पर इनकी तीन इंच ऊँची जातियो से लेकर 25 मीटर से अधिक ऊंची जातियां मिलती हैं। पर्णांग समूह का हिमालय की पादप विविधता, पारिस्थितिक संतुलन एवं संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण महत्वपूर्ण स्थान है। पर्णांग समूह (फर्न एवं फर्न एलीज) के पौधे फल फूल एवं बीज रहित होते हैं परन्तु आकर्षक पर्ण विन्यास एवं पत्तियों पर जनन संरचना सोराई का विभिन्न प्रकार से वितरण के कारण देखने में मोहक व आर्कषक होते हैं। इनकी जड़ जैसे भाग राइजोम की विसर्पी अर्थात् जमीन पर रेंगने की प्रवृत्ति के कारण इन्हें पादप समुदाय का सरीसृप भी कहा जाता है। पर्णांग प्रथम स्थलीय पौधों का समूह है, जिसमें अंगों का विकास एवं विभेदन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जड़, तना एवं पत्ती विकसित अवस्था सर्वप्रथम इसी समूह में मिलती है। अंगों के विकास के साथ ही साथ वृहदाकार पौधे सर्वप्रथम इसी वर्ग में पाये जाते हैं। अंगों के प्रादुर्भाव के साथ पौधों की आन्तरिक रचना में भी कुछ विशेष प्रकार की कोशिकाओं तथा ऊतकों जैसे दृढ़ ऊतक, संवहनी ऊतक, क्यूटिकिल एवं रन्ध्र इत्यादि की उत्पत्ति सर्वप्रथम इसी वर्ग में हुई। आकारकी एव शारीरिक विकास के अतिरिक्त पौधों में कार्यिकी विकास हुआ और अंगों के कार्यों में विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप इस वर्ग के पौधे सफलतापूर्वक स्थलीय वातावरण के अनुरूप विकसित हो सके। पर्णांगों की जातियाँ अधिकांशतः नम एंव छायादार स्थानों एवं हल्की अम्लीय मृदा वाले स्थानों पर पाए जाते हैं। प्रोफेसर वीर के अनुसार लगभग 35 से 40 प्रतिशत विविधता हिमालय क्षेत्र में सीमित है। टेरिडोफाइटा समूह के पौधे ठंडे स्थानों से लेकर अर्द्धशुष्क आवासों में भी पाये जाते हैं। *सिलेजिनेला रूपेस्ट्रिस, सि. लेपिडोफाइला* नामक जातियां शुष्क आवासों में भी पायी जाती हैं। आकार के आधार पर पर्णांगों के समूह में सूक्ष्म पौधा एजोला (1 से.मी. से छोटे) से लेकर विशाल वृक्ष (साइथिया– 20 से 25 मी0 तक ऊँचे) पाये जाते हैं। आवास प्रकार के आधार पर इस वर्ग के पौधे प्रायः शाकीय होते हैं तथा प्रायः नम व छायादार स्थानों में पाये जाते हैं। कुछ जातियां जलीय भी होती हैं, जैसे – *साल्वीनिया, एजोला* आदि। पर्णांग अधिकांशतः छायादार, नमीयुक्त, हवादार वातावरण वाले स्थानों पर उगना पसन्द करते हैं। शुष्क स्थान, अधिक ताप, ठण्डा वातावरण एवं कठोर भूमि इनके उगने के लिए उपयुक्त नहीं होती है। जलभराव वाली जगह में उगने में कठिनाई होती हैं। आवास प्रकार के आधार पर टेरिडोफाइट विभिन्न ऊँचाई तक पाये जाते हैं। उपस्थिति के अनुसार 4 मुख्य श्रेणियां हैं जिनमें मुख्यतः स्थलीय, अधिपादपीय, जलीय, चट्टानों पर एवं आरोही प्रकार के होते हैं। ऊँचाई के अनुसार उच्च, मध्यम व निम्न श्रेणी है। ड्रायोप्टेरिडेसी, एथाइरियेसी, वाल्वीटिडेसी, टेरिडसी, टेक्टरियेसी, थेलिप्टेरिडेसी कुल की अधिकांश जातियां स्थलीय आवास में अधिकता से पनपती हैं। डिप्लेजियम व एथाइरियम की जातियां जंगलों में सतह पर पायी जाती हैं। *लाइगोडियम, माइक्रोसेरियम, स्टेनोक्लीना* विसर्पी राइजोम के होने के कारण आरोही प्रकृति के होते हैं। *साल्वीनिया, एजोला, मार्सीलिया, सिरट्रोप्टेरिस* इत्यादि जातियां जलीय आवासों में उगती हैं। *आनीकियम, पिटेरोग्रामा* व *इक्वीसीटम* की जातियां बलुई मिट्टी में पायी जाती हैं। *ओलिऐन्ड्रेसी, पोलीपोडियेसी, एसप्लेनियेसी, विटेरियेसी, डवालियेसी* कुल की अधिकांश जातियां अधिपादपीय आवास में पनपती हैं। विकास क्रम के अनुसार यह समूह निम्न क्रिप्टोगेम्स व उच्च संवहनी पौधों के मध्य विशिष्ट स्थान रखते हैं। यह पादप समूह ही सर्वप्रथम स्थलीय स्वभाव के लिए अनुकूलित हुआ था। लेकिन इसमें प्रजनन की प्रक्रिया के लिए जल की आवश्यकता पूर्ण स्थलीय स्वभाव के लिए पूर्ण रूप से स्थलीय नहीं बनाती है। भारत में टेरिडोफाइट हिमालय क्षेत्र (पश्चिमी व उत्तर–पूर्व हिमालय), मध्य भारत में पचमढ़ी व अमरकण्टक के पहाड़ी क्षेत्र, अंडमान निकोबार द्वीप समूह, राजस्थान में माउण्ट आबू व अरावली पर्वत श्रृंखला के कुछ क्षेत्र, दक्षिण भारत में पश्चिमी व पूर्वी घाट, उत्तर प्रदेश, बिहार व झारखंड के पहाड़ी क्षेत्र अपनी टेरिडोफाइट विविधता के लिए जाने जाते हैं। परन्तु हिमालय क्षेत्र (पश्चिमी व उत्तर–पूर्व हिमालय) व दक्षिण भारत का पश्चिमी घाट ही समृद्ध टेरिडोफाइट विविधता के प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। यहां पर इन वनस्पतियों की बनावट में भारी अंतर पाया जाता है। अतः यह बात सही है कि भिन्न पारिस्थितिकी एवं जलवायु का फर्न की बनावट पर व्यपाक असर पड़ता हैं

पर्णांग समूह का हिमालय की पादप विविधता, पारिस्थितिक संतुलन एवं संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्यक्ष रूप से अपेक्षाकृत आर्थिक अनुपयोगिता के कारण पर्णांग को प्रायः अनावश्यक खरपतवार के रूप में अनदेखा कर दिया जाता है। आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से ये पौधे अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है तथा संवाहन व असंवाहन पादप समूह के संयोजक माने जाते है। इनके संरक्षण के लिए पारंपरिक ज्ञान व आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक के मध्य सामंजस्य की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि ऐसे विरल एवं अद्भुत पादप समूह को नष्ट होने से बचाया जा सके। भारत की भौगोलिक विशालता, जैव–भौगोलिक स्थिति एवं अपार पारिस्थितिकीय विविधताओं के संयुक्त प्रभाव ने देश के विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों में टेरिडोफाइट के उगने के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान की हैं। पर्णांगों की जातियाँ समशीतोष्ण (ट्रॉपिकल), उपोष्ण (सबट्रॉपिकल) एवं शीतोष्ण (टेम्परेट) जलवायु वाले प्रदेशों में मुख्य रूप से पाई जाती हैं।

पर्णांग हिमालय क्षेत्र में स्थलीय व अधिपादपीय पादप समूह का महत्वपूर्ण भाग होते हैं। विविध प्रकार की जलवायु में विविध प्रकार की पर्णांगों की कई जातियां पाई जाती हैं। विभिन्नता, आकृति–प्रकृति एवं स्वरूप के लिहाज से पर्णांग अपनी–अपनी विशेषताएं रखते हैं। अति विरल महत्वपूर्ण पर्णांग संकटग्रस्त जातियों में *एल्सोफाइला* की समस्त जातियां (सत्य फर्न्स) *साइलोटम न्यूडम, आफियोग्लोसम, की विभिन्न जातियां, प्लेटीसेरियम एल्सीर्कोने, डिप्टेरिस वालीचियायी, आफियोडर्मा पेण्डुला* (सर्प की जीभ जैसा) *एक्रोस्टकम ओरियम, मेटूसिया आरिएन्टेलिस, प्लेजियागाइरिया ग्लोकेसेन्स, एन्जियोप्टेरिस इवेक्टा, एस्प्लेनियम* की कुछ जातियाँ एवं *ऑसमुण्डा रेगेलिस* जो विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्र में पायी जाती है, सम्मिलित हैं। पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाली जातियों में *विटारिया गढ़वालेन्सिस, वि. हिमालेन्सिस,* अण्डमान निकोबार में *एल्सोफाइला निकोवारिका, ए. अल्वोसिटेसिया, लिडन्सिया अण्डमानिका, प्रोनफ्रियम, नकाकिऐनम,* मध्य भारत में *सिलेजिनेला जैनाई, सि. पानीग्रहाई, आइसोइटिस विलसपुरेन्सिस, आ. पन्ताई, सायाथिया वालकृष्णाई* सम्मलित हैं एवं पूर्वी हिमालय में बहुतायत से पाये जाने वाले वंशों में *डिप्लेजियम, टेरिस, एथीरियम, काइलैन्थम, टेक्टेरिया, नेफोलपिस, साइक्लोसोरस* एवं *प्रोनफ्रियम* इत्यादि सम्मिलित हैं।

सर्वप्रथम बेडम (1883) ने भारत में पायी जाने वाली टेरिडोफाइट की 466 जातियाँ का अपनी पुस्तक में वर्णन किया था। भारत में 20वीं सदी में मेहरा (1939), पाणिग्रही (1960), नायर (1970) के द्वारा वर्गिकी के क्षेत्र में बहुत कार्य हुआ है। पर्णांग के मुख्य वर्गीकरण की पद्धतियाँ पी. ची. सरमोली (1977), नायर (1974), चिंग (1978), क्रेमर (1990) एवं स्मिथ (2008) द्वारा प्रतिपादित की गयी हैं। भारत में वनस्पतिज्ञ मुख्यतः पी. ची. सरमोली की वर्गीकरण पद्धति का अनुसरण करते हैं। प्रोफेसर एस.एस. बीर ने टेरिडोफाइट की विभिन्न विधा जैसे वर्गिकी, पारिस्थितिकी, कोशाविज्ञान, आनुवांशिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनके द्वारा प्रारम्भ किये गये इण्डियन फर्न जनरल का आज टेरिटोफाइट के अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

पर्णांग विज्ञान में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वर्गीकर वैज्ञानिकों का सराहनीय योगदान रहा है। जिसमें पानिग्रही (1966), डॉ. आर. डी. दीक्षित (1984), डॉ. ऐ. के. वैश्य (1982) सम्मलित हैं। राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान, लखनऊ के वैज्ञानिक डॉ. बी. के. नायर, डा. सुरजीत कौर, डॉ. सुभाष चन्द्रा व डॉ. पी.बी. खरे का भी पर्णांगों के क्षेत्र में सराहनीय योगदान रहा है। डॉ. सुभाष चन्द्रा ने पर्णांगों की संवहन तंत्र व्यवस्था का वर्णन किया है। डॉ. पी. बी. खरे द्वारा पर्णांगों की आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान, जैव अभियान्त्रिकी एवं ऊतक संवर्धन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। अभी तक भारत के विभिन्न पादप विविधता से सम्पन्न क्षेत्रों से टेरिडोफाइट फ्लोरा का प्रकाशन हो चुका हैं– जिसमें नागालैंड – जमीर एवं राव, मेघालय – ऐ. के. वैश्य, आसाम – एस. के. वोरठाकुर, अरूणाचल प्रदेश–सरनाम सिंह एवं जी. पानिग्रही, पश्चिमी घाट – वी. एस. मानिकम, कुंमाऊं हिमालय – पाण्डे, खुल्लर (पश्चिमी हिमालय), घोष (उत्तर–पूर्व क्षेत्र), मध्य प्रदेश (पंचमढी एवं समीपवर्ती क्षेत्र – फ्लोरा ऑफ मध्यप्रदेश– डॉ. आर. डी. दीक्षित व अन्य सम्मलित हैं।

पर्णांग का सम्पूर्ण पौधा प्रपर्ण कहलाता है जो राइजोम, स्टाइप, रेकिस एवं इस पर उत्पन्न होने वाले पिच्छक (पिन्ना) जो पुनः विभाजित होकर पिच्छका (पिन्नयूल्स) से बना होता है। पर्णांगों की पत्तियां तरूण अवस्था में कुण्डलित हो जाती हैं जिसे कुण्डलित विन्यास कहते हैं। यह इस समूह की मुख्य विशेषता है। इस वर्ग के अन्तर्गत संवहन ऊतक युक्त, अपुष्पोद्भिद् पौधे आते हैं। इस वर्ग के सदस्यों में जल एवं खनिज लवणों के संवहन हेतु संहवन ऊतक जाइलम और फ्लोएम होते हैं। फर्न्स की जातियों में सोराई पत्तियों पर विभिन्न आकार की होती जैसे गोल, शिराओं पर लम्ववत् गुच्छे में (*ओसमुण्डा*), मध्य शिरा के सहारे (*ब्लेकनम*), पत्ती के शीर्ष पर (*पाइरोसिया* एवं *वेलविसिया*) में सम्पूर्ण पत्ती पर एक समान वितरित (*इलेफोग्लोसम*), जब सोराई एक झिल्लीनुमा संरचना से ढकी रहती है तो इस प्रकार की सोराई को इन्ड्यूसियेट व इन्डसिया रहित सोराई एक्सइन्ड्यूसियेट कहलाती है। यदि पत्ती की बाहरी सतह सोराई को ढक लें तो ऐसी संरचना युक्त सोराई छद्म सोराई (फाल्स इन्ड्यूसियेट)

कहलाती हैं जैसे *टेरिस* व *एडिएन्टम, टेरीडियम*। काइलेन्थस फाल्स व ट्रू इन्टूसियम दोनों प्रकार की सोराई उपस्थित होती हैं। सोराई के आकार व विन्यास में भी भिन्नता पायी जाती है, जो प्रत्येक जाति में भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं। वृक्काकार (*नेफ्रोलेपिस, ड्रायोप्टेरिस*) , गोल व पेल्टेट (*पालीस्टीकम*) पोकेट जैसा (*डवालिया*), तुरही के आकार की (*ट्राइकोमानेस*), वाल्वेट (*हाइमिनोफिल्लम*), शिरा के लम्बान में (*एस्प्लेनियम*), किनारे के सहारे (*टेरिस*) , मध्य शिरा के दोनों ओर श्रृंखला की तरह (*वुडवार्डिया*), सूक्ष्म गोल (*सिरेटोप्टेरिस*)। बीजाणु भी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – एकरेखीय (मोनोलीट) – ग्लीकिनीया, त्रिरेखीय (ट्राईलीट) – डिक्रानोप्टेरिस। बीजाणु प्रकीर्णन में स्प्रिंग जैसी संरचना एन्यूलस जो बीजाणुधानी का भाग हैं, सहायता करती है। इन पौधों में लैंगिक, अलैंगिक एवं कायिक प्रकार का प्रवर्धन पाया जाता है। मुख्यतः प्रकृति में इनका प्रवर्धन बीजाणुओं के माध्यम से होता है। इसके अतिरिक्त कायिक प्रवर्धन विशिष्ट संरचनाओं जैसे पत्रप्रकलिका (*एस्प्लेनियम वल्वीफेरम, एडिऐन्टम एजवर्थी, एम्पीलोप्टेरस प्रोलीफेरा, एनीमिया रोटन्डीफालिया ,पालीस्टिकम सेटीफेरम, टेक्टेरिया जेनीफेरा*), पत्ती के शीर्ष पर स्थित प्रवर्धन कलिका के माध्यम से (*वालवीटिस, एस्प्लेनियम*), शीर्ष वृद्धि (*लाइकोपोडियम*), स्टोलन एवं ट्यूबर (*नेफ्रालेपिस*), जैमा कप (*मार्सीलिया*), सिनेनजियम (*साइलोटम*) एवं जड़ (*आफियोग्लोसम*) के द्वारा होता है। कुछ पर्णांगों की कुछ जातियों में सम्पूर्ण पौधे में दो प्रकार की संरचना पाई जाती हैं। फलद व दूसरी संरचना (वन्ध्य) उदाहरण स्वरूप *मेट्रासिया ओरयेन्टेलिस, प्लेजियोगाइरिया, ओसुमण्डा रेगेलिस* एवं *आनोक्लिया सेन्सविलस*।

पर्णांगों में दो भिन्न आमाप, संरचना तथा कार्य में भिन्न बीजाणुओं के बनने की प्रक्रिया को विषमबीजाणुकता कहते हैं। विषमबीजाणुकता पर्णांगों के समूह के नौ वंशों जैसे *सिलेजिनेला, आसोइटीज, मारसीलिया, साल्वीनिया, एजोला, स्टाइलीटीज, पिलूलेरिया, रेग्नीलीडियम* एवं *प्लेटीजोमा* में पायी जाती है। पर्णांग समूह के अधिकांश पौधे समबीजाणुक होते हैं, अर्थात् इनमें केवल एक ही प्रकार की बीजाणुधानियां पायी जाती हैं और उनमें उत्पन्न होने वाले सभी बीजाणु एक जैसे होते हैं। यह स्थिति समबीजाणुकता कहलाती है। टेरिडोफाइट की जातियां लेटेक्स रहित होती हैं लेकिन अपवादस्वरूप *रेग्नेलिडियम* नामक जाति में लेटेक्स की उपस्थिति का पता चला हैं। *सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस* संजीवनी के नाम से विख्यात हैं जो हनुमान जी द्वारा लक्ष्मण के प्राण रक्षा हेतु लाई गयी थी। इसमें जल धारण की अद्भुत क्षमता पाए जाने के कारण इसे रिसरेक्शन प्लान्ट के नाम से भी जाना जाता है। *सिलेजिनेला* (फर्न एलीज उप समूह का पौधा) मॉस न होने पर भी क्लब मोस के नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि इनके अकारिकी लक्षण मॉस से मिलते जुलते हैं। पर्णांगों की कुछ जातियों में रंग दीप्ति के गुण भी हैं। इसी गुण के कारण *सिलेजिनला अण्डनोई* को इलेक्ट्रिक पौधा भी कहते है। हाईमिनोफिनेसी कुल की जातियाँ स्टोमिटा रहित होने के कारण अर्द्ध पारदर्शी एवं पतली फिल्म या पेपर जैसी होती हैं इसलिए इनका अन्य नाम फिल्मी फर्न भी है। टेरिडोफाइट समूह के पौधे सर्वप्रथम स्थलीय स्वभाव के लिए अनुकूलित हुए इनसे पूर्व में विकसित मोस, लाइकेन एवं शैवाल जलीय आवास के लिए ही अनुकूलित होते थे। इस समूह के पौधे क्रिप्टोगेम्स व फेनेरोगेम्स के मध्य की कड़ी होने के कारण इनका पादप जगत में विशेष महत्व है। कुछ पौधे तो अपने बाह्य स्वरूप के अनुरूप औषधीय महत्व के होते हैं जैसे *आफियाग्लौसम* का आकार सर्प के फन की तरह होता है एवं इसका उपयोग सर्पविषरोधी की तरह, *एडियेन्टम* (मेडन हेयर फर्न) का उपयोग गंजेपन के उपचार में *एस्प्लेनियम* (स्प्लीनवर्ट) का उपयोग यकृत व तिल्ली के रोगों के उपचार में होता है।

बगीचों के छोटे खुले तालाबों में *एजोला, साल्वीनिया, मारसीलिया* एवं *सिरेटोप्टेरिस* इत्यादि जातियाँ जल सतह पर आसानी से उगती हैं। *एसप्लेनियम, ड्राइनेरिया, माइक्रोसोरियम* एवं *प्लेटीसेरियम* इत्यादि जातियाँ अधिपादपीय फर्न्स के रूप में उगायी जाती है। उगाते समय इनके क्रीपिंग राइजोम को पर्याप्त रूप से मॉस से ढकना चाहिए एवं नमी बनाये रखने के लिए समय–समय पर पानी का छिड़काव आवश्यक होता है। इनको अधिकांशतः वर्षा ऋतु में उगाना चाहिए एवं पर्याप्त छाया एवं नमीं इनके वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। 5 से 7 पी.एच. वाली हल्की अम्लीय हयूमस युक्त बलुयी मृदा इनके वृद्धि के लिए श्रेष्ठ मानी जाती हैं। जल भराव वाली मिट्टी इनकी वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होती है। जैव विविधता का अध्ययन करते समय आवृतबीजी पादप विविधता एवं उनकी पारिस्थितिकी व पारितंत्र का जहाँ एक ओर विशेष ध्यान रखा गया वहीं यह पादप समूह आज भी अछूता है, लेकिन पिछले दो दशकों से वैज्ञानिकों ने इस समूह के अध्ययन हेतु रुचि दिखाई है। विश्व के विभिन्न भूभागों में टेरिडोफाइट की बाहुल्यता वाले वनों का तेजी से लोप हो रहा है। विश्व में बढ़ती गरमाहट, मौसम परिवर्तन, बढता प्रदूषण, वनों में आग लगना इसके लिए जिम्मेदार हैं, जिससे पर्णांग समुदाय की जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं, अतः इनका संरक्षण व संवर्धन इनके अस्तित्व के लिए अत्यधिक आवश्यक हो गया है।

हिप्पोफी– आधुनिक युग के लिये एक वरदान वनस्पति

संजय कुमार एवं एस. एस. दाश
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

"भावी पीढ़ी की औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अगर कौई एक पौधा मनोनीत करने को कहा जाये तो मैं हिप्पोफी को यह स्थान दूंगा"
–मार्क ब्लूमैन्थल, अमेरिकन बॉटनीकल काउंसिल

हिप्पोफी इलेगिनेसी कुल का एक अद्वितीय एवं बहुउपयोगी क्षुप वृक्ष है। इस अद्भुत वनस्पति ने अपनी औषधीय एवं सशक्त पोषण क्षमताओं के द्वारा आधुनिक युग के साथ ही भविष्य की आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति की संभावनाओं के फलस्वरूप विश्वभर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। शोधानुसार *हिप्पोफी* वंश की उत्पत्ति हिमालय के उच्च पर्वतीय भागों के शीत मरूस्थल क्षेत्र में हुई मानी जाती है, जहाँ से इस वंश का विस्तार दक्षिण–पश्चिम, उत्तर–पश्चिम, उत्तरी चीन, मंगोलिया के अन्तः पूर्वी क्षेत्रों से लेकर यूरेशिया के उत्तर पश्चिम क्षेत्रों तक हुआ है। विश्व में इस वंश की कुल 9 जातियाँ पाई गई हैं। यह वंश रूस, जर्मनी, फ्रांस, ईटली, यूक्रेन, बेलारूस, स्वीजरलैंड, डेनमार्क, स्वीडन, पोलैंड, निदरलैंड, फिनलैंड, नार्वे, रोमानिया, बुल्गारिया एवं इस्टोनिया आदि देशों तक व्याप्त है ।

एशिया में *हिप्पोफी* वंश की जातियों का वितरण हिन्दू–कुश हिमालय की पर्वतमाला से लेकर यूनान पठारी क्षेत्र तक है, जिसमें उत्तरी एशिया, ईरान, कजाखिस्तान, तुर्की, किग्रिस्तान, पाकिस्तान, चीन, मंगोलिया, नेपाल, भूटान एवं म्यांमार सम्मिलित हैं। *हिप्पोफी* की तीन जातियाँ भारत के उत्तर पश्चिम हिमालय में जम्मू कश्मीर, लेह लद्दाख, हिमाचल प्रदेश के लाहौल स्फिति, कुल्लू, रोहतांग, किन्नौर, उत्तराखण्ड के चमोली, रूद्रप्रयाग, टिहरी, उत्तरकाशी एवं पिथौरागढ़ के शीत मरूस्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्रों एवं सिक्किम के जेमा II एवं III, लाचेन एवं लाचुंग घाटी, अरूणाचल प्रदेश के न्यू बोमडिला के कुछ क्षेत्रों में 2200 से 4500 मी. की ऊंचाई तक पायी जाती हैं। इसे अंग्रेजी में सामान्यतः सी–बकथार्न, सी–बेरी एवं भारत के अलग–अलग भागों में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है जैसे तिब्बत में इसे तेसरमांग, लेह–बेरी, हिमाचल में छारमा, उत्तराखंड में अमेस, आमिल एवं उत्तर पूर्वी भारत में तारोबो नाम से जाना जाता है।

भारत में इसकी तीन प्रमुख जातियों का वितरण निम्नवत है।

जाति	भारत में वितरण	समुद्रतल से ऊंचाई (मी.में)	पुष्पन
हिप्पोफी रेह्मनोइडिस	लद्दाख–लेह, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड	1500–4200	मई–सितम्बर
हिप्पोफी सेलिसिफोलिया	लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश	2000–4200	जून–अक्टूबर
हिप्पोफी तिब्बेटाना	लद्दाख की जंसकार घाटी एवं जम्मू कश्मीर हिमालय का शीत मरूस्थल	2500–5000	मई–सितम्बर

ऐतिहासिक विवरण – लैटिन भाषा के दो शब्दों हिप्पो एवं फाओस से मिलकर बना है *हिप्पोफी* जिसका अर्थ "चमकदार अश्व" (साइनिंग होर्स) होता है, ऐसी मान्यता है कि अश्वों की चमकदार त्वचा एवं शारीरिक वृद्धि के लिये *हिप्पोफी* के पके हुये फलों एवं पत्तियों को प्राचीन काल में अश्वों को चारे के रूप में दिया जाता था, इसी के आधार पर इस वनस्पति का नामकरण हिप्पोफी के तौर पर हुआ है। तांग शासनकाल (618–907ई०पूर्व) में लिखे पौराणिक तिब्बती चिकित्सा ग्रंथ "द रिग्यूड बैजी (The RGyud Bzi) के अनुसार तिब्बत में *हिप्पोफी* का औषधीय प्रयोग के 900 ईसा पूर्व से भी पुराना है।

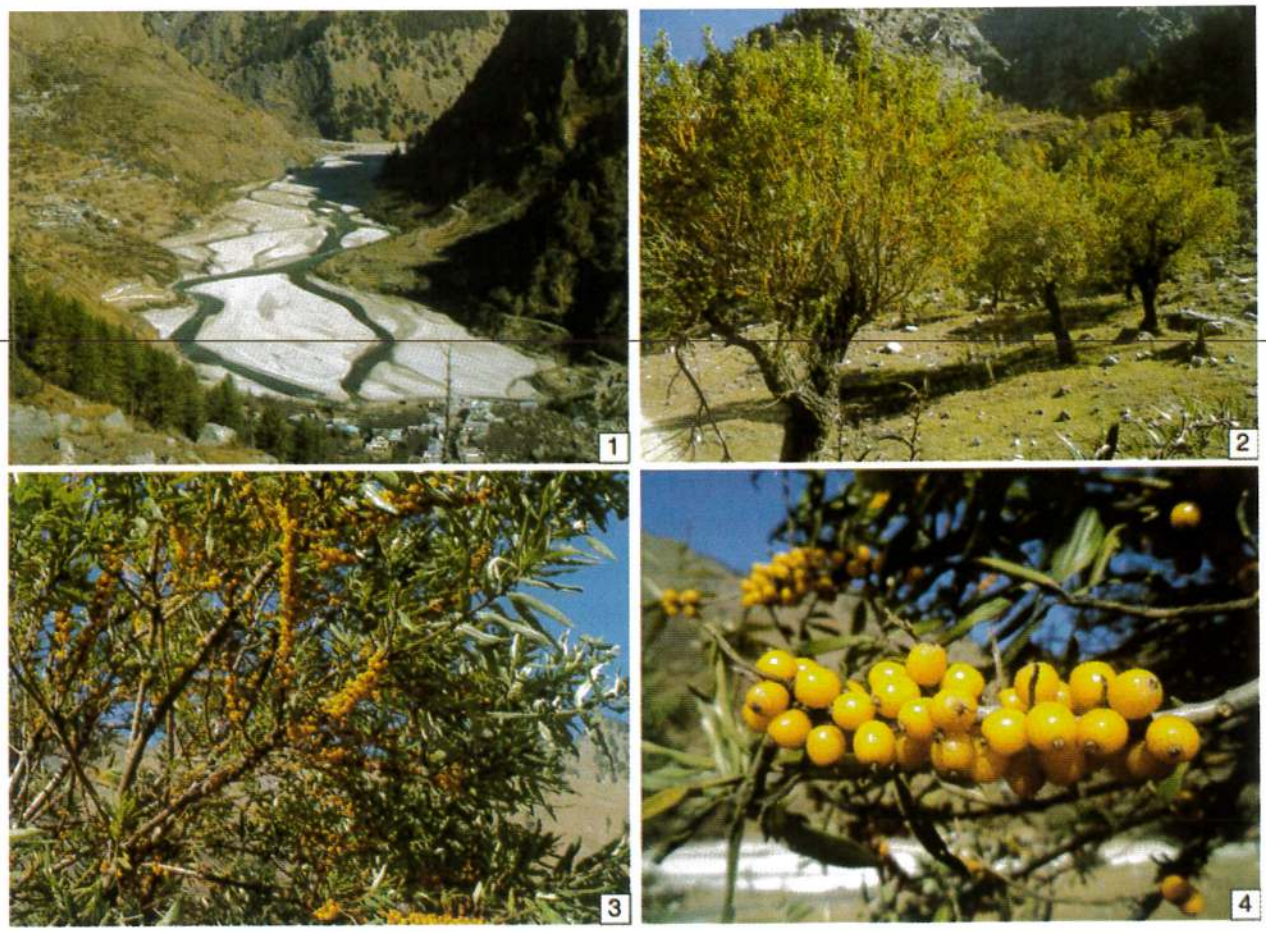

1. उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी (टकनौर घाटी) में *हिप्पोफी* का प्राकृतिक आवास 2. हर्षिल में रोपित किये गये *हिप्पोफी* के वृक्ष, 3. *हिप्पोफी रेह्मनोइडिस* के वृक्ष पर एकान्तर क्रम में लगी पत्तियाँ एवं फल 4. *हिप्पोफी* की परिपक्व बेरियाँ

वानस्पतिक विवरण – हिप्पोफी एक कठोर तने वाली, पर्णपाती, एकलिंगी मुख्यतः कंटकयुक्त, 2 से 4 मी० की ऊंचाई वाली क्षुप वनस्पति है। इसकी पत्तियाँ पतली, भालाकार एवं ऊपरी सतह पर चांदी जैसे भूरे रंग की होती हैं। पत्तियाँ तने एवं शाखाओं पर एकान्तर क्रम में लगी होती हैं। पौधे का नर पुष्पक्रम चार से छः दललग्नों से बना होता है, जबकि मादा पुष्पक्रम मात्र एक दललग्न से बनता है, जिसमें एक अण्डाशय एवं एक बीजांड लगा होता है। मादा पौधे पर 6–9 मिमी. डाईमीटर के बेरी सदृश फलों का उत्पादन होता है। पकी हुई बेरियाँ नारंगी–लाल रंग की होती हैं, जिनके बीच में एक गहरे भूरे रंग का अंडाकार 2.8 से 5 मि.मी. आकार का बीज होता है। हिप्पोफी की सभी जातियों में प्रकीर्णन मुख्यतः वायु द्वारा एवं कभी कभी चीटिंयों द्वारा होता है। केवल वायु द्वारा होने वाले प्रकीर्णन को एनिमोफिली एवं वायु के साथ जीवों द्वारा होने वाले प्रकीर्णन को एम्बोफिली कहा जाता है। वायु द्वारा होने वाले परागण के कारण हिप्पोफी में असफल परागण (पोलिनेशन फेलियर) भी देखा जाता है, जिसका परिमाण मादा एवं नर पौधे अलग अलग होने पर और भी अधिक होता है।

रसायनिकी– हिप्पोफी में विभिन्न प्रकार के जैवरसायनिक पदार्थ मिलते हैं, जिनमें कैरिटोनॉयड, टोकोफिरॉल, टोकोट्रापिनॉल, बहुअसंतृप्त वसीय अम्लों के अतिरिक्त पॉलीफिनोलिक रसायन सम्मिलित हैं। हिप्पोफी के बेरी सदृश्य फलों में जिनका आकार विभिन्न जैवभौगोलिक क्षेत्रों एवं तापक्रम के सापेक्ष भिन्न भिन्न होता है। इसके नारंगी पीले रंग के फलों में विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड) के साथ बीटा–कैरोटिन, लायकोपिन, ल्यूटिन एवं जिजैंथिन जैसे कैरोटिनॉयड, आइसोरैहम्टीन, क्वेरसिटिन, कैम्फिरॉल जैसे फ्लेविनॉयड भी मिलते हैं । इसकी पत्तियों में भी बीटा–कैरोटिन, इलाजिक अम्ल, फेरूलिक अम्ल, फॉलिक अम्ल आदि जैव रसायन मिलते हैं।

***हिप्पोफी* से सम्बन्धित कुछ रोचक तथ्य –**

- दिनॉक 26 अप्रैल 1986 में यूक्रेन के चिर्नोबिल परमाणु ऊर्जा संयंत्र दुर्घटना के पश्चात् पीड़ित लोगों के उपचार एवं रेडिऐशन के प्रभाव को कम करने के लिये हिप्पोफी के तेल का प्रयोग किया गया था ।
- रूसी अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष में तीव्र विकिरण से बचने के लिये हिप्पोफी के फलों एवं पत्तियों से निकाले गये तेल का इस्तेमाल करते हैं। इसके जूस को अंतरिक्ष में प्रयोग किये गया प्रथम फल जूस भी कहा गया है।
- चीन, रूस एवं मंगोलिया विश्वभर में सी–बकथार्न ऑयल नाम से हिप्पोफी के तेल का उत्पादन करने वाले प्रमुख देश हैं, इसके साथ ही ये देश हिप्पोफी से निर्मित किये गये लगभग 50 प्रकार के खाद्य पदार्थों को बनाकर निर्यात करते हैं, जिनमें जूस, जेली, पेय द्रव्य, विटामिन–सी के कैप्सूल एवं गोलियाँ, आइसक्रीम, चाय, खाद्य रंजक, सौन्दर्य सामग्री, शैम्पू एवं आयुर्वेदिक दवाईयाँ प्रमुख हैं।
- चीन में स्वाइकेंग एवं जियानिबाओ नाम से *हिप्पोफी* से बनाई गई पेय 1988 के सिओल ओलम्पिक खेलों का आधिकारिक खेल पेय (स्पोटर्स ड्रिंक) थी, जो चीन के खिलाड़ियों को तनाव मुक्त एवं ऊर्जावान बने रहने हेतु दी गई थी ।

हिप्पोफी को भविष्य की वरदान वनस्पति कहने के मुख्य कारण निम्न हो सकते हैं–

पौष्टिक खाद्य पदार्थ– हिप्पोफी की पत्तियों को चारे के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है। इसकी पकी बेरियों को एकत्र कर उत्तम गुणवत्ता वाले जूस, जेली, सॉश एवं अन्य पेय पदार्थों को बनाया जाता है, जिनकी बाजार में अत्यधिक माँग है। यूरेशिया, मंगोलिया, जर्मनी, रूस, फिनलैण्ड, कनाडा, में इसका कृषिकरण भी किया जा रहा है। चीन में इसकी माँग को पूरा करने के लिये 2.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर हिप्पोफी का व्यापारिक तौर पर कृषिकरण किया जा रहा है। न केवल इंसानों के लिये अपितु यह उच्च हिमालय क्षेत्रों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीवों जैसे हिमालयन ब्लू शीप या भरल, कस्तूरी मृग, हिमालयन ताहर, आदि के भोजन का मुख्य हिस्सा है। हिप्पोफी को नवीन कृषि फसल (न्यू कॉर्प) के रूप में संभावित मुख्य आर्थिक वनस्पतियों में "आगामी प्रमुख स्वास्थ्यकर खाद्य" के नाम से भी शामिल किया गया है।

औषधीय लोक चिकित्सा प्रणाली में उपयोगिता – हिप्पोफी का उपयोग आयुर्वेद में बहुत पुराना है, इससे निकाले गये तेल को त्वचा रोगों, जलन, निंद्रा रोग, एक्जिमा एवं पराबैंगनी किरणों के घावों को ठीक करने में प्रयुक्त किया जाता है। तेल का प्रयोग पेट एवं आंत की गंभीर व्याधियों के निदान में भी किया जाता है। नेपाल में *हिप्पोफी सेलिसिफोलिया* के फलों एवं पत्तियों का उपयोग लोक चिकित्सा पद्धति में श्रोणितंत्र व्याधि एवं जोड़ों के दर्द में किया जाता रहा है। भारत के उत्तरी प्रान्तों जैसे उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, लद्दाख में निवास करने वाले स्थानीय लोग एवं जनजातियाँ भी लोक चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत हिप्पोफी का उपयोग करते हैं, हिमालय क्षेत्र में अपने पशुओं के साथ रहने वाले चरवाहे उच्च हिमालय क्षेत्रों में श्वसन रोगों से बचने के लिये एवं शरीर को ऊर्जावान ताजा बनाये रखने के लिये इसकी पत्तियों से बनी चाय या काढ़े का प्रयोग करते हैं। मान्यता है कि पानी में इसके पकी बेरियों को उबाल कर पीने से सर्दी और खांसी की राहत, सीने में दर्द, पेट में दर्द, दस्त, पेचिश, गठिया में लाभ मिलता है। हिम शिखरों पर आरोहण करने वाले पर्वतारोही इसके तेल का प्रयोग हानिकारण पराबैंगनी रेडिऐशन से त्वचा एवं आंखों का बचाने में करते हैं। औषधीय उपयोगिता के कारण ही हिप्पोफी को वर्तमान में सौन्दर्य प्रसाधनों में सूर्य के प्रकाश से बचने वाले उत्पादों को बनाने में किया जा रहा है। 1977 में चीन में इसे चिकित्सा ग्रंथ "फार्मेकोपिया"में भी सूचीबद्ध किया गया है। इसमें पाये जाने वाले ओमेगा–3, 6, 7, एवं 9 वसा अम्ल सामान्य हृदय प्रणाली, तंत्रिका तंत्र अभिनियमन, स्वस्थ त्वचा, पाचन तंत्र, मूत्र–जनन तंत्र के सामान्य एवं स्वस्थ प्रणाली को बनाये रखने में महत्वपूर्ण होते हैं। इसके फ्लेवेनॉयड शरीर की कोशिका क्षति को कम करते हैं एवं फलों में पाये जाने वाला कैरोटिनॉयड आयुलब्धता की प्रक्रिया में क्षीणता लाकर कोशिकीय नवीकरण कर मनुष्य को चिरयौवन बनाये रखने में सहायक होता हैं तथा स्वस्थ प्रतिरक्षा तंत्र का भी निर्माण करते हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में हिप्पोफी के सभी भागों पर लगातार अनुसंधान कार्य जारी है। इसमें एंटीऑक्सीडेंट, प्रति जैविक, प्रतिविषाणुक, तनाव रोधक, एंटी–कैंसर एवं प्रतिरक्षा तंत्र के विकास में सहायक गुण पाये गये हैं। हाल ही में चिकित्सा अनुसंधान के अंतर्गत एक नई प्रतिविषाणुक एवं प्रतिजैविक औषधि हिप्पोरेमिन विकसित की गई है।

पारिस्थितिकी– हिप्पोफी खुले आवासों में नदियों, नालों, पहाड़ी ढलानों पर समूह में उगती है। हिप्पोफी का नाइट्रोजन स्थिरीकरण के रूप में सह सम्बंध जीवाणु वंश *फ्रैन्किया* से भी देखने को मिलता है, जो एक प्रकार का प्राथमिक जीवाणु है तथा जीवाणु वर्ग एक्टिनोमायसिटिज का सदस्य है। यह सम्बंध मटर कुल एवं राइजोबियम जीवाणु जैसा ही होता है, इस प्रकार हिप्पोफी पर्वतीय क्षेत्रों में वायुमण्डल की नाइट्रोजन

को मृदा में स्थिरीकरण कर मुख्य भूमिका निभाता है, जिससे मृदा की पोषकता में वृद्धि होती है। हिप्पोफी पारितंत्र में अन्य पौधों विशेषकर शाकीय पौधों को उगने के लिये उर्वर भूमि प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। पर्वतीय क्षेत्रों में हिप्पोफी पक्षियों, शाकाहारी जन्तुओं के लिये पौष्टिक भोजन के साथ ही आवास भी प्रदान करता है। हिप्पोफी की सघन झाडियों में कई प्रकार के पक्षियों के घोंसले भी पाये जाते हैं, जिनमें मोनाल, हिमालयन गिद्ध, क्वॅल आदि मुख्य हैं।

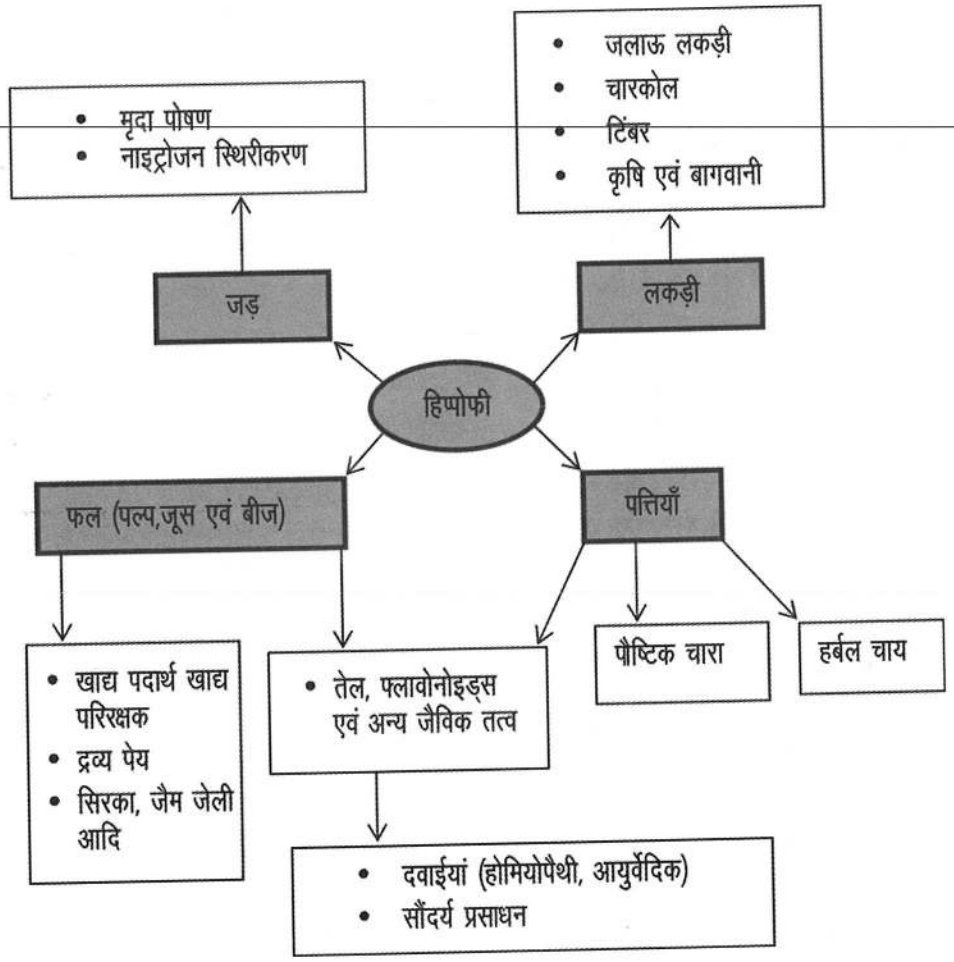

हिप्पोफी की बहुउपयोगिता दर्शाता रेखाचित्र

मृदा पोषक एवं जल संरक्षक के रूप में – अपने वृहद जड़ तंत्र, सूखे के प्रति प्रतिरोधकता, अति लवणता को सहने की शक्ति, न्यूनतम तापमान (–43°से० तक) एवं जीवाणु वंश *फ्रैन्किया* के साथ नाइट्रोजन स्थिरीकरण का सह–सम्बंध रखने के गुणों के कारण *हिप्पोफी* मृदा पोषक वनस्पतियों में प्रमुख स्थान रखता है। मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा के नियमन एवं मृदा अपरदन को रोकने में हिप्पोफी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश एवं कश्मीर के कुछ क्षेत्रों में *हिप्पोफी* को वायुवीय मृदा अपरदन को रोकने, तीव्र आंधी से सेब एवं अन्य फसलों के फलों के स्फुटन, पुष्पों, कलियों एवं कोपलों को झड़ने से रोकने हेतु किया जाता है, प्राकृतिक फेन्सिंग का उम्दा उदाहरण है, अतः वायुरोधक के रूप में *हिप्पोफी* को अपनाया जाना चाहिये। *हिप्पोफी* के वृक्षारोपण से मृदा की नाइट्रोजन, पौटेशियम एवं फास्फोरस सांद्रण में वृद्धि होती है। पर्वतीय पारितंत्र में सुधार करने की विशेषता एवं उच्च पर्वतीय क्षेत्रों की तीक्ष्ण ढलानों पर सहज रूप से उग जाने के कारण इसका वृक्षारोपण कर भंगुर पारितंत्र (फ्रैजाइल इकोसिस्टम) में होने वाले भू–स्खलन, नदियों नालों के तीव्र बहाव से होने वाले भूमि कटाव को रोकने में भी किया जा सकता है अतः भू–स्खलन वाले जोन में *हिप्पोफी* की जातियों का वृक्षारोपण मृदा अपरदन को रोकने में महत्वपूर्ण हो सकता है।

***हिप्पोफी* एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण एक्टिनोबैक्टेरिया *फ्रैन्किया* का सम्बंध–** जीवाणु वंश *फ्रैन्किया* कुल फ्रैन्कीऐसी का सदस्य है, जो *हिप्पोफी* की जड़ों पर जड़–संक्रमण के माध्यम से प्रवेश करता है। जड़ की कार्टिकल में होने वाली समसूत्रीय कोशिका विभाजन (माइटोसिस)

के फलस्लरूप पूर्व पिंडों (प्री–नोड्यूल) का निर्माण होता है। यह पूर्व पिंड (प्री नोड्यूल) जड़ के परिरम्भ (पेरिसायकल) कोशा में संक्रमण स्थल के समीप प्रोटोजायलम के विपरित आद्य पिंडों (नोड्यूल प्रिमोडिया) का निर्माण करते हैं। इन्हीं पिंडों (नोड्यूल) की सहायता से यह बैक्टेरियल हॉयफी का निर्माण कर वायुमण्डल की मुक्त नाइट्रोजन को नाइट्रोजिनेस एन्जाइम की सहायता से अमोनिया में परिवर्तित कर नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करता है।

प्रदूषण नियंत्रक के रूप में – *हिप्पोफी* जैविक कृषिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिप्पोफी प्राकृतिक रूप से कीट प्रतिरोधी होता है, इसके कृषिकरण में रसायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं होती है जिससे जल एवं मृदा में कीटनाशक प्रदूषण नहीं होता है।

इस प्रकार *हिप्पोफी* की हर जाति हमारे एवं हमारे पर्यावरण के लिये अपनी उपयोगिता सिद्ध करती है, किन्तु बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों, ग्लोबल वार्मिंग, अनीतिगत अवैज्ञानिक विदोहन एवं पारितंत्र में लगातार फैलती आक्रामक वनस्पति जातियों के कारण इस बहुमूल्य वनस्पति पर संकट गहराते जा रहा है। *हिप्पोफी* को उसके ही आवास में संरक्षित करने के प्रयासों के साथ ही पादप ऊतक संवर्धन के माध्यम सें संरक्षित करने के प्रयास करने आवश्यक है। इसके साथ ही उच्च हिमालयी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में भू–स्खलन प्रभावित एवं संभावित इलाकों में बांज, बुराँश के साथ हिप्पोफी की जातियों को वृक्षारोपण में समाहित किया जाना अपेक्षित है। वर्ष 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में अभी तक मात्र 11,500 हेक्टेयर भूभाग पर ही *हिप्पोफी* का कृषिकरण किया जा रहा है, जो चीन के 1.1 मिलियन हेक्टेयर, मंगोलिया के 30,000 हेक्टेयर एवं रूस के 47,000 हेक्टेयर से काफी कम है। इन्हीं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के लिये भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु मंत्रालय ने रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के साथ मिलकर संयुक्त रूप से राष्ट्रीय सी–बकथार्न (*हिप्पोफी*) इनिसिऐटिव कार्यक्रम की शुरूआत की है। जिसके अर्न्तगत वर्ष 2020 तक भारत में 1 मिलियन हेक्टेयर भू–भाग पर सी–बकथार्न (*हिप्पोफी*) का कृषिकरण कर स्थानीय लोगों को आजीविका के साध न मुहैया करवाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस वनस्पति का प्रत्येक भाग (पत्तियाँ, जड़,फल तना) न केवल औषधि, पोषक खाद्य–पेय, मृदा पोषक एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये महत्वपूर्ण है अपितु व्यापारिक उद्देश्यों एवं वनीकरण के द्वारा पर्यावरण संरक्षण में भी मुख्य भूमिका निभा सकता है, क्योंकि यह मात्र एक ऐसी वनस्पति है जो उच्च हिमालय क्षेत्र के भंगुर पारितंत्र में आसानी से उग सकती है। इन्हीं गुणों के फलस्वरूप इसे आधुनिक युग के लिये एक वरदान वनस्पति की संज्ञा दी गई है।

प्रसन्न रहेगा तन और मन,
पुलकित होगा घर–संसार।
समय की है यही पुकार,
हरा–भरा सुन्दर संसार।।

अमृत तुल्य वनस्पति गुरिचि (गिलोय) – एक समीक्षा

अर्जुन प्रसाद तिवारी, ए.ए. अंसारी एवं भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

सामान्य परिचय – शरीर पर अमृत के समान प्रभाव डालने वाली "अमृत तुल्य वनस्पति" को संस्कृत में अमृता कहा जाता है। पौधे के नाम के अनुसार ही इसके गुण भी अनेक हैं। इस वनस्पति का नियमित सेवन करने से यौवन शक्ति तथा आयु बढ़ती है। वैदिक काल के ऋषि, मुनियों द्वारा गिलोय की औषधीय उपयोगिता के विषय में महत्वपूर्ण एवं विस्तृत जानकारी का वर्णन किया गया है, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अभिधनमंजरी, भावप्रकाशम्, अश्टांगाहृदयम् चिकित्सास्थानम्, भेशज रत्नावली, द्रव्यगुण विज्ञानम् जैसे अन्य बहुत से प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ में भी इसका वर्णन किया गया है। वर्तमान में बहुत से वैज्ञानिकों द्वारा इस पर अनेक अनुसंधान भी किये जा रहे हैं । गिलोय का उल्लेख, चरकसंहिता में व्याह् स्थापन, दाहप्रशमन, तुष्णनिग्रहण आदि महाकाषायों के अन्तर्गत तथा सुश्रुत संहिता में गुड़च्यादीगण, टोलदिगण, बल्लीपंचमूलगण आदि के अन्तर्गत मिलता है । गिलोय का वानस्पतिक नाम *टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया* है जो कुल *मेनीस्पर्मेसी* का सदस्य है इसकी अन्य जातियों में *टिनोस्पोरा क्रिस्पा* तथा *टिनोस्पोरा मालाबारिका* हैं जो 900 से 1300 मी० की ऊंचाई तक पाई जाती हैं।

भौगोलिक वितरण – इस वनस्पति का वितरण भारत में सर्वत्र है। इसका विस्तार हिमालय से लेकर सम्पूर्ण पहाड़ी, पठारीय एवं मैदानी क्षेत्रों में होता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, गुजरात, उड़ीसा आदि राज्यों में, पर्णपाती तथा शुष्क वनों, बागों, सड़कों एवं रास्तों के किनारे, उद्यानों एवं खेतों में यह लता प्राकृतिक रूप से उगती है।

वानस्पतिक विवरण– यह एक बहुवर्षीय, मांसल, रोम रहित लता है। पतझड़ में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और वर्षा ऋतु में पुनः नवीन पत्ते आ जाते हैं। इसकी जड़ सफेद रंग की, मुलायम व रस युक्त होती है तथा इसमें तीव्र एरोमैटिक गंध होती है। इसका तना हरा, मांसल तथा भीतरी भाग चक्राकार होता है। तने का बाह्य भाग पतली परत से ढका होता है, जिसका रंग समान्य रूप से हल्का पीला, पीत–श्वेत या गहरे भूरे का रंग होता है। बाह्य परत हटाने पर नीचे हरे रंग का भाग दिखता है। तने के पुराने हो जाने पर यह फटती जाती है नवीन तना हरा व कोमल होता है जबकि तने के पुराने हो जाने पर यह भूरा तथा श्वेत धब्बों से युक्त हो जाता है। तने की नोड्स पर अनेक मांसल, सूत्रवत्, मृदु वायुवीय जड़ें निकल कर नीचे झूलती हुई दिखाई देती हैं तथा वृक्ष के चारों तरफ जाल की तरह फैली रहती हैं। गिलोय की पत्तियां हृदयाकार एवं एकांतर क्रम में विकसित होती हैं । पत्ती की ऊपरी सतह गहरे हरे रंग की होती है जबकि निचली सतह हल्के हरे रंग की होती है। इसकी लम्बाई 3–5 इंच तथा चौड़ाई लगभग 3–4 इंच तक होती है। गिलोय के पुष्प पत्ती के अक्ष से पीले या हरे–पीले पेनिकल रेसिम अर्थात मंजरी में पत्तियां गिरने पर निकलते हैं। पुष्प कुंज में 15 से 20 तक फूल होते हैं। इसके फल मटर के समान गोल या अण्डाकार 3.5 बीज वाले होते हैं। कच्चे फल हरे होते हैं जो पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। रसयुक्त मृदु फल में एक बीज होता है जो कि धुमावदार होता है ।

पुष्पन एवं फलन – गिलोय के पौधों में पुष्प मार्च से जून माह तक आते हैं तथा फल ठंड के मौसम में आते हैं।

रसायनिक तत्व– इसमें विभिन्न ग्लूकोसाइट्स तथा एल्कोलाइड्स उपस्थित होते हैं, जैसे– ग्लूकोसाइड्स (सन्वीटरपिनायड, टिनोकॉरडिफोलिन, डायटरयिनायड, फ्यूरोनोलैक्टोन, लैक्टोन्स, क्लीरोडोन प्रतिरूप, टिनोस्पोराइड, जेटीओरिन, कोलम्बिन), स्टिरायड (बीटा–साइटोस्टिरॉल, साइटोस्टरॉल, बीटा–हाइड्रोक्सी ऐडिसोन, ऐडिस्टीरोन, कीस्टीरोन, गिलोइनस्टिरोल), एल्कोलाइड्स (बरबेरीन, ग्लुकोसाइन, गिलोइन, पामेटिन, टेम्बेटरीन, कोलीन, टीनोस्पोरीन, मैग्नोफ्लोरीन) एवं पॉली सैकराइड (एरेबिनो गैलेक्टेन) ।

गिलोय की पत्ती में सबसे ज्यादा मात्रा प्रोटीन की होती है, साथ ही इसमें कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की भी अच्छी मात्रा पाई जाती है। इसके प्रमुख रसायनिक घटक निम्नानुसार हैं – ईथर इक्सट्रैक्स (सत्व) 2.5 प्रतिशत, मुक्त नाइट्रोजन 61.0 प्रतिशत, क्रूड फाइबर 17.5 प्रतिशत, कैल्शियम 1.06 प्रतिशत एवं फॉस्फोरस 0.57 प्रतिशत ।

उपयोगी भाग – गिलोय की जड़, फल तथा पत्ती का उपयोग औषधीय रूप में किया जाता है, लेकिन इसका तना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

औषधीय गुण – गिलोय त्रिदोष नाशक है। इसे स्निग्ध उष्ण गुण के कारण वात नाशक, तिक्त–कषाय होने के कारण कफ नाशक और पित्त नाशक रसायन कहा जाता है। यह रक्त में शुगर की मात्रा को कम करने की यह अचूक दवा है। इसमें एन्टी–ऑक्सीडेन्ट तथा कोलेस्ट्राल

(एल.डी.एच.) कम करने का भी गुण पाया गया है। यह लता यदि नीम के वृक्ष पर लगी है तो इसका औषधीय प्रभाव अधिक बढ़ जाता है। इसके विभिन्न भागों का औषधीय उपयोग निम्नानुसार है –

जड़ – गिलोय जड़ वमनकारी होती है। आयुर्वेद के अनुसार इसकी जड़ को जल के साथ पीसकर लगाने से कुष्ठ रोग में लाभ होता है। गिलोय जड़ का क्वाथ सर्पविष में भी लाभकारी माना जाता है।

तना – इसका तना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। लोक चिकित्सा पद्धति में इसके टुकड़ों की माला का उपयोग पीलिया में किया जाता है। इसे सोंठ तथा पिपरामूल के साथ मिलाकर पीने से वातज्वर दूर होता है, इसके क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर लेने से कफज्वर समाप्त हो जाता है। इसे सतावरी के क्वाथ के साथ मिलाकर पीने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है। गिलोय, ब्राम्ही तथा शंखपुष्पी के चूर्ण को आंवले के साथ लेने से रक्तचाप को नियंत्रित करता है।

पत्ती – पत्ती का रस वात जनित गठिया रोग में बहुत लाभदायक होता है। पत्ती का रस पीलिया, लेप चेचक, त्वचा रोग में लाभकारी होता है।

फल – गिलोय के सूखे फल का पाउडर, घी या शहद के साथ मिलाकर लेने से यह एक बलवर्धक टॉनिक का कार्य करता है। इसका फल पीलिया व गठिया में भी लाभकारी होता है।

गिलोय सत्व का औषधीय उपयोग – विभिन्न रोगों में गिलोय का निम्नवत प्रयोग किया जाता है।

हृदय रोग– हृदय दौर्बल्य में व इस्चीमिया हृदय रोग में सुरक्षा प्रदान करती है।

नेत्र रोग– गिलोय सत्व को आंवले के रस के साथ लेने से नेत्र रोग में लाभ होता है।

जलन– प्यास एवं जलन होने पर इसके रस के सेवन से आराम मिलता है।

पित्त विकार– पित्त सम्बन्धित विकार में इसका उपयोग दो नग काली मिर्च के साथ करते हैं तथा कफ जनित रोगों में शहद के साथ सेवन अधिक लाभदायक है। गिलोय रस तथा कूष्माण्ड (*बेनिनकास हिस्पीडा*) रस मिश्री के साथ लेने से अम्लपित्त दूर होता है।

क्षय रोग– गिलोय सत्व, इलायची तथा वंशलोचन को शहद के साथ लेने से क्षय रोग में लाभ होता है।

मधुमेह– मधुमेह में त्रिफला 3–5 ग्राम, हल्दी 1 ग्राम, गिलोय 2 ग्राम एवं 10 ग्राम शहद या पानी के साथ प्रयोग किया जाता है।

प्रतिरोध क्षमता– एल्कोलाइड्स तथा अरेबिनोगेलेक्टन के कारण गिलोय रस शरीर की प्रतिरोध क्षमता वृद्धि करता है।

रक्त संवहन– गिलोय रक्त परिसंचरण में सहायक है तथा हीमोग्लोबिन की कमी दूर करने का भी गुण पाया जाता है।

ज्वर– जीर्ण ज्वर, तीव्र ज्वर तथा पीलिया ज्वर में गुडुचि रस अत्यन्त लाभकारी है। मलेरिया ज्वर में भी उपयोगी पाया गया है।

सन्धिवात/गठिया– सन्धियों में दर्द–सूजन कम करने में सहायक है।

यकृत– पीलिया जैसे यकृत रोगों में इसके ताजे तने के रस का उपयोग करना लाभकारी होता है।

मलेरिया– मलेरिया प्रभावित रोगी की भूख बढ़ाने में तथा तपेदिक रोग में भी इसे उपयोगी पाया गया है।

कैन्सर– गिलोय गले के कैंसर को रोकने में उपयोगी है।

मूत्र विकार– सम्बन्धी विकार में गुडुचि, ऑवला चूर्ण तथा हल्दी चूर्ण को 1–2 ग्राम मिलाकर उपयोग किया जाता है।

मानसिक विकार– मस्तिष्क विकारों एवं बुद्धि विकास एवं स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये इस लता के प्रयोग से अत्यधिक लाभ मिलता है।

गिलोय सत्व निर्माण विधि– गिलोय के तने का ऊपरी छिलका उतार कर 1–2 इंच बड़े टुकड़े कर लें। इन टुकड़ों को पत्थर के ओखल में कूट कर 10 गुने जल में भिगो दें। भिगोने के लिए मिट्टी का पात्र सर्वोत्तम है। इन टुकडों को 12 घंटे तक भीगने दिया जाए जिससे यह फूल कर मुलायम हो जाएं। 12 घंटे के बाद हाथ से मसल कर इन टुकड़ों को पानी से बाहर निकाल कर बाहर फेंक दें जिससे गिलोय के तने का स्टार्च पानी में धुल जाएगा। शेष बचे पानी को मोटे कपड़े से छानकर 3–4 घंटे पड़ा रहने दें। बर्तन के पेंदें में गिलोय स्टार्च जम जाएगा। इसके ऊपर का पानी निथार कर फेंक दें। जल निकालने के बाद पात्र के पेंदे में श्वेत कर्ण का सत्व जमा हो जाएगा। जिसे निकसल कर धूप में सुखा लेवें। यह सत्व सूखने पर चिकना आरारोट के समान हो जाता है। यदि सत्व में मटमैलापन हो तो दो–तीन बार गुनगुने पानी से इसे धो लेना चाहिए।

1. जलवायु में परिवर्तन, जैसे– उच्च तापमान, वर्षा में कमी, उच्च वायुवेग, सूखा, अकाल, निरन्तर घट रहे भूजल स्तर एवं जल स्रोत एवं जैविक संसाधनों की कमी आदि, पालतू पशुओं द्वारा वनों की चराई एवं गहन फसलों के उत्पादन हेतु किसानों द्वारा वनों की कटाई से जैव विविधता का नुकसान होना, वनों का अत्यधिक दोहन आदि।
2. अवैज्ञानिक तरीके से गुग्गुल की राल को निकालना, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं द्वारा पूजा सामग्री हेतु सम्पूर्ण पौधे को जड़ सहित काटना आदि।

संकटग्रस्त निवारण के उपाय – क. कृषिकरण ख. गुग्गुल निकालने की तकनीकी विधि अपनाकर

क. कृषिकरण की नवीन वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर –गुग्गुल का पौधा 100 मिमी. से 400 मिमी. तक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है तथा हर प्रकार की मिट्टी में सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। इसके लिये उष्ण जलवायु अनुकूल होती है। चूँकि इस पौधे का तना, शाखायें एवं जड़ें परतदार तहों से बनी होती हैं, जिससे पौधे में वाष्पीकरण की प्रक्रिया बहुत धीमी गति से होती है। अतः इसकी खेती कम वर्षा वाले क्षेत्रों में करना लाभकारी है। इसके अतिरिक्त कोई भी सरकारी/अर्द्ध सरकारी/सामाजिक आयात/निर्यात संस्था अथवा औषधालय का होना आवश्यक है, जो कि किसानों द्वारा उत्पादित फसल (गोंद) को खरीद कर उसका उपयोग करे तथा किसानों को आसानी से उसका लाभ प्राप्त हो सके। इसी खेती के लिए कृषिकरण संबंधी प्रमाण पत्र स्थानीय तहसीलदार अथवा वनमण्डल अधिकारी से प्राप्त करना आवश्यक है तथा इसे संवैधानिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया है। गुग्गुल का प्रवर्धन कलम द्वारा, बीज द्वारा तथा एअर लेयरिंग द्वारा किया जाता है किन्तु कलम का तरीका अत्यधिक प्रचलित है। गुग्गुल की कटिंग तैयार करते समय व प्रत्यारोपण के दौरान दीमक से बचाव करना अति आवश्यक है। दीमक से बचाव के लिए मिट्टी का तेल या कार्बन डॉइ सल्फाइड का उपचार करना चाहिए ।

1. कलम विधि द्वारा प्रवर्धन – गुग्गुल के पौधे से कलम तैयार करने का उपयुक्त समय जून होता है। पुराने पौधों से कलम लेने का उपयुक्त समय 14 जनवरी से 14 फरवरी के बीच का होता है। इसकी कलम एक निश्चित मोटाई की होनी चाहिये अर्थात् यह अंगूठे से कम तथा तर्जनी से अधिक मोटाई होना चाहिये। इसके स्वस्थ पौधों से कलम तैयार करना लाभकारी है । प्रत्येक कलम की लम्बाई लगभग 9 इंच तथा 3–4 गांठयुक्त होनी चाहिये। कलम लगाने के एक महीने से दो महीने के मध्य इन कलमों में नए पत्ते आना शुरू हो जाते हैं तथा 20–25 दिन तक में पौधे खेतों में रोपने लायक हो जाते हैं।
2. बीज द्वारा प्रवर्धन – यद्यपि गुग्गुल के पौधौं का बीजों के द्वारा प्रवर्धन अधिक प्रचलित नहीं है, गुग्गुल के बीजों में अंकुरण 1–3 प्रतिशत तक ही पाया गया है। क्योंकि इसके पुराने वृक्षों से ही बीजों का संग्रहण संभव है, जबकि पुराने वृक्ष बचे ही नहीं हैं।
3. एयर लेयरिंग द्वारा प्रवर्धन – गुग्गुल के पौधे का एयर लेयरिंग द्वारा प्रवर्धन एक नवीन प्रचलित तरीका है। लेयरिंग से तैयार पौधे सीधे खेत में लगाने योग्य हो जाते हैं। लेयरिंग विधि से जुलाई से अगस्त माह तक की कम अवधि में अच्छी जड़ें प्राप्त की जा सकती हैं।

ख. गुग्गुल निकालने की तकनीकी विधि –गुग्गुल के पौधे 7 से 8 साल बाद गोंद देना प्रारम्भ कर देते हैं। इसे निकालने के लिए पुरानी विधि I का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि पुरानी विधि से गोंद संग्रहण के पश्चात् वृक्ष मर जाते हैं। नई विधि में मुख्य तने को छोड़कर शाखाओं की छटांई (प्रोनिंग) करके छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर सुखाते हैं। इन कटी हुई शाखाओं से सालवेन्ट विधि की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा गुग्गुल निकाला जाता है। छंटाई किये गये वृक्षों में फिर से नई शाखायें आ जाती हैं, जो 2 वर्ष बाद पुनः गुग्गुल देने योग्य हो जाती हैं। नई विधि द्वारा निकाला गया गुग्गुल हल्के पीले रंग का पारदर्शी पदार्थ होता है तथा इसकी शुद्धता 90 से 100 प्रतिशत होती है।

ओरोजाइलम् इण्डिकम् (भूतवृक्ष) : एक बहुपयोगी औषधीय वृक्ष

वीरेन्द्र कुमार मधुकर एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पौधों की महत्ता को आदिमकाल से ही मनुष्य के सहजबोध द्वारा जाना गया। सभ्यता के प्रारम्भिक दौर में ही मनुष्य ने समझ लिया था कि पौधों के बिना मानव जीवन का अस्तित्व समाप्त हो सकता है। जन्म से मृत्यु तक वनस्पतियों की वृहद भूमिका एवं संस्कृति को समृद्ध बनाने में पौधों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में विभिन्न प्रकार की दुर्लभ वनस्पतियों का भण्डार है।

सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास का मूल्य वनस्पतियों की सिमटती विविधता ने चुकाया है, अनेक जीवन रक्षक औषधीय एवं दैनिक उपयोग की वनस्पतियों का अत्यधिक दोहन तथा औद्योगीकरण के कारण लोप होता जा रहा है। आदिकाल में मनुष्य ने इनका संरक्षण धर्म से जोड़कर किया, वैदिक काल में चरक जैसे ऋषियों ने चिकित्सा हेतु वनस्पतियों का उपयोग चरक सहिंता तथा आयुर्वेद आदि ग्रन्थों में विस्तार से दिया है। वर्तमान में मानव समाज पुनः प्रकृति की ओर चिकित्सा हेतु मुड़ रहा है, विभिन्न ब्रांड के आयुर्वेदिक उत्पादों से अटा हुआ बाजार इसका साक्ष्य है।

ओरोजाइलम इण्डिकम का वृक्ष विश्व में प्रमुखतः भारत, म्यांमार, मलाया, इंडोमलाया, श्रीलंका एवं चीन में मुख्य रूप से सदाबहार, पर्णपाती एवं मिश्रित वनों में समुद्र की सतह से 3000 फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। भारत में पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर सभी जगह इसकी एकल प्रारूप जातियाँ पायी जाती है। विश्व में बिग्नोनिएसी कुल में 82 वर्ग और 810 जातियाँ हैं तथा भारत में कुल 34 वर्ग और 58 जातियाँ पायी जाती हैं। ओरोजाइलम वर्ग में केवल एक ही जाति भारत में पायी जाती है। इस वृक्ष की जनन क्षमता अधिक न होने के कारण यह संकटग्रस्त श्रेणी में आ गया है। इस वृक्ष को संस्कृत में अशाला, अरालुका हिन्दी में अरलु जबकि उत्तराखण्ड में स्थानीय भाषा में फारकाट, फरनट, तरलु नामों से जाना जाता है

पादप संरचना – यह बिग्नोनिएसी कुल का एक पर्णपाती वृक्ष है। जिसकी ऊंचाई 25–40 फीट तक होती है। इसके तने पर भूरे रंग की छाल होती है। इसकी संयुक्त पत्तियों का व्यास 2–5 फीट होता है, तथा एक पत्ती की लम्बाई लगभग 10 से०मी० तथा चौड़ाई 6–8 से०मी० होती है। यह त्रिकविन्यासी, द्विपिच्छकी, प्रतिमुखी कर्णपाली, अल्पवृन्त अण्डाकार, अथवा दीर्घवृत्तीय, सिरा नोकाकार, आरोमिल तथा पत्ती का आधार वृत्ताकार होता हैं इसका पुष्पवृन्त 1 फुट लम्बा होता है। पुष्पसमूह का असीमाक्ष लगभग 25 से०मी० लम्बा तथा प्रत्येक पुष्प का पुष्पवृन्त 0.64 – 2.54 सेमी. लम्बा, बाह्यदल पुंज 2.54 से०मी० से 3 से०मी० तक लम्बा चर्मिल, आयताकार, घण्टाकार, आरोमिल, दलपुंज 6.5 से०मी० लम्बा, मांसल, मुख का व्यास 5–9 सेमी, रंग हल्का बैगनी कटे–फटे किनारे पुंकेसर 5 जो दलपुंज की नलिका से थोड़े बाहर की ओर निकले हुए होते हैं, तन्तु की नलिका का आधार ऊनी होता है, तथा परागकण विभिन्न दिशाओं में फैले हुए होते हैं। वर्तिका 6 से०मी० वर्तिकाग्र लगभग 1 से०मी० अर्द्धवृत्ताकार होता है। संपुट 1–3 फीट लम्बा, 3.8 से०मी० चौड़ा एवं .80 से०मी०, मोटा एवं कठोर होता है। कपाट काष्ठीय, किनारों की ओर मुड़े हुए तथा पट सपाट होता है।

परागण विधि– इसमें परागण चमगादड़ों के द्वारा होता है, जो इस वर्ग का विशिष्ट गुण है। इसे भूतवृक्ष कहने के पीछे प्रसिद्ध लोक कथन के अलावा उपनाम रखने के सन्दर्भ में कोई स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं है, परंतु इस विषय में अनेक लोककथन प्रसिद्ध हैं।

1. इस वृक्ष का लगभग 3 फीट लम्बा बीजफल सांध्य प्रकाश में इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे हवा में कोई नंगी तलवार लटक रही हो। जिसका सम्बन्ध मृत आत्माओं, प्रेतात्माओं से जोड़ा जाता है।
2. कभी कभी इसकी बीजफलियां इसकी पत्तियों के साथ मिलकर इस प्रकार प्रतीत होती हैं जैसे कोई गिद्ध अपने पंखों को लटकाकर बैठा हो।
3. इसका पुष्पक्रम वृक्ष के ऊपरी सतह से 1–2 फीट अधिक लम्बा होता है, जिससे रात्रि में यह बड़ा भयावह प्रतीत होता है।
4. इसका पुष्प रात्रि के समय ही खिलता है तथा परागण चमगादड़ों द्वारा होता है, जो इसके नाम (भूतवृक्ष) को सार्थक करता है।

औषधीय महत्व – *ओरोजाइलम् इण्डिकम* सम्पूर्ण एशिया में एक औषधीय वृक्ष के रूप में सर्वविदित है। इसकी जड़, तना एवं तने की छाल, टहनियां, पत्ते, फूल, फल हजारों वर्ष पूर्व से मनुष्य के अनेक विकारों के निवारण के लिए आयुर्वेदिक दवाओं में उपयोग की जा रही है।

सतावर की खेती

अर्जुन तिवारी, अच्युतानन्द शुक्ला[1] एवं एस. के. श्रीवास्तव[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद
[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

प्राचीन समय से अपने औषधीय गुणों के कारण जानी पहचानी सतावर 3–5 मी० लम्बी लता की श्रेणी में आती है। इसकी पतली बेल से कई शाखाएं निकलती हैं, जिन पर बारीक सुई के समान पत्तियाँ निकली हुई होती हैं, जिन्हें वानस्पतिक भाषा में क्लेडोड कहा जाता है, जो वास्तव में तने का रूपान्तर स्वरूप होती हैं। इस लता में कांटे होते हैं, जो इसे ऊपर चढ़ाने में सहायक होते हैं। इसके पुष्प का रंग सफेद होता है, फल गुच्छों में लगते है जो छोटे–छोटे गोल व पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों में 1–2 बीज होते हैं।

प्राकृतिक रूप से सतावर भारत में 1400 मी० की ऊँचाई पर पाई जाती है। मध्यप्रदेश में यह सभी तरह के मिश्रित वनों में पायी जाती है। औषधीय महत्व के कारण आदिवासी समुदाय में यह नारबोझ के नाम से जानी जाती है।

औषधीय गुण–सतावरी मधुर, शीत, स्नेहक, स्तन्यजनन, मूत्रजन, शुक्रजनन, बल्य, अग्निवर्धक है। इसका औषधीय उपयोग आयुर्वेद में नपुसंकता, शुक्रमेह, नेत्ररोग, अतिसार, रक्तपित्त, अम्लपित्त, कुष्ठ, ल्यूकोरिया, सूजन आदि रोगों में होता है।

यह शरीर की कमजोरी दूर कर मानसिक रोगों को दूर करती है। औषधीय उपयोग में इसकी जड़ को ही लिया जाता है। वास्तव में यह जड़ का रूपान्तर है, जिसे फेसिकुलेटेड जड़ कहते है।

भूमि एवं जलवायु – सतावर की खेती हल्की रेतीली या बालुई दोमट भूमि में अच्छी तरह से की जा सकती है। यह जड़ कंद वाली फसल है अतः दोमट रेतीली भूमि इसकी फसल के लिये उत्तम होती है जहाँ जल का निकास अच्छी तरह से होता हो। काली मिट्टी में भी उचित जल निकास करने पर इसकी खेती की जा सकती है। परन्तु कंदों को निकालते समय पानी लगाकर कंदों की खुदाई करनी चाहिए जिन स्थानों पर 1000 से 2500 मि.मी. तक वर्षा होती है एवं 10 डि.ग्री. से 75 डि.ग्री. सेन्टीग्रेड तापक्रम होता है वहाँ पर इसकी खेती की जा सकती है।

भूमि की तैयारी– वर्षा आरम्भ होने के पूर्व मई–जून में खेत की जुताई कर खेत को वर्षा काल में खाली छोड़ देना चाहिए। जब वर्षा कम होने लगे यानी अगस्त माह के अंत में रोपणी में तैयार पौधों को लगाने के पूर्व फिर से एक जुताई करनी चाहिए।

खाद की मात्रा– अच्छी पैदावार के लिए गोबर की खाद 15–20 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से प्रथम जुताई के साथ खेत में मिला देनी चाहिए। रसायनिक खाद की आवश्यकता अनुसार मात्रा नत्रजन 20, फास्फोरस 40 एवं पोटाश 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर के हिसाब से डालनी चाहिए।

बीज की मात्रा एवं रोपणी – बीज की मात्रा 10 से 14 किलो प्रति हैक्टेयर के हिसाब से रोपणी में मई–जून में बोया जाता है। रोपणी बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोपणी कम से कम 15 से.मी. ऊँची रहे ताकि जल निकास अच्छी तरह से हो सके रोपड़ी में 2:1 के हिसाब से मिट्टी से ढ़ककर पानी अवश्य लगाना चाहिये अंकुरण से 10–12 दिन का समय लगता है। रोपाई जुलाई माह में की जाती है। रोपणी में पौधा जब 6–12 से.मी. की ऊँचाई का हो जाये। इसके लिये लगभग 30 से 35 दिन का समय रोपणी में लगता है। उचित वृद्धि के लिये पौधों को 60 से.मी. की दूरी पर लगाना चाहिये। पौधों को लगाते समय खेत में जल का निकास अच्छा होना चाहिये। अन्यथा पौधे खराब होने की सम्भावना होती है। खरीफ की फसल होने के कारण वर्षा काल में एक दो निराई की आवश्यकता होती है। यह कंद वाली फसल है, अतः गुड़ाई करते समय मिट्टी चढ़ाने का कार्य प्रत्येक पौधों पर करना चाहिये ताकि कंदों का विकास अच्छी तरह से हो सके।

सिंचाई– पौधे लगाने के समय एवं 10 दिन बाद पानी लगाना चाहिये। इसकी फसल के लिये ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यदि हल्की सिंचाई की जाये तो फसल की पैदावार अच्छी होती है।

फसल की खुदाई– सतावर की फसल जड़ कंद वाली है अतः कंदों को खोदकर निकाला जाता है, फसल लगाने के 18 से 24 माह के पश्चात् खुदाई की जाती है। इस समय फसल की पत्तीनुमा संरचना पीली पड़ कर गिरने लगती है। यदि खेत शुष्क हो तो पानी लगाकर एक सप्ताह बाद जड़ कंदों को निकाल लेना चाहिये। कंदों की लम्बाई 20 से 50 से.मी. तक होती है। इन जड़ कंदों के दोनों छोर अन्त में नुकीले यानी कि पतले होते है।

जड़ कंदों को सुखाना–खुदाई से प्राप्त जड़ कंदों को मिट्टी साफ करके एवं उनका छिल्का निकाल कर हल्की धूप में सुखाना चाहिये। इन कंदों में 90 प्रतिशत तक पानी रहता है, अतः सुखने में 15 से 20 दिन लगते हैं।

उपज –ताजे कंदों की उपज 600–900 क्विंटल/हैक्टेयर होती है जो सूखने पर 60–90 क्वि0./हैक्टेयर रह जाती है। जड़ों की खुदाई करते समय हमें पौधों के पास कुछ छोटे–छोटे पौधे मिलते है, इन्हें वानस्पतिक भाषा में डिस्क कहते है। इन्हें निकालकर पोलीथीन में या नर्सरियों में रोपण कर लिया जाता है। जिन्हें कुछ समय बाद फिर से खेत में लगाया जा सकता है।

लाभ– बाजार में जड़ कंदों का भाव 40 से 45 रूपये प्रति किलो के भाव से बिकती है। इस तरह उपज के आधार पर किसान को तीन लाख रूपये प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो सकते है।

घर उपवन में पेड़ लगाओ,
चारों ओर हरियाली लाओ।
सभी प्रदूषण दूर भगाओ,
अपना जीवन स्वस्थ बनाओ।।

प्रमुख भारतीय मसाले

पापिया रॉय चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारत को मसालों का घर कहा जाता है। भारतीय परिपेक्ष्य में मसाले एक मुख्य फसल हैं, जिनका प्रयोग खाद्य पदार्थों को सुगंधित करने और स्वादिष्ट बनाने के लिए किया जाता हैं। भारत में तो किसी भी खाने को मसाले की बिना बनाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह मूलतः वनस्पति उत्पादों या उनका मिश्रण होता है, जो बिना किसी बाह्य द्रव्य और खाद्य पदार्थों को सुगन्धित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। शुद्ध मसाले खाने के स्वाद को कई गुना बढ़ा देते हैं, ठीक वैसे ही मसालों की प्रकृति के बारे में सही जानकारी कई बीमारियों को आपसे कोसों दूर भगा सकती है। मसाला खाना पकाने के एक पूरक घटक हैं। इन खुशबूदार पदार्थ, सब्जियां, जड़ी–बूटी, जड़ें, बीज के भोजन के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इसे और अधिक स्वादिष्ट और कभी कभी इस का संरक्षण भी करते हैं। प्रत्येक देश के अपने पसंदीदा मसाले हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के कारण, भारत के मसाला उद्योग ने बहुत तेजी से प्रगति की हैं। यह देश में लोगों की बड़ी संख्या के लिए, विशेषतः ग्रामीण लोगों के लिए, आजीविका और रोजगार का मुख्य स्रोत हैं। भारत का प्रत्येक राज्य अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधता के साथ ही भोजन विविधता के लिये भी विश्व विख्यात हैं। हर राज्य की एक विशेष भोजन संस्कृति है जो पूर्णतः मसालों पर निर्भर करती है, भोजन की यह संस्कृति वस्तुतः भिन्न भिन्न जलवायुवीय परिस्थितियों के अनुसार बनी है।

विश्व मसाला उत्पादन में भारत की स्थिति – भारत में विभिन्न प्रकार के मसालों की कृषि की जाती हैं, जैसे–काली मिर्च, इलायची (छोटी और बड़ी), अदरक, लहसुन, हल्दी, लाल मिर्च आदि। भारत, मसालों और मसाला उत्पादों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक है। आई एस ओ द्वारा सूचीबद्ध 109 मसालों में से भारत, अपने विविधता पूर्ण कृषि जलवायुवीय प्रदेशों के कारण भारतीय किसान 75 प्रकार के मसालों को पैदा करता है। देश के लगभग सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र कोई न कोई मसाला उगाते हैं। विश्व मसाला व्यापार में, वैश्विक निर्यात में भारत का हिस्सा 48 प्रतिशत है और निर्यात मूल्य में 44 प्रतिशत हैं। यह हर वर्ष 0.40 मिलियन टन से अधिक मसालों का निर्यात करता हैं। पिछले वर्षों में मसालों के आयात में क्रमिक वृद्धि हुई हैं। इस आंकड़ों से ज्ञात होता है कि विश्व मसाला उत्पादन में भारत की प्रमुख स्थिति हैं। इस समय भारत सारे संसार में मसाला तेल और ओलियोरेजिन का एकमात्र आपूर्तिकर्ता है। कढ़ी पाउडर, मसाला पाउडर, मसाला मिश्रण तथा उपभोक्ता पैकों में मसालों के मामले में भारत एक अजेय स्थिति में है।

भारतीय मसालों का अधिकतर निर्यात यूएसए को होता हैं और उसके बाद यूरोपीय संघ, मलेशिया, चीन, सिंगापुर, श्रीलंका, जापान तथा मध्य पूर्व के देशों को किया जाता है।

भारत में प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख मसाला वनस्पतियाँ निम्न हैं।

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	कुल	प्रयुक्त भाग
1.	*एल्यूम सटाइवम*	लहसुन	एल्लिऐसी	कंद (बल्ब)
2.	*अमोमम सुबूलेटम*	इलायची (बड़ी)	जिन्जीबेरेसी	फल एवं बीज
3.	*एनिथम ग्रेवियोलेंस*	सोया/दील	एपिऐसी	फल
4.	*एपियम ग्रेवियोलेंस*	बड़ी अजमोद	एपिऐसी	पत्ती, फल एवं तना
5.	*अरमोरेशिया रस्टीकाना*	ब्रोकली (हॉर्स रेडिश)	ब्रेसीकेसी	जड़
6.	*आर्टिमिसिया ड्राकुनकुलस*	टेरागोन	एस्टरेसी	पत्ती
7.	*ब्रेसिका जून्शिया*	सरसों	ब्रेसिकेसी	बीज
8.	*कप्पारिश स्पाइनोसा*	कैपर (कप्पारिश)	कप्पारिडेसी	पुष्प कलिकायें
9.	*कैप्सिकम एन्नम*	मिर्च	सोलेनेसी	फल
10.	*कैरम कार्वी*	शाहजीरा	एपिऐसी	फल

11.	*सिन्नामोम्म तमाला*	तेजपत्ता /इंडियन बे लिफ	लॉरेसी	छाल एवं पत्ती
12.	*सिन्नामोम्म वेरम*	दालचीनी	लॉरेसी	छाल
13.	*कोरिएन्ड्रम सटाईवम*	धनिया	एपिऐसी	पत्तियाँ एवं फल
14.	*क्रोकस सटाईवस*	केसर	इरिडेसी	वर्तिकाग्र एवं वर्तिका
15.	*क्यूमिनम सायमेनम*	जीरा	एपिऐसी	फल
16.	*कुर्कूमा लोन्गा*	हल्दी	जिन्जीबेरेसी	राइजोम
17.	*कुर्कुमा एरोमैटिका*	अमादा	जिन्जीबेरेसी	राइजोम
18.	*इलेटेरिया कार्डामोमम्*	इलायची (छोटी)	जिन्जीबेरेसी	फल एवं बीज
19.	*फोइनिकुलम वुल्गेरे*	सौंफ	एपिऐसी	फल
20.	*गारसिनिया इंडिका*	कोकम	क्लूसिऐसी	छिलका, छाल
21.	*गारसिनिया गुम्मी गट्टा*	वृक्ष आमला/बिल्लती आमली	क्लूसिऐसी	छिलका एवं फल
22.	*हायसोपस ऑफिसिनेलिस*	जुफा	लेमिऐसी	पत्ती
23.	*इल्लिसियम वेरूम*	चक्रफूल (स्टार एनाइस)	इल्लिसिऐसी	फल
24.	*जूनिपेरस कोम्यूनिस*	अरार (जूनिपर बेरी)	क्यूप्रिस्सेसी	बेरी
25.	*लोरूस नोबेलिस*	बेलोरेल	लॉरेसी	पत्ती
26.	*लेविस्टीकम ऑफिसिनेल*	लोवेग	एपिऐसी	पत्ती एवं तना
27.	*मैंगीफेरा इंडिका*	अमचूर	एनाकार्डिऐसी	फलों का पल्प
28.	*मरजोराना हार्टेन्सिस*	मारवा (मारजोरम)	लेमिऐसी	पत्ती
29.	*मेंथा पाइपरिटा*	पुदिना	लेमिऐसी	पत्ती
30.	*मुरैया कोनिघाई*	कढ़ी पत्ता	रूटेसी	पत्ती
31.	*मायरिस्टका फ्रेग्रेन्स*	जायफल	मायरिस्टीकेसी	बीज, ऐरिल
32.	*नारथ्रेक्स एसाफोईटिडा*	हिंग	एपिऐसी	रेसिन एवं जड़
33.	*ओसिमम बेसिलिकम*	बेसील	लेमिऐसी	पत्ती
34.	*ओरिगेनम वुल्गेर*	मृजनजोश (ओरिगेनो)	लेमिऐसी	पत्ती
35.	*पेन्डेनस ओडोरिफर*	केवड़ा	पैन्डेनेसी	नर पुष्प का आसवन
36.	*पपावर सोम्निफेरम*	पोस्त/अफिमदाना	पपावेरेसी	बीज
37.	*पेट्रोसिलिन मक्रिसपम*	अजमोद (पार्सले)	एपिऐसी	पत्ती
38.	*पाइमेंटा डाओसिया*	सर्वसुगंधी (ऑलस्पाइस)	मिर्टेसी	फल एवं पत्ती
39.	*पिमपिनेला एनिसम*	मिठी सौंफ	एपिऐसी	फल
40.	*पाइपर निग्रम*	काली मिर्च	पाइपेरेसी	फल
41.	*पाइपर लोन्गम*	पीपली (लांग पाइपर)	पाइपरेसी	फल
42.	*पुनिका ग्रेनेटम*	अनार	पुनिकेसी	बीज
43.	*रोजा चाइनेन्सिस*	गुलाब	रोजेसी	सूखी पंखुड़ियाँ एवं क्वाथ
44.	*रोजमैरिनस ऑफिसिनेलिस*	रोजमैरी	लेमिऐसी	पत्ती
45.	*साल्विया ऑफिसिनेलिस*	सेफाकुश, साथि	लेमिऐसी	पत्ती
46.	*सेनटेलम एल्बम*	चंदन	सेन्टेलेसी	काष्टचूर्ण
47.	*सेटूरेजा होर्टेन्सिस*	सेवोरी	लेमिऐसी	पत्ती
48.	*सिजाइगियम एरौमैटिकम*	लौंग (क्लोव)	मार्टिऐसी	अपुष्पीत कलिकायें

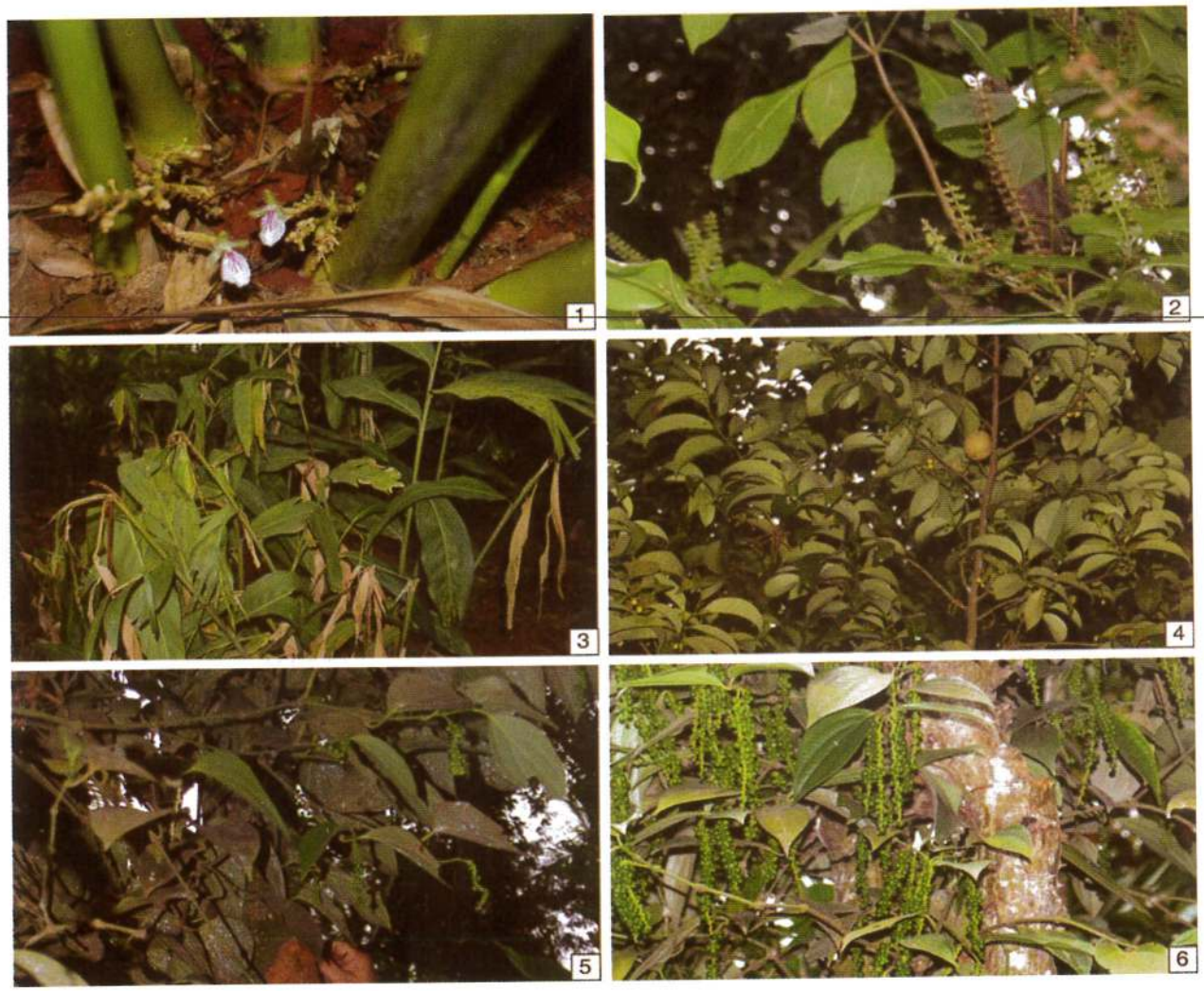

1. *इलेटेरिया कार्डामोमम्* (इलायची), 2. *ओसिमम बेसिलिकम* (बेसील), 3. *अमोमम सुबूलेटम* (बड़ी इलायची), 4. *मायरिस्टिका फ्रेग्रेन्स* (जायफल), 5. *सिन्नामोम्म वेरम* (दालचीनी), 6. *पाइपर निग्रम* (काली मिर्च).

49.	*तमारिन्डस इंडिका*	इमली	सिजलपिनिऐसी	फल
50.	*थाइमस वुल्गेरिस*	थाइम	लेमिऐसी	पत्ती
51.	*ट्राईगोनेला फोइनम ग्रेसियम*	मेथी	फेबेसी	बीज
52.	*ट्राकीर्स्पमम एम्मी*	अजवाइन	एपिऐसी	फल
53.	*ट्राकीर्स्पमम रॉक्सब्रुघियानम*	राधुनी	एपिऐसी	सूखे फल
54.	*वानिल्ला प्लानिफोलिया*	वेनिला	आर्किडेसी	फली
55.	*जिन्जीबर आफिसिनेल*	अदरक	जिन्जीबेरेसी	राइजोम

भारत में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधता के साथ ही खान–पान में भी क्षेत्रीय विविधता देखने को मिलती है, यही कारण है कि अलग अलग प्रकार के मसालों का प्रयोग कर विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री बनाई जाती है। मसाले न केवल स्वाद एवं महक के रूप में प्रयोग किये जाते हैं अपितु यथा संभव इनका उपयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है। इस प्रकार भारत में पाये जाने वाले पौधे अपने भिन्न भिन्न अंगों के द्वारा मसालों के तौर पर प्रयुक्त किये जाते हैं।

होर्टस मालाबारिकस में वर्णित औषधीय पर्णांग

पुष्पेश जोशी, बृजेश कुमार, हिमांशु द्विवेदी एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

होर्टस मालाबारिकस, "मालाबार के उद्यान" में मिलने वाली प्रचुर औषधीय वानस्पतिक सम्पदा का वर्णन करने वाला एक प्राचीन ग्रंथ है। होर्टस मालाबारिकस का संकलन एवं प्रकाशन सन् 1678 के मध्य में हेंड्रिक अद्रियान वान रीड के द्वारा 12 खंडों में संकलित एंव प्रकाशित किया गया। जिसमें 690 पादप जातियो का 742 अध्यायों में 790 चित्रों के साथ वर्णन किया गया है। होर्टस मालाबारिकस में पादप चित्रों एवं उनके वर्णन के आधार पर 675 आवृतबीजी, 2 अनावृतबीजी, 13 पर्णागों एवं एक हरितोद्भिद पादपों का विवरण है। यह पुस्तक मालाबार के पूर्व डच उपनिवेश राज्यपाल हेंड्रिक अद्रियान वान रीड, आयुर्वेदिक चिकित्सकों, वनस्पतिज्ञों एवं अनुवादकों आदि के उल्लेखनीय सहयोग का उत्पाद है।

होर्टस मालाबारिकस में प्रस्तुत लोक वनस्पति चिकित्सा की जानकारी श्री इत्ती अचुदन (मालाबार के तत्कालिन प्रसिद्ध चिकित्सक) द्वारा ताड़पत्र पर पांडुलिपियों से एकत्रित कर सम्पूर्ण सामग्री को मलयालम में लिखा। इसकी जांच तीन कोंकणी पुजारी–चिकित्सकों द्वारा की गयी, जिनको ब्राह्मण के रूप में जाना गया– रंग भट्ट, विनायक पंडित और अप्पू भट्ट, तत्पश्चात् इसका वैज्ञानिकों, वनस्पतिज्ञों एवं अन्य विद्वानों के साथ विचार– विमर्श करके और आम सहमति के साथ पूरी तरह से सत्यापन कराया गया। अंतिम प्रारूप को डच ईस्ट इंडिया कंपनी के आधिकारिक दुभाषिये की सहायता से पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया गया जिसका कालान्तर में पुर्तगाली से डच और डच से लैटिन में भी अनुवाद करवाया गया।

यद्यपि होर्टस मालाबरिकस एक स्मारकीय कार्य था पर यह लैटिन भाषा और नामकरण के कारण आधुनिक शोधकर्ताओं के बीच ज्यादा महत्व प्राप्त नहीं कर पाया। होर्टस मालाबरिकस की प्राचीनता एवं इसकी महत्ता को समझते हुए कालीकट विश्वविद्यालय के प्रो. मणिलाल ने इसमें वर्णित पादप जातियों की सही पहचान करने, लैटिन विवरण का अनुवाद करने एवं नवीनतम अंतर्राष्ट्रीय कोड के आधार पर वानस्पतिक नामकरण करने की एक परियोजना शुरू की। इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने में उन्हें लगभग 35 वर्षों का समय लग गया। इस अद्भूत कार्य के माध्यम से उन्होंने इसे वैज्ञानिकों चिकित्सकों, भाषाविदों एवं इतिहासकारों आदि के लिए एक विशाल संपत्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

होर्टस मालाबारिकस एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ होने के कारण समय समय पर अनेक वनस्पतिज्ञों ने इसमें वर्णित पादप जातियों की अद्यतन जानकारी के अनुसार इनकी सही पहचान बताई गयी है। होर्टस मालाबरिकस में पौधों के पत्ते, फूल, फल, रंग, गंध, स्वाद और मूल्य उनके मलयालम नाम से दर्शाये हैं। होर्टस मालाबरिकस में पर्णांगों को 12वें संस्करण में 4 समूहों के अंर्तगत प्रकाशित किया गया है. देंन्स्टेड्ट और दिल्लवयन ने होर्टस मालाबरिकस में पर्णांगों का अध्ययन किया और उनको समकालीन साहित्य के आधार पर पहचान कर उनका नामकरण किया। इसमें वर्णित औषधीय महत्व के पर्णांगों पर अनेक वनस्पतिज्ञों (मणिलाल, 1984 दत्ता, 1985 निकोल्सन, आदि 1988 मधूसूदन एवम् रजनी, 1994 रमेश एंव अन्य 2003) के द्वारा इनका विस्तृत अध्ययन किया गया। होर्टर्स मालाबारिकस के फर्न एवं उनके सम्बन्ध का पुनः शोध में मधुसुदन और रजनी (1944) ने 15 फर्न जातियों का वर्णन किया और इसमें वर्णित पादप जाति *वैलीवेराकोडी* (*Vallivarakodi*) की पहचान कर सही वानस्पतिक नाम, *निस्टेरिका बहुपन्कटिका* (*Nistarika bahupunctica*) बताया। दत्ता (1985) ने होर्टस के अध्धयन से 17 पर्णांगों का उल्लेख किया। बाद में निकोल्सन आदि (1988) ने दत्ता (1985) के कार्य का अध्ययन किया और 16 पर्णांगों का उनके वानस्पतिक नामांकरण एंव संक्षिप्त विवरण के साथ वर्णन किया। निकोल्सन आदि (1988) ने नितिपाना को पर्णांग में रखा। वर्तमान में किये गए शोध से ज्ञात होता है कि नितिपाना सम्भवतः जलाक्रांत जगहों पर पाये जाने वाले साइकेड या पाम है, न कि पर्णांग है।

प्राचीन समय से भारतीय चिकित्सा पद्यति में पर्णांग जैसे *एडिएन्टम, एक्टिनोप्टेरिस* आदि के औषधीय उपयोगों का वर्णन है। प्रस्तुत लेख में होर्टर्स मालाबारिकस में वर्णित 14 पर्णांगों (रमेश एवं अन्य 2003) के औषधीय उपयोगों का विवरण दिया गया है, जो समकालीन आयुर्वेदिक चिकित्सकों, वानस्पतिज्ञों, परम्परागत लोगों आदि द्वारा बताये गये हैं। इनमें से कई उपयोगों का वर्णन होर्टर्स मालाबारिकस में सर्वप्रथम बार प्रकाशित किया गया है।

9. मलयालम नाम– मरेत्ता–माला–मारावारा (होर्टस मालाबारि.12: 57, 29. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *पाइरोसिया हेट्रोफिल्ला*
कुल– पोलीपोडिएसी
उपयोगी भाग– सम्पूर्ण पौधा
उपयोग– पत्तियों का रस स्ट्राइक्नोस– नक्स वोमिका के सार के साथ मसूड़ो की सूजन एवं दांतो को मजबूत करने में लाभदायक होता है। यह खसरा एवं यौन रोगों के इलाज में प्रयोग किया जाता है।

10. मलयालम नाम– पन्ना–मरा–मरावारा (होर्टस मालाबारि.12: 31, 15. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *बोलविटिस सबक्रिनेटा*
कुल– लोमारियोप्सिडेसी
उपयोगी भाग– पौधा (सम्पूर्ण)
उपयोग– स्थानीय रोग, कफ फेफड़ों के विकार, पागलपन एवं क्षय रोग में लाभदायक।

11. मलयालम नाम– वल्ली–वरा–कोदि–मारावारा (होर्टस मालाबारि. 12: 59, 30. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *लेप्टोचिलस बहुपंक्टिका*
कुल– पोलीपोडिएसी
उपयोगी भाग– पत्तियाँ
उपयोग– पत्तियों को मसलकर नीबू और रिसीनस कम्युनिस के साथ मिलाकर गठिया रोग के लिये औषधि बनाई जाती है।

12. मलयालम नाम– वल्लि–पन्ना (होर्टस मालाबारि.12: 63,32. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *लाइगोडियम फलेक्सुओसम*
कुल– साईजिएसी
उपयोगी भाग– पत्तियां
उपयोग– पत्तियों को पीस कर गाय के दूध के साथ खाने से उदर सम्बन्धी विकारों का निवारण होता है।

13. मलयालम नाम– पन्ना वल्लि (होर्टस मालाबारि. 12: 69,35. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *स्टीनोक्लेना पलुस्ट्रिस*
कुल– ब्लेकनेसी
उपयोगी भाग– सम्पूर्ण पौधा
उपयोग– पिपली, अदरक, एंव सरजेलिम तेल को पौधों के साथ मिलाकर माथे पर लेप करने से सिर दर्द में लाभ होता है।

14. मलयालम नाम– तिरी–पन्ना (होर्टस मालाबारि.12: 69, 35. 1693.)
वानस्पतिक नाम– *पाइरोसिया लेन्सियोलेटा*
कुल– पोलिपोडिएसी
उपयोगी भाग– पत्तियां
उपयोग– कान के दर्द को कम करने के लिए पत्तियों के रस का प्रयोग किया जाता है।उसमें बैठकर स्नान करने से प्रसव पीड़ा में कमी होती है। मूल का रस फेफड़ों से कफ कम करता है एवं प्लीहा के विकारों में लाभदायक होता है।

यहाँ पर वर्णित 14 पर्णांग जातियों के अतिरिक्त, विभिन्न संदर्भो के अध्ययन के आधार पर भारत में पायी जाने वाली कुल 1268 जातियों (प्लांट डिस्कवरीज, 2013) में से लगभग 200 जातियाँ उपयोगी पायी गई हैं। बदलती वातावरणीय दशाओं के कारण इन जातियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। इनको विलुप्त होने से बचाने के लिये इनके सतत् उपयोग एवं संरक्षण की आवश्यकता है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में जैवविविधता एवं धार्मिक यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियों का वैज्ञानिक महत्व

अरविन्द कुमार, मानस रंजन देवता एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

हमारी भारतीय संस्कृति सदैव प्रकृति की पालक रही है। पर्यावरण संरक्षण प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति तथा जीवन शैली का अभिन्न अंग रहा है। भारतीय संस्कृति में वेदों की वैज्ञानिक मान्यता है। वेद शब्द "विद" धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ ज्ञान होता है। चिंतन, दर्शन एवं आत्म–साक्षात्कार के क्षणों में जो ज्ञान रश्मियाँ ऋषियों के मन पटल पर अवतरित हुई, वे शब्दों और प्रतीकों के माध्यम से वेद के मंत्रों और सुक्तियों के रूप में प्रकट हुईं मानी जाती हैं। वैज्ञानिक मान्यता है कि वेदों के मंत्रों से हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

भारतीय वेदों के अनुसार देवता अग्नि, जल, समस्त लोकों में अर्न्तयामी हैं तथा देव औषधियों व वनस्पतियों में वास करते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार सारा ब्रह्माण्ड व हमारा शरीर पंच महाभूतों से बना हुआ है जैसे वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश। भारतीय संस्कृति में हम वृक्षों, औषधियों, नदियों, सरोवरों, पर्वतों तथा अन्य प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करते हैं। इनमें ईश्वर दर्शन के द्वारा ही हमारा प्रकृति के संबन्धों में सदैव एक सामंजस्य एवं सन्तुलन विद्यमान रहा है। हम भारतीय हमेशा एक ऐसी संस्कृति एवं सभ्यता के पक्षधर रहे हैं जो सबके लिए मंगलकारी एवं कल्याणकारी हो। भारतीय वैदिक शास्त्रों में विशेषतः उपनिषदों में पृथ्वी को परमात्मा का शरीर माना गया है तो पेड़ पौधों को काटना एवं जल स्रोत्रों को प्रदूषित करना ईश्वर को आघात पहुँचाना माना गया है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में वृक्षों की महत्ता– भारतीय संस्कृति व वेदों में वृक्षों को पूजनीय माना गया है, केला (*म्यूसा पैराडिजिका*) वट (*फाइकस बैंगालेन्सिस*), पीपल (*फाइकस रिलिजियोसा*), तुलसी (*ओसिमम सेंकटम*) आदि इसके अनुकरणीय उदाहरण है। भारतीय आर्युविज्ञानियों का भी मानना है कि विश्व में ऐसी कोई वनस्पति नहीं जिसको औषधि के रूप में उपयोग नहीं किया जा सके। मतस्य पुराण में कहा है कि दस कुओं के बराबर एक बाबड़ी है, दस बाबड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाब के बराबर एक पुत्र है तथा दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। हमारी वैदिक संस्कृति में वृक्षों को देवता माना गया है। पर्यावरण शुद्धिकरण में पीपल का बहुत योगदान है, क्योंकि यह एक ऐसा वृक्ष है जो चौबीस घन्टे ऑक्सीजन प्रदान करता है। प्रकृति में पाये जाने वाले वृक्ष अपने जीवन रक्षार्थ प्रदूषण फैलाने वाले कारकों को अपने में अवशोषित कर प्रकृति के जीव–जन्तुओं के लिए प्राणवायु को भेजते रहते हैं। अगर वृक्षों का अस्तित्व न हो तो कल–कारखानों के वर्तमान युग में मनुष्य का प्रदूषण से बच पाना असंभव हो जाएगा।

प्राणी जगत के लिए वृक्षों के उपकारों को पंच महायज्ञों के समान बताते हुए उल्लेख किया गया है कि वृक्ष गृहस्थों के लिए ईंधन के रूप में, अग्नि होम के रूप में, पथिकों के लिए छाया एवं विश्राम के लिए, पक्षियों के लिए घोसलें के रूप में तथा पत्र, मूल एवं छिलका आदि के द्वारा समस्त प्राणियों के लिए औषधि के रूप में जो उपकार करते है, वे उनके द्वारा किये जाने वाले पांच महायज्ञ हैं।

पशु-पक्षियों के संरक्षण की सामाजिक एवं धार्मिक परम्परा– भारतीय संस्कृति ने जितनी प्रमुखता प्रकृति, जीवन एवं मानव को दी है उतना ही महत्व वन्य जीवों को भी प्रदान किया है। हमारी संस्कृति में वन्य जीवों को सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक धरोहर के रूप में प्रमुख स्थान दिया गया है। हमने जन्तुओं तथा पशुओं को अवतार माना है तथा हजारों वर्षों से उनकी पूजा अर्चना कर रहे हैं। वन्य जीव कई देवी–देवताओं के वाहन के रूप में पूजनीय है।

पुरातन काल से लोग घरों के बाहर पक्षियों को दाना पानी डालने हेतु स्थान भी रखते आये हैं। पर्यावरण की सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाए रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने वन्य जीवों से निकटता स्थापित करने का सुप्रयास किया, जिससे इनकी उपस्थिति अनेक त्यौहारों पर बनी रहे। हमारे यहाँ विवाह के अवसर पर "तोरण" लगाने की भी परम्परा है। उस तोरण पर प्रतीक के रूप में पक्षियों की आकृति बनी रहती है। जो पक्षी जगत से हमारे समन्वय को प्रकट करती है।

वन्य प्राणियों का एक रूप मुद्रा के रूप में भी मिलता है। यह पुरातन काल से आधुनिक काल में भी चल रहा है। वर्तमान में भारतीय रिर्जव बैंक ने भी अपने प्रतीक चिन्ह में एक ताड़ के वृक्ष के समीप खड़े गेंडे को प्रदर्शित किया है। क्योंकि यह प्राणी अपनी नाक पर स्थित सींग के कथित महत्व के कारण मारा जाता रहा है।

यज्ञ का वैज्ञानिक महत्व– यज्ञ मानव शरीर में जीवित रहने तथा श्वांस लेने की प्रक्रिया है। वस्तुतः यज्ञ ही वह विधि है, जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखा जा सकता है। प्राचीन भारत में ऋषि–मुनियों ने अपनी प्रखर दृष्टि से पर्यावरण शुद्धिकरण के लिए उत्तम प्रक्रिया यज्ञ का अन्वेषण किया। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमंडल की पवित्रता, विभिन्न रोगों का नाश, शारीरिक एवं मानसिक उन्नति तथा रोग निवारण के कारण दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए यज्ञ का आयोजन प्राचीन समय से होता आया है। जब समुद्र मंथन के पश्चात् वायुमंडल प्रदूषित हो गया था, तो पर्यावरण को शुद्ध करने के लिए सर्वप्रथम यज्ञ का आयोजन राजा दक्ष द्वारा किया गया था। यज्ञ वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन–डाईआक्साइड का संतुलन बना रहता है। इसके माध्यम से मनुष्य प्रकृति से सबंध जोड़ता हैं और उसकी शक्तियों का उपयोग करने की क्षमता प्राप्त करता है। यज्ञ को उपनिषद्ों एवं वेदों में पर्यावरण प्रदूषण के निराकरण का सर्वोत्तम साधन बताया गया है तथा यह भी कहा गया है कि यह सभी अशुद्धियों, दोषों या प्रदूषण को दूर करके पवित्र बनाता है।

यज्ञ में उपयोग की जाने वाली निम्नलिखित सामग्रियों के वानस्पतिक व हिन्दी नाम तथा उनमें पाये जाने वाले यौगिक तत्व एवं उनके चिकित्सीय प्रयोगों का विवरण निम्नवत है–

वानस्पतिक नाम	सामग्री / हिन्दी नाम	पौधों से प्राप्त यौगिक	यौगिक के चिकित्सीय प्रयोग
फाइकस रिलिजियोसा की	पीपल	स्टिगमोस्टीरोल, स्टीरोल	छाले की रोकथाम, जीवाणुनाशक, मधुमेह बीमारी की रोकथाम
मायरीस्टीका फ्रेगरेन्स	जायफल	––	अस्थमा, अपच, मिर्गी, पेट के कीड़ों, मूत्र विकार में
इलिटेरिया कार्डेमोमम	ईलायची	सिनेओल, पिपीलिका अम्ल, एसीटिक अम्ल	उल्टी, दस्त
कोम्मीफेरा मुकुल	गुग्गल	गुगुलिपिड	कॉलेस्ट्राल रोधी
मेन्जीफेरा इंडिका	आम	विटामिन ए, सी एवं डी	पेचिश, खरास फटना, बिच्छू दंश
ग्लेसराइजा ग्लेब्रा	मुलहठी	––	गले की खराश, खांसी, जीवाणुनाशक
ब्यूटिया मोनोर्स्पमा	पलाश		पेचिस, खूजली, पेट की कीड़े ।
सेन्टेलम एल्बम	चंदन	टेसपेन्स, टेसपोनोइड	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र उद्दीपक,जैवप्रतिरोधक
सिड्रस देवदारा	देवदार	––	कैंसररोधी, दर्द निवारक, मांसपेशियों के खिंचाव में
एजिली मार्मिलोस	बेल	––	मधुमेह प्रतिरोधक,वायरस रोधी, कृमिनाशक
फाइकस रेसिमोसा	गुलर	––	ज्वर, फोड़े फुन्सी, दातून,पौष्टिक, स्तम्भक
फाइकस बेंगालेन्सिस	बरगद	फ्लेवोनोइड, पेनकोसाइंनिडिन	जीवाणुनाशक
ओराइजा सेटाइवा	चावल	कार्बोहाइड्रेट	शक्ति वर्धक, पुष्टिकारक,
होर्डियम वल्गेर	जौ	कार्बोहाइड्रेट	शक्ति वर्धक, पुष्टिकारक,
मूसा पैराडिजियका	केला		डायरिया, बलदायक
टिट्रिकम एस्टीवम	गेहूँ		शक्तिवर्धक पुष्टिकारक
बिग्ना रेडियेटा	मूंग		शक्ति वर्धक पुष्टिकारक
साइसर एरिटिनम	चना		शक्ति वर्धक पुष्टिकारक
वाइटिस वाइनीरा	अंगूर		रक्त अल्पता, रक्त शुद्धिकरण
फिओनिकस सिलवेस्टगी	दूहारा		भूख बढ़ाने में, कब्ज में
ओसीमम सैक्टम	तुलसी	सगंध तेल	मांसपेशी,स्पंदक, हाइपोग्लाइसेमिक

टीनोस्पोरा कार्डिफोलिया	गिलोय		विषाणु रक्तविकार
सराका इंडिका	अशोक	छाल में टैनिन, कैटेचोल	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र प्रभावी, कैंसररोधी, श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर
इफिड्रा जिराडियाना	सोमलता	एफेड्रिन	हृदय बल वर्धक
धतूरा मीटल	धतूरा	स्कोपोलेमीन एट्रोपीन,	अस्थमा रोधी, अवसाद पुतली प्रसारक, कोलिन उत्तेजक
सिसेमम् इंडिकम	तिल	पिनोरेसिनॉल	हृदय टॉनिक
कोम्मीफोरा वाइटाइ	गुग्गल	गुगुलिपिड	कॉलेस्ट्रॉल रोधी
जिन्जीबर औफिसिनेल	अदरक	पोटेशियम ऑक्सेलेट, कैम्फीन, जिंजीबेरेन	खांसी, बुखार, गले की खराश
साइजियम एरोमेटिकम	लौंग	--	अफरा, पेटदर्द, जलोदर
कुकुर्मा लौंगा	हल्दी	कुर्कुमिन, एन्टीआक्सीडेन्ट,	जलन व पित्ताशय रोगों में
टर्मिनेलिया बेलेरिका	बहेड़ा	--	छाल मूत्रल, हृदय के लिये बलदायक, अतिसार में छाल का काढ़ा उपयोगी
सिनामोमम वेरम	दालचीनी	--	पाचन शक्तिवर्धक
सिनामोमम केम्फोरा	कपूर	संगध तेल	जीवाणुनाशक
फाइलैन्थस इम्बालिका	आंवला	विटामिन सी	दांतों के रोगों एवं मूत्र विकार में उपयोगी

इसके अतिरिक्त यज्ञ में कस्तूरी, कपूर, घी, दूध, दही, शहद, शक्कर आदि का उपयोग किया जाता है। यज्ञ जितना छोटा अथवा बड़ा होता है उसी अनुपात से यज्ञ कुण्ड बड़ा या छोटा होता है। शुल्ब सूत्र ग्रथों में यज्ञकुण्डों को बनाने की विधि बताई गई है। ज्यामिति की दृष्टि से शुल्ब सूत्रों का वैज्ञानिक महत्व है।

यज्ञ में ऐसे वृक्षों का चयन किया गया है जैसे कि पलाश (*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*), बरगद (*फाइकस बेंगालेन्सिस*), पीपल (*फाइकस रिलिजियोसा*), गूलर (*फाइकस रेसिमोसा*) बेल (*एजिली मार्बिलोस*) इत्यादि जिनसे कार्बन–डॉइ–आक्साइड की मात्रा बहुत कम निकलती है और जो शीघ्र जल जाते हैं। इनका कोयला नहीं बनता अपितु राख ही बनती है तथा धुआं भी बहुत कम निकलता है। कार्बन–डाइ–ऑक्साइड कम बनने से इनसे हानि की संभावना नहीं रहती। इसके अतिरिक्त गाय का घी भी सर्वोत्तम माना गया है जो यज्ञ का प्रधान द्रव्य है। यज्ञ में घी का उपयोग वायु प्रदूषण को दूर करने का उत्तम साधन हैं।

यज्ञ में डाली जाने वाली वस्तुऐं चार प्रकार की होती है।

(क) सुगंधित : कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चंदन, जायफल, इलायची, जावित्री आदि। ये सभी अग्नि में डाली जाने पर सुगन्धित वायु देते है, और वायुमंडल को शुद्ध करते हैं।

(ख) पुष्टिकारक/शक्ति वर्धक : इनमें घी के अतिरिक्त दूध, फल, मूल, कंद, गेहूँ, चावल, उड़द, तिल, जौ आदि पदार्थ होते हैं। यज्ञ में प्रयुक्त ये पदार्थ मनुष्य के शरीर को शक्ति तथा पुष्टि प्रदान करते हैं।

(ग) रोगनाशक : गिलोय (*टीनोस्पोरा कार्डिफोलिया*), सोमलता (*इफैड्रा जिराडियाना*), गुग्गल (*कोम्मीफोरा वाइटाइ*) आदि पदार्थ हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार के जीवाणु, विषाणु, कैंसर व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को स्वस्थ्य बनाते हैं। चिकित्सा पद्धति में अलग–अलग रोगों के निवारण के लिए अलग–अलग पदार्थों को यज्ञ में डालने का विधान है।

(घ) मीठे पदार्थ : मीठी चीजें जैसे – गुड़, शक्कर, द्राक्षा आदि को यज्ञ में प्रयुक्त करने से इनमें वायुमंडल को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति होती है।

यज्ञ में प्रयुक्त पदार्थों में विविध रसायनिक परिवर्तन होते हैं। पदार्थों में उपस्थित सेल्यूलोस एवं कार्बोहाइड्रेट्स का दहन होता है। कार्बनिक पदार्थ में उपस्थित हाइड्रोजन वायुमंडल की आक्सीजन के साथ संयोग करके अधिक मात्रा में वाष्प का निर्माण करती है। इसके साथ ही उसके दहन

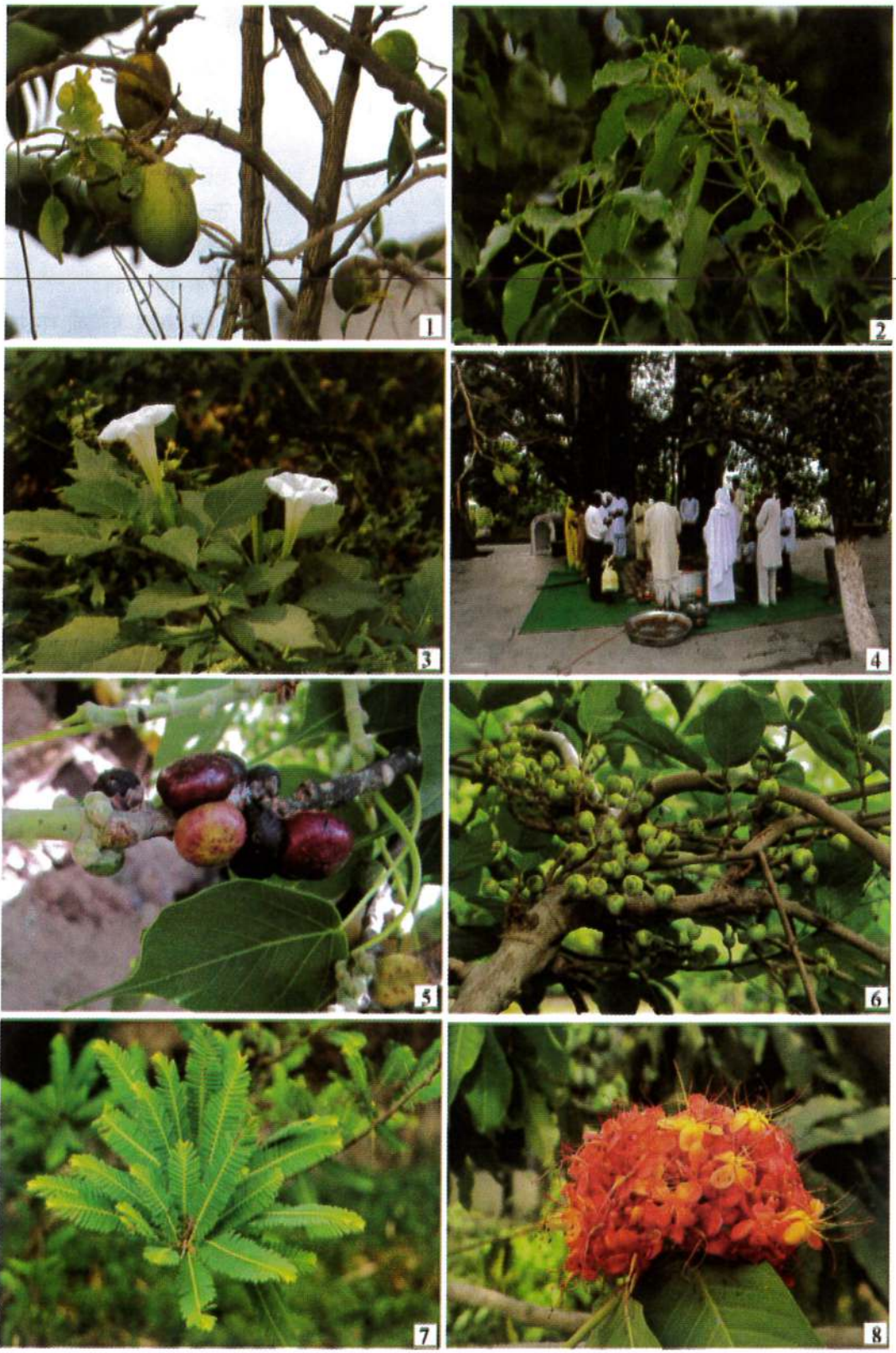

1. *एजेल मार्मिलोस* 2. *सिनामोमम कैम्फेरा* 3. *धतूरा मिटल* 4. *फाइकस बेंघालेन्सिस* वृक्ष के पास हवन करते लोग 5. *फाइकस रिलिजियोसा* 6. *फाइकस रेसिमोसा* 7. *फाइलैन्थस इम्बालिका* 8. *सारसा इंडिका*

से धूम्र भी अधिक मात्रा में उत्सर्जित होता है। घी वसा युक्त पदार्थ होने के कारण लकड़ियों के सेल्यूलोस के तीव्र दहन में सहायक होता है। इस अभिक्रिया से उत्पन्न हाइड्रोकार्बन का धीरे धीरे दहन होता है। जिसके परिणाम स्वरुप मिथाइल एवं इथाइल ऐल्कोहल, एसिटैल्हिाइड, फार्मिक अम्ल व एसीटिक अम्लों का निर्माण होता है तथा सुंगन्धित पदार्थ वाष्पीकृत होकर वायु के साथ विसरित होते हैं। जब सारे वाष्पशील पदार्थ विसरित हो जाते हैं तब सूर्य के प्रकाश में प्रकाश रसायनिक अभिक्रियायें प्रारम्भ होती हैं। यही कारण है कि यज्ञ प्रायः सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में ही सम्पन्न किए जाते हैं। पर्यावरण में व्याप्त कार्बन–मोनो–आक्साइड, कार्बन–डाइ–ऑक्साइड तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि प्रदूषकों को यज्ञ के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। किसी भी प्रकार का प्रदूषण पर्यावरण में उपस्थित धन विद्युतीय आवेश को बढ़ाकर उसे प्रदूषित करता है। यज्ञ में पदार्थों का अपचयन क्रिया के द्वारा वायुमंडल में ऋणविद्युतीय आवेश का आधिक्य हो जाता है। बादलों के साथ संयुक्त होने पर ये उसके विक्षोव को समाप्त कर देते हैं। यज्ञ के द्वारा परिशोधित जल एवं वायु मनुष्य के अलावा वृक्षों, लताओं इत्यादि के लिए वृद्धि कारक तथा कीटनाशक हो जाती है, जिससे हरीतिमा का संवर्धन भी होता है।

उत्तरप्रदेश के प्रदूषण नियंत्रण मंडल द्वारा यज्ञ क्षेत्र में पर्यावरण का अध्ययन किया गया तथा पाया गया कि यज्ञ के पश्चात् वायुमण्डल में फैली सल्फर–डाइ–ऑक्साइड एवं नाइट्रस ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसों की मात्रा में कमी आने के साथ ही वायु एवं जल के रोगाणुओं का भी नाश होता है। यज्ञों की भस्म में फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्निशियम एवं नाइट्रोजन की मात्रा से मृदा की उर्वरक शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

देशी व विदेशी वैज्ञानिकों का यज्ञ संबंधी अनुसंधान– भारत में ही नहीं वरन् विश्व के कई देशों में यज्ञ से सम्बन्धित अनेकों अनुसंधान लगातार किये जा रहे हैं। रुस के वैज्ञानिक डा. शिरोविच ने अपनी पुस्तक "नेचर" में पंचामृत के परीक्षण से निष्कर्ष निकाला है कि गाय के दूध में आण्विक विकिरण के प्रभाव से रक्षा करने की अद्भुत शक्ति होती है एवं गाय के गोबर से लिया हुआ स्थान भी आण्विक विकिरण के प्रभाव से पूर्ण सुरक्षित रहता है। यज्ञ में वायुमंडल से ऑक्सीजन की अल्पतम मात्रा खर्च होती है। अमेरिका के न्यू जर्सी शहर में अग्निहोत्र नामक एक संस्था है, जो अमेरिका में प्रदूषण निवारण के लिए बड़े पैमाने पर उपयोग और प्रचार प्रसार कर रही है। अमेरिका के प्रवासियों ने भी यज्ञ के आश्चर्यजनक परिणाम प्रेक्षित किए हैं। भारतीय वैज्ञानिक सत्यप्रकाश ने अपनी अग्निहोत्र पुस्तक में उल्लेख किया है कि यज्ञ से उत्पन्न फार्मोल्डिहाइड गैस में कीटनाशी गुण होते हैं। रुस के वैज्ञानिक डॉ. एम. मोमियार ने अपनी पुस्तक "एन्सिएंट हिस्ट्री ऑन मेडिसिन" में लिखा है कि रोगों के कीटाणुओं को समाप्त करने के लिए यज्ञ से सरल और सुलभ कोई पद्धति नहीं हो सकती।

फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो. ट्रिलर्बट ने यह निष्कर्ष निकाला है कि शक्कर के दहन से उत्पन्न धूएं में पर्यावरण को शुद्ध करने की शक्ति होती है जिससे क्षयरोग, चेचक, हैजा एवं तपेदिक जैसे रोगों के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेदिक के प्रसिद्ध ग्रन्थ "चरक संहिता" में लिखा है कि क्षयरोग के जीवाणु को नष्ट करने के लिए सफल चिकित्सा पद्धति यज्ञ ही है। ब्रिटिश शासनकाल में चर्न्नड के आयुक्त डॉ. के. किंग ने वहाँ प्लेग फैलने पर विद्यार्थियों को घी, केसर व चावल मिलाकर हवन का परामर्श दिया था। सूरत में सन् 1994 में प्लेग फैलने पर वहाँ भी चिकित्सा अधिकारियों ने वातावरण को विषाणु रहित बनाने के लिए घी, मिश्रित धूप, हल्दी तथा कपूर जलाने की सलाह दी थी एवं हवन सामग्रियों के लाखों पैकेट बांटे गए थे। फ्रांसीसी चिकित्सक डॉ. हॉकिन ने यह प्रतिपादित किया है कि शक्कर तथा घी के मिश्रण को जलाने से लगभग सभी प्रकार के रोगाणुओं का नाश हो जाता है, तथा हृदय एवं मस्तिष्क नैंसर्गिक सुखों से परिपूर्ण हो जाते हैं। मंत्रों के लयबद्ध उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि एवं अग्नि देवता के पूजन से उत्पन्न ऊष्मा, दोनों ऊर्जायें संयुक्त रुप से भौतिक मनोविज्ञान एवं आध्यात्मिक लाभ देती हैं। अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ हार्वड ने अपने परीक्षण के दौरान यह ज्ञात किया कि गायत्री मंत्र के स्वर उच्चारण से एक सेकण्ड में 1,10,000 तरगें उत्पन्न होती हैं, जो दुर्भावनाओं को काफी हद तक शान्त कर देती हैं, अतः यह निर्विवाद सत्य है कि यज्ञ पर्यावरण के "हरित गृह प्रभाव" को कम करने की शक्ति रखता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के औषधीय एवं संगध पौधों, वनस्पतियों एवं वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

---

13. *एलशोलजिआ कम्यूनिस* (लैमिएसी)– मणिपुर की टांगखुल–नागा आदिवासी इस के फूल का रस पीते हैं और गले के दर्द एवं टॉन्सिल का उपचार करते हैं।

14. *एंजेलहार्डसिया स्पीकेटा* (जूग्लनडेसी)– मेघालय की खासी आदिवासी इसके कोमल फूल और पत्तियों को पीसकर उसके लेप से खाज, खुजली एवं विभिन्न प्रकार के त्वचा संबन्धित बीमारियों का इलाज करते हैं ।

15. *जियोडोरम कैंडिडम* (आर्किडेसी)– छत्तीसगढ़ के गोंड समुद आदिवासी बिच्छू के डंक मारने पर इस पौधे का कन्दमूल खाते हैं जिससे दर्द कम होता है ।

16. *हेडिचीयम कोरोनेरियम* (जिंजीबेरेसी)– ओडिशा के कंध आदिवासी इसके फूलों को पीस कर काली मिर्च के साथ सेवन कर मूत्र सम्बन्धी रोगों का उपचार करते हैं।

17. *हेमिग्रेफिस लैटेब्रोसा* (एकेन्थेसी)– महाराष्ट्र के कोर्कु आदिवासी इस पौधें का काढ़ा रक्त शोधक के रूप में उपयोग करते हैं।

18. *लीया इंडिका* (लीएसी)– गुजरात की कथोड़ी, सोन आदिवासी लोग इस पेड़ की जड़ से निचोड़ा हुआ रस महिलाओं के माहवारी पीड़ा में उपयोग करते हैं।

19 *नेफ्रोलेपिस कर्डीफोलिया* (नेफ्रोलेपिडेसी)– अरुणाचल प्रदेश की आदि समुदाय की जनजाति इस पौधे के प्रकन्द को पीसकर उसके लेप को खुजली और दाद के इलाज में उपयोग करते हैं।

20. *नरेगेमिया आलाटा* (मिलीएसी)– कर्नाटक राज्य के जेनु कुरुबा समुदाय के आदिवासी सूखे पत्तियों के चूर्ण को तालाब के पानी में मिला देते हैं जिससे मछलियाँ बेहोश होकर पानी के ऊपर आ जाती है और उन्हें पकड़ना आसान हो जाता है ।

21. *पाईपर मुल्लेसुआ* (पाईपेरेसी)– नागालैंड की जेलीआंग आदिवासी इसके पत्तियों को पीस कर उसका लेप घुटनों पर लगाते है, जिससे गठिया दर्द (वात) में आराम होता है ।

22. *फाईसेलिस अल्केकेंगी* (सोलेनेसी)– लद्दाख एवं जम्मू कश्मीर की बोटो अथवा बोट नाम की आदिवासी जनजाति इस पौधे के फल को पीसकर उसका लेप घुटनों पर लगा कर पारम्परिक तौर पर गठिया रोग का इलाज करती है।

23. *स्पीरेन्थस इंडिकस* (एस्टेरेसी)– केरल की पनियान आदिवासी इस पौधे की पत्तियों को पीसकर त्वचा के रोगों के उपचार हेतु उपयोग में लाते हैं।

24. *तेमारिक्स डाओइका* (तेमारिकेसी)– पश्चिमी उत्तर प्रदेश की शिवालिक हिमालय की तलहटी में निवास करने वाले गुर्जर आदिवासी एवं खनाबदोश जनजाति इसकी पत्तियों के चूर्ण को काला नमक के साथ मिलाकर यकृत के उपचार में उपयोग करते हैं।

25. *वेंटीलागो डेंटिकुलाटा* (रैमनेसी)– पश्चिम बंगाल की लोधा आदिवासी इसके बीजों के तेल से त्वचा सम्बन्धी रोगों का इलाज करती हैं।

26. *वाईटेक्स कुईनाटा* (वर्बीनेसी)– आंध्र प्रदेश की बगाटा आदिवासी इसकी छाल के चूर्ण का लेप लगाकर घावों का उपचार करते हैं।

27. *जिजीफस मारिटियाना* (रेहमनेसी)– तमिलनाडु की मालासर आदिवासी इसकी पत्तियों को उबालकर काढ़ा बनाकर पीते हैं, जिससे पाइल्स का उपचार होता है ।

भारत की जनजातियाँ वर्षों से पारम्परिक रूप से पौधों का उपयोग करती आई हैं। इन पौधों को वे जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक कर्म काण्डों, खाद्य, औषधीय उपचार तथा घर परिवार के अन्य आवश्यक कार्य के लिए उपयोग करते हैं। वानस्पतिक उपयोग के अनेक पारम्परिक ज्ञान आदिवासी समाज में प्रचलित हैं, जिसके बारे में आधुनिक जगत के लोगों को बहुत कम जानकारी है। नृवानस्पतिक विवरण भारत के विभिन्न प्रान्तों में बसे आदिवासियों के ज्ञान से प्राप्त होता है। ऐसे लाभदायक नृवानस्पतिक विवरण एवं जनजातियों के वनस्पतियों से सह सम्बंध को उन्नत शोध एवं विज्ञान की परिपाटी परप रख कर समाज के हित में सतत उपयोग की संभावनायें तलाशना एवं वनस्पतियों, पौधों के संरक्षण की ठोस कवायद करना अपेक्षित है ।

उत्तराखण्ड में पाये जाने वाली फाइकस वंश की जातियों का लोक वानस्पतिक उपयोग

देवस्मिता दत्त प्रमाणिक, एस.के. श्रीवास्तव एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड अपनी अनूठी प्राकृतिक सुन्दरता एवं जैव विविधता के की दृष्टि से देशभर में प्रमुख स्थान रखता है। यह राज्य 28°43'–31°28' उत्तरी अक्षांश एवं 77°34'–81°03' पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित। जिसका कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग किमी. है। इसके उत्तर में हिमाचल प्रदेश एवं चीन, उत्तर पश्चिम में हरियाणा, दक्षिण में उत्तर प्रदेश एवं पूर्व में नेपाल स्थित है। यह राज्य अनेक नदियों का उद्गम स्थल हैं, जिनमें से गंगा और यमुना मुख्य हैं। वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य में 13 जिले हैं एवं यहाँ निवास करने वाली प्रमुख जनजातियों में जौनसारी (38.78 प्रतिशत), थारू (32.5 प्रतिशत), भोटिया (15.23 प्रतिशत), बोक्सा (13.67 प्रतिशत) और राजी (0.27 प्रतिशत) हैं। अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिये स्थानीय लोग वन एवं वनस्पतियों पर निर्भर करते हैं।

उत्तराखण्ड राज्य में लगभग 4700 पुष्पीय पादप जातियां पायी जाती हैं (उनियाल एवं अन्य, 2007) प्रत्येक पौधों की महत्वपूर्ण औषधीय एवं लोक वानस्पतिक उपयोगितायें हैं। फाइकस लि. वंश मोरेसीया मालबेरी कुल के प्रमुख एवं की–स्टोन वंश नाम से जाना जाता है। विश्व में फाइकस वंश की लगभग 750 जातियाँ पायी जाती हैं, जिसमें भारत में 89 जातियाँ मिलती हैं, विशिष्ट प्रजनन प्रणाली, तत्तैया परागण एवं विशेष पुष्पक्रम (हाइपेनथोडियम) फाइकस वंश की विशेषता है। उत्तराखण्ड राज्य में पाये जाने वाली 33 जातियाँ न केवल खाद्य, चारा, लकड़ी, गोंद, औषधि एवं घरेलू जानवरों के उपचार बल्कि धार्मिक, सामाजिक एवं परम्परागत विश्वासों के लिये फाइकस वंश की बहुत सी जातियों का संरक्षण किया गया है। प्रस्तुत लेख में फाइकस वंश के सदस्यों की लोक वानस्पतिक जानकारी का विवरण दिया गया है। प्रत्येक जाति का वानस्पतिक नाम, स्थानीय नाम, प्रकृति एवं वास–स्थान, समुद्रतल से ऊंचाई, उपयोग व उपयोगी भागों का विवरण निम्नवत है।

1. *फाइकस आर्नोटियाना,* परश पीपल
   प्रकृति एवं वास–स्थान : झाड़ी, मिश्रित वन में मिलता है।
   समुद्रतल से ऊंचाई : 600 मीटर
   उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां चारे के रूप में गाय और बकरियों को खिलायी जाती हैं।
2. *फाइकस ऑरिकुलाटा,* तिमला
   प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, पहाड़ी ढलानों पर मिलता है।
   समुद्रतल से ऊंचाई : 1800–2000 मीटर
   उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां को चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। वायवीय मूल एवं फल खाद्योपयोगी होती हैं एवं इसकी लकड़ी का ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।
3. *फाइकस बेंगालेन्सिस,* बरगद
   प्रकृति एवं वास–स्थान : बड़ा पेड़, मिश्रित वन, साल वन या खुली जगहों में मिलता है।
   समुद्रतल से ऊंचाई : 800–1200 मीटर
   उपयोग एवं उपयोगी भाग : छाल कसैला, अच्छा टॉनिक, पेचिस और मधुमेह रोग में लाभदयक है। पत्तियों से फोड़े का इलाज किया जाता है। जड़ का क्वाथ रक्तक्षीणता, पेचिस एवं उल्टी में उपयोगी है। पके हुये फल खाये जाते हैं। दूध गठिया, मधुमेह एवं दांतों की पीड़ा में उपयोगी है।

4. *फाइकस बेंगालेन्सिस* प्रभेद *कृष्णायी,* कृष्णवट
प्रकृति एवं वास–स्थान : छोटा पेड़, रोपित
समुद्रतल से ऊंचाई : 600 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पौराणिक, सामाजिक और धार्मिक आस्थायें पत्तियों के साथ जुड़ी हुयी हैं।

5. *फाइकस बेंजामिना,* कामरूप
प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, मिश्रित वन पर या रोपित
समुद्रतल से ऊंचाई : 800 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : छाल कुष्ठ रोग निवारक है। पत्तियां का क्वाथ अलसर में उपयोगी है।

6. *फाइकस केरिका,* अंजीर
प्रकृति एवं वास–स्थान : पर्णपाती वृक्ष
समुद्रतल से ऊंचाई : 1600–1800 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियों का लेप सफेद दाग के इलाज में लाभदायक है। ताजा दूध कृमिनाशक। फिग गूर्दे की पथरी, यकृत और प्लीहा की बीमारी में आरामदायी है। यह कफोत्सारक होता है।

7. *फाइकस इलास्टिका,* बड़
प्रकृति एवं वास–स्थान : सदाबहार वृक्ष, रोपित
समुद्रतल से ऊंचाई : 800–1000 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पौधे के तनों के दूध से भारतीय गोंद बनाया जाता है।

8. *फाइकस हेडेरिसिया,* वेदुली, लादुली
प्रकृति एवं वास–स्थान : आरोही लता, पहाड़ों के ढलानों में एवं छायादार स्थानों में मिलते हैं।
समुद्रतल से ऊंचाई : 1000–1300 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां चारे के रूप में प्रयोग की जाती हैं। अन्दर की छाल अस्थायी रूप में बांधने के काम में आती हैं।

9. *फाइकस हेटेरोफाइला*
प्रकृति एवं वास–स्थान : लता, पहाड़ी ढालों पर मिलते हैं।
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां का क्वाथ पेचिश में आरामदायक हैं।

10. *फाइकस हिस्पिडा,* टोटमिला, धोगसा, डेवरी
प्रकृति एवं वास–स्थान : बड़ी झाड़ी, आर्द्र स्थानों पर मिलते हैं।
समुद्रतल से ऊंचाई : 1000 मीटर
उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां और शाखा चारे के रूप में उपयोग में लायी जाती हैं। पके हुये फल भोज्य होते हैं। जड़ फिस्टूला रोग में आरामदायी है। पूरा पौधा शीतल एवं कसैला होता है। सोराइसिस, रक्ताल्पता, अलसर, पित्तदोष, अर्श एवं पीलिया रोगों में इस पौधे के सभी भाग उपयोगी है। छाल से मिलने वाले रेशों से रस्सी बनायी जाती है।

11. *फाइकस लेकर,* कुमरो
प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, मिश्रित वन में पाये जाते हैं।
समुद्रतल से ऊंचाई : 600–800 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियों को गर्भनाल निष्कासन करने में प्रयोग किया जाता है। पेड़ के सभी भाग तीक्ष्ण एवं शीतल होते हैं। यह रक्त की बीमारी, अलसर, दहन, पित्त दोष, कुष्ठ रोग, सूजन एवं मतिभ्रम रोगों में उपयोगी हैं।

12. *फाइकस माइक्रोकार्पा,* गौजिना

प्रकृति एवं वास–स्थान : सदाबहार वृक्ष, नदियों के किनारे मिलते हैं।

समुद्रतल से ऊंचाई : 500–600 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : छाल पित्तनाशक। जड़ को पीसकर घाव, अल्सर,गठिया एवं पेट की बीमारी में प्रयोग किया जाता है। पत्तियां गठिया एवं शूल रोग में उपयोगी हैं।

13. *फाइकस नेरीफोलिया,* दुधला

प्रकृति एवं वास–स्थान : बृहद बृक्ष पहाड़ी ढालों में मिलता हैं

समुद्रतल से ऊंचाई : 1200–2000 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : फल खाया जाता है। पत्तियां चारे के रूप में गाय को खिलायी जाती हैं।

14. *फाइकस नर्वोसा*

प्रकृति एवं वास–स्थान : बृहद बृक्ष, पहाड़ी ढलानों में मिलते हैं।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1200 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां रेचक, मधुमेह एवं गठिया रोग में उपयोगी हैं।

15. *फाइकस ओलिगोडोन,* गवल – तिमला

प्रकृति एवं वास–स्थान : झाड़ी या छोटा वृक्ष, जलीय स्थानों में मिलता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1500 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां और शाखा चारे के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

16. *फाइकस पामाटा,* बेडू, खेमरी

प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, पहाड़ी ढालों में मिलता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1800 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां और शाखा अच्छा चारा है। फल स्वादिष्ट, अक्सर नमक के साथ कच्चा खाया जाता है। फिग शान्तिदायक रेचक एवं फेफड़ों की बीमारी में आरामदायक है।

17. *फाइकस प्यूबिजेरा*

प्रकृति एवं वास–स्थान : लता, खुले स्थान में पायी जाता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 700–2400 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां का चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। पके हुये फल खाये जाते हैं।

18. *फाइकस पुमिला*

प्रकृति एवं वास–स्थान : आरोही, चट्टानों, दीवारों आदि पर पायी जाती है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 650–800 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां एवं फल का उपयोग सूजन, बुखार, उदर के विकार, रक्तस्राव आदि में किया जाता हैं

19. *फाइकस रेसिमोसा,* गूलर

प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, छायादार स्थानों एवं सड़कों के किनारे पाया जाता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 900 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पके हुये फल मधुमेह में लाभदायक हैं। पत्तियों का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर सेवन करने से पित्त–विकार में आराम मिलता है। तने की छाल को पानी में उबालकर पीने से पेचिश में राहत मिलती है। जड़ों को पीसकर, गाय या बकरी के ताजा दूध में मिलाकर एक साथ सेवन करने से पेचिश, आंव, अधिक उल्टी में आराम मिलता है। फिग गाय के दूध में मिलाकर पीने में क्षय रोग में राहत मिलती है।

20. *फाइकस रेलिजिओसा,* पीपल

प्रकृति एवं वास–स्थान : मार्ग वृक्ष, रोपित एवं प्राकृतिक

समुद्रतल से ऊंचाई : 1500–1800 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां एवं शाखायें चारें के रूप में प्रयोग में लायी जाती हैं। छाल को मूत्र की बीमारी, खुजली एवं अर्श में उपयोग किया जाता है। पत्तियों के क्वाथ सेवन करने से ब्रोंकाइटिस और त्वचा के रोगों में आराम मिलता है। फिग श्वास रोग एवं गर्भधारण में सहायक होता है। इस पेड़ को पवित्र माना जाता है।

21. *फाइकस रिजिडा,* खांकरि, बरहि

प्रकृति एवं वास–स्थान : बड़ा पेड़, छायादार चट्टानों पर पाया जाता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1200–1800 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं, एवं फल खाद्योपयोगी हैं।

22. *फाइकस रूम्फाई,* कोबर

प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, मिश्रित वनों में, नदियों के किनारे मिलते हैं।

समुद्रतल से ऊंचाई : 650–1200 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां और शाखायें चारे के रूप में उपयोगी हैं। छाल को पीसकर लगाने से सर्पदंश से राहत मिलती है। वृक्ष का दूध प्रभावशाली दवा है, जो पेट के कीड़ों को दूर करने में लाभदायक एवं श्वांस रोग में आरामदायी है।

23. *फाइकस सरमेन्टोसा,* बेदुलि

प्रकृति एवं वास–स्थान : झाड़ी, छायादार नदी–नालों के किनारे, पहाड़ों की ढालों पर पाया जाता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1400 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां चारे के रूप में गाय एवं बकरियों को खिलायी जाती हैं। पके हुये फल खाद्योपयोगी हैं।

24. *फाइकस स्कवोमोसा,* गढ़ तिमला

प्रकृति एवं वास–स्थान : झाड़ी, पहाड़ों के ढालों में, नदियों के किनारे में मिलते हैं।

समुद्रतल से ऊंचाई : 600–700 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियों को चारे के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

25. *फाइकस सेमीकार्डाटा,* खयना

प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, पहाड़ो की ढालों में मिलते हैं।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1400 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां और शाखा चारे के रूप में उपयोगी हैं। जड़ के अर्क मूत्राशय की बीमारी में आरामदायी हैं। फिग को पीसकर लगाने से फोड़े–फुन्सियों में राहत मिलती है।

1. *फाइकस ऑरिकुलाटा*, 2. *फाइकस बेंगालेन्सिस*, 3. *फाइकस बेंगालेन्सिस प्रभेद कृष्णायी*, 4. *फाइकस केरिया*, 5. *फाइकस इलास्टिका*, 6. *फाइकस हेडेरिसिया*, 7. *फाइकस हिस्पिडा*, 8. *फाइकस पामाटा*, 9. *फाइकस पुमिला*, 10. *फाइकस रेसिमोसा*, 11. *फाइकस रेलिजियोसा*, 12. *फाइकस सेमीकार्डाटा*

26. *फाइकस सुविनसिसा,* चांचरि

प्रकृति एवं वास–स्थान : सदाबहार पेड़, तीव्र पहाड़ी ढालानों एवं नदी नालों पर मिलता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 1700 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पत्तियां एवं कच्ची शाखायें चारे के रूप में उपयोगी है। फल खाद्योपयोगी हैं।

27. *फाइकस टिंक्टोरिया* उपजाति *गिब्बोसा,* ददु, चांचरि

प्रकृति एवं वास–स्थान : छोटा पेड़, मध्य हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाता है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 600–700 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : छाल को पीसकर पेट की बीमारी में प्रयोग किया जाता है। जड़ का सत्व अच्छा रेचक होता है। पत्तियां हाथीदांत, चंदन की लकड़ी एवं फर्नीचर में चमक लाने में सहायक हैं।

28. *फाइकस वीरेन्स,* पिलखन, पखर

प्रकृति एवं वास–स्थान : वृक्ष, मिश्रित वनों एवं पहाड़ी ढ़ालों पर पाये जाते है।

समुद्रतल से ऊंचाई : 600 मीटर

उपयोग एवं उपयोगी भाग : पूरा पौधा रक्तशोधक की तरह उपयोग किया जाता है। छाल का पेस्ट विसर्प में और क्वाथ प्रदर के रोग में प्रयोग में लाया जाता है।

उपरोक्त फाइकस जातियों का लोक वानस्पतिक उपयोग होने के कारण उत्तराखण्ड राज्य में स्थानीय लोगों एवं जनजातियों के द्वारा इनका समय समय पर दोहन किया जा रहा है। यद्यपि अभी इस वंश की जातियों का संकटग्रस्त होने की कोई सम्भावना नहीं है, परंतु जातियों का औषधीय एवं लोक वानस्पतिक गुणों की अधिकता के कारण इनके विदोहन को अधिक वैज्ञानिक विधियों से करने की आवश्यकता है, जिससे भविष्य में ये जातियाँ संकटग्रस्त श्रेणी में सम्मलित न हों।

वृक्षारोपण कार्य महान, एक वृक्ष सौ पुत्र समान ।

गोविन्द पशु विहार वन्य जीव अभयारण्य, पश्चिमी हिमालय के आर्थिक महत्व के पौधे

आर. मणिकन्दन एवं पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पश्चिमी हिमालय में गोविन्द पशु विहार वन्य जीव अभयारण्य उत्तराखण्ड़ के उत्तरकाशी जिले की पुरोला तहसील में 31^{0}17′ से 35^{0}55′ उत्तरी अक्षांश एवं 77^0 47′ से 78^0 37′पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है। यह 957.96 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है। अभयारण्य के 472.08 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के केन्द्रीय भाग को राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया जा चुका है, जिसमें रूपिन, सूपिन और सांकरी तीन क्षेत्र हैं। अभयारण्य उत्तर में हिमाचल प्रदेश, पूर्व में हिमाच्छादित पर्वतों की एक विशाल श्रृंखला से तथा दक्षिण में टोंस व यमुना नदियों के जल विभाजक क्षेत्र से घिरा हुआ है।

अभयारण्य की वनस्पतियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसमें आवृतबीजियों के 129 कुलों के 486 वंशों से सम्बन्धित 831 पादप जातियाँ एवं 8 उपजातियाँ और 11 प्रभेद पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त अनावृतबीजियों के 4 कुलों के 7 वंशों की 10 जातियाँ एवं 23 पर्णांग जातियाँ भी यहाँ पाये गये हैं।

आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पादप–मानव को जीवित रहने के लिए अधिकांश खाद्य पदार्थ पादपों से प्राप्त होते हैं, अतः मानव कल्याण के लिये पादपों का महत्व सर्वोपरि एवं निर्विवाद है। आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पादपों का वर्गीकरण कई लक्षणों के आधार पर किया जा सकता हैं।

(क) खाद्य पादप– अभयारण्य में पायी जाने वाली पादप जातियों से कई खाद्य पदार्थ प्राप्त किए जाते है जैसे –

1. खाद्यान्न – इस क्षेत्र मे पायी जाने वाली कई पादप जातियों से खाद्यान्न जैसे – मंडुवा (*एलूसिन कोराकेना*), जई (*एविना सटाइवा*), धान (*ओराइजा सटाइवा*), कुट्टू (*फेगोपाइरम एस्कुलेन्टम*), कौणी (*सेटारिया इटालिका*), गेहूँ (*ट्रिटिकम एस्टीवम*), मक्का (*जिया मेज*), चुवा (*अमारेन्थस पेनिकुलेटस*), मादिर (*एकिनोक्लोआ फ्रुमनटेसिया*), *पेनिसीटम मिलिएसीयम* आदि प्राप्त किए जाते हैं।
2. दालें – स्थानीय निवासियों द्वारा दाल प्रदान करने वाली कई पादप जातियों की खेती भी इस क्षेत्र में की जाती है जिनमें अरहर (*केजेनस केजान*), चना (*साइसर एरिटिनम*), सोयाबीन (*ग्लाइसिन मेक्स*), राजमा (*फेसिओलस वल्गेरे*), मटर (*पाइसम सटाइवम*), उड़द (*विग्ना मूंगा*), मूंग (*विग्ना रेडिएटा*), बाकुल (*विसिया फेबा*), *विग्ना वेक्सिलेटा* आदि मुख्य हैं।
3. फल – अभयारण्य में कई ऐसी पादप जातियाँ भी पायी जाती हैं जिनसे फल प्राप्त होते हैं जैसे– किरमोड़(*बरबेरिस एरिसटाटा*), अखरोट(*जगलेंश रेजिआ*), कुलथी(*मेक्रोटाइलोमा यूनीफ्लोरम*),जंगली बादाम (*केस्टानिया सटाइवा*), *बरबेरिस स्यूडोअम्बेलेटा, किरोफिल्लम एक्युमिनेटम, कोटोनेस्टर रोजियस, हिपोपी सेलिसिफोलिया, कोरिलस कोलरना, लोनिसेरा एंगस्टिफोलिया, स्कीसेन्ड्रा ग्रान्डीफ्लोरा, विबरनम मुल्लाह* इत्यादि।
4. सब्जियाँ– क्षेत्रीय निवासियों द्वारा कई ऐसी पादप जातियों की कृषि की जाती है, जो सब्जियों के रूप मे इस्तेमाल की जाती हैं, जैसे–प्याज (*एलियम सीपा*), लहसुन (*एलियम सटाइवम*), राई (*ब्रेसिका नाइग्रा*), शलजम (*ब्रेसिका रापा*), पत्तागोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* प्रजाति *केपिटेटा*), मिर्च (*केप्सिकम एनुअम*), मूली (*रेफेनस सटाइवा*), पालक (*स्पाइनेसिया ओलेरेसिया*), आलू (*सोलेनम ट्यूबरोसम*) आदि। इनके साथ ही जंगल में मिलने वाली कुछ पादप जातियों की पत्तियों का उपयोग भी स्थानीय निवासियों द्वारा सब्जियों के रूप में किया जाता हैं जैसे – बथुआ (*चिनोपोड़ियम हाइब्रिड़म*), कुट्टु (*फेगोपाइरम एस्कुलेन्टम*),बिच्छू घास (*अर्टिका डायोका*), *एकोनोगोनोन रूमिसिफोलियम, एक्रोग्लेकिन पर्सिकेरिओइडिस, एलियम स्ट्रेकी, एलियम वालिची, सेरास्टियम देवुरिकम, पोलिगोनेटम सिरीफोलियम* आदि।
5. मसाले एवं गर्म मसाले– प्याज (*एलियम सीपा*), लहसुन (*एलियम सटाइवम*), राई (*ब्रेसिका नाइग्रा*), सरसों (*ब्रेसिका जुंसिया*), दालचीनी (*सिनेमोमम तमाला*), धनिया (*कोरीएन्ड्रम सटाइवम*), अदरक (*जिंजीबर ओफिसिनेले*) आदि जातियाँ भी अभयारण्य में पायी जाती हैं।
6. सगंध पादप– कुथ (*सोसुरिया टेराक्सेसिफोलिया*), *एकोरस केलेमस, आर्टेमिसिया राक्सबर्घियाना, केसिओपी फेस्टिजीएटा, एसोल्टजिया फ्लेवा, मोरिना लोंगीफोलिया, स्किमिआ एंक्यूटीलिया, जूनिपेरस स्क्वेमेटा* आदि पादप जातियों की पत्तियों या संपूर्ण पादप या राइजोम से सगंध पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं।

(ख) पेय–देशी विधियों से तैयार किया गया पेय पदार्थ अभयारण्य के आस पास की जनजातियों के पेय का हिस्सा है। इसे सामान्यतः एक केक के रूप में बनाया जाता है जिसे 'कीम' कहते है। कीम बनाने के लिये *अकाइरेंथस एस्परा*, भांग (*केनाबिस सटाइवा*), *हिसालू (रूबस एलिप्टिकस*),

वहीं एलौपेथी में परिशुद्ध रसायनों का उपयोग किया जाता है जो कि होम्यौपेथी की अपेक्षा अधिक आधुनिक तकनीक है। भारत के पश्चिमी हिमालय और पश्चिमी घाट में प्रचुर मात्रा में औषधीय पादप पाये जाते हैं।

इस अभयारण्य में पाये जाने वाले औषधीय महत्व के पादपों का विवरण अद्योलिखित है –

वानस्पतिक नाम	प्रचलित नाम	कुल	प्रयुक्त भाग	उपयोग
एक्टिया एक्यूमिनेटा	–	रेननकुलेसी	संपूर्ण पादप	परम्परागत औषधि के रूप में
बरबेरिस एरिसटाटा	किरमोड़/किंगोड़	बरबेरीडेसी	जड़े एवं तना	प्राप्त *बरबेरीन* ज्वर व पाण्डुरोग (पीलिया) की औषधि में
केस्टानिया सटाइवा	जंगली बादाम	फेगेसी	पत्तियाँ व छाल	टेनिन, काला भूरा रंजक एवं औषधीय तेल
सिसेम्पिलोस पारिएरा प्रजाति. *हिर्सुटा*	पाड़ी	मेनीस्पर्मेसी	पत्तियाँ व जड़ें	सर्प दशं व खांसी–जुकाम में
डैक्टिलोराइजा हैटाजिरिया	सालमपंजा	ऑर्किड़ेसी	कन्द	फोड़ा–फुंसी व पेट दर्द में
ड्यूटजिया स्टेमिनिया	सेन्दुरी	फिलाडेल्फेसी	पत्तियाँ	जलीय अपरिष्कृत सत्व बच्चों के पेट दर्द में
डिनेटस रेसिमोस्स	रक्षसी	कॉन्वॉल्वुलेसी	संपूर्ण पादप	औषधि के रूप में
डायोस्कोरिया डेल्टोइडिया	हार्विस	डायोस्कोरिएसी	कन्द	गर्भ निरोधक दवा निर्माण, आंत्र कृमिनाशक
हायलोटेलेफियम इवर्सी	मासु/सेंपेन	क्रेसुलेसी	पत्तियाँ	निचोड़ का उपयोग फोड़ा–फुंसी में
मेक्रोटाइलोमा यूनिफ्लोरम	कुल्थी	फेबेसी	बीज	पित्ताशय या वृक्क में पथरी बनने को रोकने में तथा खाद्य के रूप में
निओलिट्सीया अम्ब्रोसा	नारी	लॉरेसी	बीज	त्वचा रोगों में
पेओनिया इमोडी	उदसालप	पेओनिएसी	पत्तियाँ	मूत्र विकार
पिक्रोराइजा कुरूआ	कुटकी	स्क्रोफुलेरिएसी	जड़ें	पाउडर का उपयोग बुखार, पेट दर्द व सिर दर्द में
प्ल्यूरोस्पर्मम स्टीलेटम	–	एपीएसी	पुष्प	रूप सज्जा के लिए
स्मीलेक्स एस्पेरा	कुकुरदार	स्मीलेकेसी	जड़ें	बलवर्धक, रेचक एवं ज्वर नाशक
जेन्थोजाइलम अरमेटम	टिमरू	रूटेसी	तना व बीज	छाल व बीजों का चूर्ण मछलियों को बेहोश करने में
रोडोडेन्ड्रोन अरबोरियम	बुराँश	ऐरीकेसी	पुष्प	रस को स्थानीय बाजार में बेचा जाता हैं, जो पेचिश में लाभकारी होता है।
सीड्रस देवदारा	*देवदार*	पाइनेसी	तना	काष्ठ से निष्कर्षित तेल मुंह के छालों व मवेशियों के त्वचा रोगों में

जैव विविधता को हानि पहुँचाने वाले कारक– अभयारण्य की स्थानीय वनस्पतिजात के खतरों मे मुख्यतः मानव जनित हस्तक्षेप, वनों का विवेकहीन कटाई, पशु चारण, इमारती एवं ईंधन हेतु लकड़ी की कटाई, मृदा अपरदन, खेती योग्य भूमि का विस्तारण, निर्माणकारी योजनाएं, पादप संग्रहण, वनाग्नि, पर्यटन, अतिक्रमणिक जातियाँ आदि हैं, जिनके कारण वनों का पतन हो रहा है। इनके अलावा पर्यावरणीय कारक जैसे भूकंपीय गतिविधियाँ एवं बाढ़ आदि से होने वाला भूस्खलन भी वनस्पति को नष्ट करते हैं। यह एक अनुपम प्राकृतिक सुन्दरता वाली वानस्पतिक धरोहर एवं आयुर्वेदिक संपदा वाला क्षेत्र है, जो कई स्थानिक पादप जातियों एवं संकटापन्न वन्य जीवों का मुख्य आवास है अतः इस क्षेत्र का संरक्षण किया जाना नितांत आवश्यक है।

संरक्षण के उपाय– वन्य जातियों को विलुप्तप्रायः, दुर्लभ और संकटग्रस्त के स्तर तक पहुँचने से बचाने के लिये पारितंत्र के अनुरूप स्व–स्थाने संरक्षण, परा–स्थाने संरक्षण किया जा सकता है। संकटापन्न जातियों के संरक्षण में ऊतक संवर्धन जैसी आधुनिक तकनीकों से भी सहायता मिलती है। विभिन्न ग्राम पंचायतों और वन पंचायतों के माध्यम से अभयारण्य के आस पास के एवं स्थानीय लोगों को इनकी महत्ता तथा उनकी जरूरत के बारे मे सुशिक्षित करना भी संरक्षण की दिशा में एक अहम् कदम साबित हो सकता है।

साइटिस परिशिष्टों में सूचीबद्ध भारतीय पौधों का व्यापार : नियंत्रण एवं नियमन

जे. एच. फ्रैंकलिन बेंजामिन, के. अल्ताफ अहमद कबीर एवं एस. के. यादव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयम्बटूर

विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता और संरक्षण समझौतों में साइटिस (वन्य जीव जंतु एवं पौधों की लुप्तप्राय जातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन) एक महत्वपूर्ण एवं काफी कारगर अंतर्राष्ट्रीय समझौता है। यह उन सभी लुप्तप्रायः जीव जन्तुओं एवं पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी करता है, जो इसकी सूची में शामिल होते हैं। इस तरह यह समझौता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लुप्तप्रायः जातियों की रक्षा करते हुए एक सतत व्यापार को सुनिश्चित करता है।

साइटिस, जिसे "वाशिंगटन समझौता" भी कहते हैं, सन 1975 में अस्तित्व में आया। वर्तमान में दुनिया के लगभग 180 देश इस समझौते के हस्ताक्षरी है। यह समझौता जैव विविधता के संरक्षण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली समझौता है, क्योंकि इसके विभिन्न प्रावधानों को सभी सदस्य देशों की राष्ट्रीय नीतियों में भी शामिल किया गया है।

पौधे एवं साइटिस– विज्ञान एवं तकनीकी के इस आधुनिक युग में लगातार बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, आवास विखंडन एवं लोगों की पेड़–पौधों पर बढ़ती जरुरतों के कारण बहुत से पौधों का अस्तित्व संकट में है। ऐसे में अगर इन पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सजग निगरानी नहीं की गयी तो ये हमेशा के लिए विलुप्त हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में साइटिस के विभिन्न प्रावधान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन पौधों के व्यापार को नियमित एवं नियंत्रित करते हुए अनेकों संकटग्रस्त पौधों को विलुप्त होने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साइटिस का संचालन मुख्यतः इनके विभिन्न परिशिष्टों में सूचीबद्ध जातियों के निर्यात और आयात परमिट के द्वारा होता है। इनके विभिन्न प्रावधान सूचीबद्ध पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियंत्रण के लिए एक आधार प्रदान करते हैं।

साइटिस को लागू करने वाले प्राधिकरण– अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साइटिस के विभिन्न प्रावधानों को लागू करने एवं इसके देखभाल की जिम्मेदारी स्विट्जरलैंड के जेनेवा शहर में स्थित सचिवालय पर है। इसके अंतर्गत सभी सदस्य देशों की यह जिम्मेदारी होती है कि वे अपने यहाँ एक प्रबंधन प्राधिकरण एवं एक वैज्ञानिक प्राधिकरण का गठन करें तथा अपने क्षेत्राधिकार में साइटिस के विभिन्न प्रावधानों को ईमानदारी से लागू करें।

भारत में साइटिस में सूचीबद्ध पौधों एवं जंतुओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नियंत्रण भारत सरकार की एक्सिम पॉलिसी (विदेश व्यापार नीति), वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 एवं साइटिस सम्मेलन के विभिन्न प्रावधानों द्वारा की जाती है। वन्य जीव संरक्षण के निदेशक, साइटिस प्रबंधन प्राधिकरण एवं इसके उप निदेशक साइटिस के सहायक प्रबंधन प्राधिकरण होते हैं। ये वन्य जीवों एवं इनके उत्पादों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को देश के अंदर चिन्हित विभिन्न व्यापार केन्द्रों, जैसे बंदरगाहों एवं हवाई अड्डों पर निगरानी तथा नियंत्रण करते हैं। हमारे देश में अभी चार सहायक प्रबंधन प्राधिकरण कार्यरत हैं जो दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई एवं मुम्बई में स्थित हैं। इसी तरह, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, भारतीय वन्यजीव संस्थान एवं केंद्रीय समुद्री मत्स्य उद्योग अनुसंधान संस्थान साइटिस के वैज्ञानिक प्राधिकरण हैं, जो इनके विभिन्न वैज्ञानिक पहलुओं पर ध्यान रखते हैं। भारत में वन्य जीवों के आयात एवं निर्यात के लिए मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, कोचीन, दिल्ली, तूतीकोरिन एवं अमृतसर को चिन्हित किया गया है।

साइटिस परिशिष्ट– इन परिशिष्टों में जिन पौधों को शामिल किया गया है, उनमें मुख्यतः ऑर्किड्स, कैक्टाई एवं कुछ अन्य सरस पौधों, साईकेड्स, जिओफाईट समूह के कुछ पौधे, माँसाहारी पौधों (कार्निवोरस प्लांट्स) एवं लकड़ी तथा औषधीय पौधों की अनेकों जातियाँ है।

परिशिष्ट I– इस परिशिष्ट में उन सभी पौधों को शामिल किया गया है, जिसका अस्तित्व खतरे में है एवं जिसके लिए कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को काफी सख्ती से नियंत्रित करने की आवश्यकता है। इस समूह में पौधों की कुल 301 जातियों एवं 4 उपजातियों शामिल किया गया है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में रियायत

• कृत्रिम रूप से उगायी कुछ जातियाँ एवं संकर किस्में जिनके बारे में आवश्यक अनुमति ले ली गई हो।

• अति आवश्यक अनुसंधान कार्यों में (आयात एवं निर्यात करने वाले देशों के वैज्ञानिक प्राधिकरणों की अनुमति से)।

•ऑर्किड्स की कुछ जातियों को ऊतक संवर्धन(टिश्यू कल्चर) या अंकुरण पौध संरक्षण हेतु।

परिशिष्ट II–इस समूह में ऐसे पौधों को शामिल किया गया है, जो वर्तमान में तो सुरक्षित हैं लेकिन अगर इनके दोहन एवं व्यापार को नियंत्रित नहीं किया गया ता इनके निकट भविष्य में विलुप्त होने की संभावना है। ऑर्किड्स एवं कैक्टस कुल के सभी पौधों सहित इस परिशिष्ट में कुल 29105 जातियों को शामिल किया गया है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में रियायत

• जंगली एवं कृत्रिम रूप से उगाये गए पौधों जिनके लिए आवश्यक अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) प्राप्त किया गया हो।

• कृत्रिम रूप से उगाये गए पौधों के बीज, परागकण, अंकुर या कटे फूल, फर्न एवं अन्य पौधों की पत्तियाँ।

• वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयुक्त होने वाले सामग्रियों को सदस्य देशों के बीच बिना अनुज्ञप्ति का आयात–निर्यात।

परिशिष्ट III– इस परिशिष्ट में सभी ऐसे पौधों को शामिल किया गया है, जिन पर किसी सदस्य देश में स्थानीय स्तर पर व्यवसायिक शोषण के कारण विलुप्त होने का खतरा बना हुआ है। अतः ऐसे पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए मूल देश से आयात परमिट या मूल स्थान का प्रमाणपत्र (सर्टिफिकेट ऑफ ऑरिजिन) प्राप्त करना अनिवार्य होता है। इस समूह में अभी पौधों की कुल 119 जातियां एवं 1 उपजाति शामिल है।

साइटिस अनुज्ञापन (लाइसेंसिंग) प्रक्रिया– साइटिस के विभिन्न परिशिष्टों में सूचीबद्ध पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हेतु मूल देश के प्रबंधन प्राधिकरण से निर्यात अनुज्ञा (एक्सपोर्ट परमिट) लेना आवश्यक होता है। लेकिन परिशिष्ट–I में सूचीबद्ध पौधों के लिए आयात अनुज्ञा (इम्पोर्ट परमिट) भी अनिवार्य है जबकि परिशिष्ट–II में सूचीबद्ध पौधों के लिए यह वैकल्पिक होता है।

मूल स्थान का प्रमाणपत्र (सर्टिफिकेट ऑफ ऑरिजिन) – परिशिष्ट III सूचीबद्ध पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए निर्यात अनुज्ञा की आवश्यकता तब पड़ती है, जब इसका निर्यात किसी ऐसे देश से किया जाता है जहाँ इसे सूचीबद्ध किया गया है। लेकिन जब इसका निर्यात किसी ऐसे देश से किया जा रहा हो, जहाँ यह सूचीबद्ध नहीं है तो ऐसी स्थिति में उन पौधों के मूल स्थान (देश) से एक प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है, जिसमें इस बात को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया हो कि उक्त पौधों को निर्यात करने वाले देश ने कानूनी रूप से समस्त प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद इन्हें प्राप्त किया है। परिशिष्ट–III में वर्णित पौधों के निर्यात हेतु किसी गैर हानि बयान की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रवतन (इन्फोर्समेन्ट) – साइटिस में सूचीबद्ध पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित विभिन्न कानूनी प्रावधानों का प्रवर्तन सदस्य देशों की सीमा शुल्क एजेंसियों के अलावा वहाँ की पुलिस, प्रबंधन प्राधिकरण एवं साइटिस सचिवालय द्वारा किया जाता है। भारत में इन प्रावधानों का अनुपालन, निर्यात–आयात सम्बन्धी नियंत्रण आदेश एवं सीमा शुल्क अधिनियम–1962 एवं वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अंतर्गत राज्य के मुख्य वन्य जीव संरक्षक (वार्डन) के द्वारा किया जाता है। राजकीय खुफिया निदेशालय (डायरेक्टोरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलिजेंस), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, राज्य एवं केंद्र सरकार की पुलिस, वन विभाग एवं तटरक्षकों इत्यादि के सम्मिलित सहयोग से सीमा पार से होने वाले अवैध व्यापार को नियंत्रित किया जाता है।

साइटिस के अंतर्गत आने वाले कुछ महत्वपूर्ण पौधों के समूह – साइटिस के अर्न्तगत विभिन्न प्रावधानों में सूचीबद्ध सभी पौधें, चाहे वो जीवित हो या मृत, एवं उनके सभी भागों जैसे पत्तियाँ, बीज, कलमों और व्युत्पादों पर लागू होता है। पादपालयो में संरक्षित किये गए सूचीबद्ध सभी पौधों के लिए भी यह लागू है। लेकिन वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु पादपालयों में संरक्षित पौधों के लेन–देन में कुछ विशेष अवस्था में छूट का प्रावधान है।

ऑर्किड्स–ऑर्किड्स समूह की लगभग सभी जातियां साइटिस विभिन्न परिशिष्टों (मुख्यतः परिशिष्ट–II, कुछ परिशिष्ट–I में) में शामिल हैं। पूरी दुनिया में ऑर्किड्स की लगभग 18,500 जातियाँ एवं भारत में लगभग 1300 जातियाँ पाई जाती हैं।

सरस यूफोर्बिया (सक्कुलेंट यूफोर्बिया)– पादप जगत में यूफोर्बिया वंश की लगभग 1,836 जातियाँ है जो अपने आकार, रंग, आवास इत्यादि में काफी विविधता दिखाती है। साइटिस के प्रावधानों के अंतर्गत इनमें से केवल 700 सरस यूफोर्बिया, जिसमें भारत में लगभग 21 जातियाँ पायी जाती हैं, को शामिल किया गया है। इनकी मात्र 10 बौनी मैडागास्कॅन जातियों, जिन्हें विशेष सुरक्षा हेतु परिशिष्ट–I में रखा गया है, को छोड़कर लगभग सभी जातियों को परिशिष्ट–II में सूचीबद्ध किया गया है। दक्षिण अफ्रीका एवं मेडागास्कर बागवानी उद्योग हेतु इनके जंगली जातियों का मुख्य निर्यातक देश हैं।

साईकेंड्स–साईकेंड्स आदिम पादप समूहों में से एक हैं एवं इनके अधिकांश जातियों को साइटिस परिशिष्ट II में डाला गया है, लेकिन इस समूह के 3 वंश एवं कुछ जातियों को साइटिस परिशिष्ट–I में भी डाला गया है। भारत में साईकस की कुल 7 जातियाँ विद्यमान हैं।

वृक्ष पर्णांग (ट्री फर्न)– इस समूह के अधिकांश पौधे मुख्यतः अमेरिका, दक्षिण–पूर्व एशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड एवं अफ्रीका में पायी जाते हैं। साइटिस परिशिष्ट में केवल 3 वंश जैसे *डिक्सोनिआ, सायथिआ* एवं *सिबोटियम* की ही कुछ जातियों को शामिल किया गया है। *सायथिआ* की सभी जातियां एवं *डिक्सोनिआ* की कुछ अमेरिकन जातियों को साइटिस परिशिष्ट II में शामिल किया गया है। भारत में सायथिआ की कुल 13 जातियाँ पायी जाती है।

इमारती लकड़ियाँ – साइटिस के विभिन्न परिशिष्टों में इमारती काष्ठ की लगभग 350 जातियों को सूचीबद्ध किया गया है। इनमें से 85 जातियां परिशिष्ट–II में एवं लगभग 221 जातियाँ परिशिष्ट–III में शामिल हैं।

साइटिस परिशिष्ट में सूचीबद्ध प्रमुख भारतीय पौधे –

परिशिष्ट I– पफियोपेडियम–ओर्किडेसी कुल (इसकी 9 जातियां शामिल हैं जैसे–*पफियोपेडियम चार्ल्सवर्थी, प. ड्रुरई, प. फेरियनम, प. हरसुटीसिमम, प. इंसिग्ने, प. स्पाइसेरियनम, प. वेणुस्टम, प. विल्लोसम एवं प. वार्डिये*) *रेनेन्थेरा इम्सकूटियाना, सौसुरिया कॉस्टस, साईकस बेडोमेई* एवं *नेपेन्थस खासीयाना* ।

परिशिष्ट II– *रावल्फिआ सर्पेन्टाइना, सिनोपोडोफिलम हेक्सांड्रम, सायथिऐसी* कुल की आल्सोफिला (8 जातियां) एवं *स्फेरोप्टेरिस* (6 जातियां), साईकेसी कुल की *साईकस* (8 जातियां), *डायोस्कोरिया डेल्टॉइडिया, सरस यूफोर्बिया* वंश (21 जातियां), *टेरोकार्पस संटालिनस, ऑर्किडेसी* कुल की लगभग 1309 जातियां, *टैक्सस वल्लिचियाना, एक्युलेरिया खासीयाना, एक्युलेरिया मलसेंसिस, गोनोस्टिलस मैक्रोफिलस, गिरीनोप्स वल्ला* एवं *नार्डोस्टाकिस जटामान्सी* ।

परिशिष्ट III–*निटम मोंटानम, मैग्नोलिया होगसोनियै, पोडोकार्पस नेरिफोलियम* एवं *टेट्रासेन्ट्रोन साइनेन्स* ।

निष्कर्ष – हम जानते हैं कि सदियों से जंगली वनस्पतियाँ सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में परंपरागत स्वास्थ्य सेवाओं जैसे आयुर्वेद सिद्ध, यूनानी, चाइनीज, तिब्बती चिकित्सा पद्धति इत्यादि को एक आधार प्रदान करती है। कुछ रसायन जैसे रेसेरपिन (*रावल्फिआ सर्पेन्टाइना*), पसलीटाक्से (*टैक्सस वैलीचियाना*) एवं जटामान्सी (*नार्डोस्टाकिस ग्रैन्डिफ्लोरा*) के तेल इत्यादि ऐसे अनेक पादप उत्पाद हैं, जो हजारों साल पहले से मानव समुदाय द्वारा उपयोग में लाये जा रहे हैं।

इस बात का निर्धारण करना कि कौन से ऐसे पौधे है जिनका अस्तित्व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण खतरे में है, अपने आप में एक कठिन चुनौती है, क्योंकि इन पौधों के बारे में विस्तृत जानकारी तथा इनके प्रबंधन एवं व्यापार के कारण पड़ने वाले प्रभाव पर गहन अनुसन्धान की आवश्यकता होती है। पूरी दुनिया में आज लगभग सात बिलियन लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपड़े, मकान, औषधियों इत्यादि के लिए पेड़–पौधों सहित जैव विविधता के विभिन्न अवयवों का उपभोग करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साइटिस के साथ –साथ जैव विविधता सम्मेलन (सी.बी.डी), जो लगभग पिछले दो दशकों से वैश्विक स्तर पर जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, की ओर भी बढ़ गई है ताकि स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आम जनमानस को जागरूक करके एवं इनके अवैध व्यापार को नियंत्रित प्राकृतिक जैव–विविधता प्रणालियों का सतत उपयोग मानव समुदाय के लिए किया जा सके।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 110-111(2014)

हरित अर्थव्यवस्था और भारत

बी. एस. खोलिया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आज के वैज्ञानिक युग में नित नई खोजों के साथ जहाँ एक ओर औद्योगीकरण अपने चरम की ओर अग्रसर है, वहीं प्रकृति का दोहन व पर्यावरण प्रदूषण भी रिकार्ड तोड़ रहा है। विकसित व विकासशील देशों में एक होड़ सी लगी है और पिछड़े अल्पविकसित देश और अधिक गरीब होते जा रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व में मानव सभ्यता आज कई संकटों से जूझ रही है जैसे जलवायु परिवर्तन, खाद्य समस्या, प्राकृतिक आपदा, वनाग्नि, प्रदूषण, शुद्ध जल का अभाव, अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, रासायनिक व नाभिकीय प्रदूषण, अकाल, भुखमरी, महामारी, संक्रामक रोग, आर्थिक संकट आदि। इन सभी समस्याओं के पीछे बुद्धिजीवी तथाकथित विकास को दोषी मान रहे हैं तथा उन्होंने विकास बनाम पर्यावरण का निराधार नारा दे डाला है, और विकास व पर्यावरण को एक दूसरे से अलग कर दिया है, जबकि वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। आवश्यकता है उचित सोच व एक कुशल प्रबंधन की जिसमें विश्व के आर्थिक विकास के साथ पृथ्वी पर पारिस्थिकीय प्रणालियों के संरक्षण व सुरक्षा की गारंटी भी समावेशित हो, अतः विकास व पर्यावरण के कुशल प्रबंधन के लिए हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) की अवधारणा का जन्म हुआ है ।

हरित अर्थव्यवस्था मानव विकास व भलाई के लिए प्रतिबद्ध होते हुए भी प्राकृतिक प्रदूषण व क्षय को रोकती है अर्थात यह अल्प कार्बन, संसाधन कुशल व सामाजिक समावेशी वाली अर्थव्यवस्था है, जिसमें आय व रोजगार में वृद्धि हेतु ऐसे निवेश हैं जो कार्बन उत्सर्जन व पर्यावरण प्रदूषण को कम करते हैं, ऊर्जा व संसाधनों की दक्षता को बढ़ाते हैं एवं जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी प्रणाली सेवाओं के क्षय को रोकते हैं तथा जहाँ आवश्यक हो दयनीय आर्थिक संपदाओं व सार्वजनिक लाभ के स्रोतों जैसे पारिस्थिकीय पूंजी का पुर्ननिर्माण (Restoration) भी किया जाता है। हरित अर्थव्यवस्था व ग्रीन जी०डी०पी० के मापन हेतु कई संगठन विभिन्न तरीके अपनाते हैं, इसमें मुख्य संकेतकों (key indicators) को ध्यान में रखने के साथ ही कई कारकों पर भी चर्चा होती है जैसे आर्थिक प्रगति, अच्छा रहन–सहन, अच्छे निवेश, उत्पादन, रोजगार, संसाधनों का उचित उपयोग, प्रदूषण नियंत्रण, ऊर्जा व जल का उचित उपयोग आदि।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम एवं अन्य कई संगठनों ने हरित अर्थव्यवस्था के अंर्तगत निम्न 6 बिन्दुओं पर ध्यान दिया है।

1. अक्षय ऊर्जा (सौर, पवन, भूतापीय, सामुद्रिक, बायोगैस आदि)
2. ग्रीन तकनीकी (ऊर्जा, जल, व अन्य संसाधनों का कुशल उपयोग जिसमें कम लागत पर अधिक लाभ हो व प्रदूषण भी कम हो)
3. स्वच्छ परिवहन (वैकल्पिक ईंधन, सार्वजनिक परिवहन, प्रदूषण मुक्त हाइब्रिड व इलैक्ट्रिक वाहन आदि को प्रोत्साहन)
4. उचित जल प्रबंधन (वर्षा जल संचय व जल की गुणवत्ता में सुधार, भू–जल स्तर में वृद्धि के प्रयास, नदीयों का संरक्षण)
5. अपशिष्ठ प्रबंधन व अपशिष्ठ का पुर्नचक्रण
6. भू– प्रबंधन (जैविक कृषि, वास संरक्षण व बहाली, सामाजिक वानिकी, पुनर्वनीकरण, मृदा संरक्षण व स्थिरीकरण, इको टूरिज्म आदि)

हरित अर्थव्यवस्था के अंर्तगत टिकाऊ पर्यावरण, सामाजिक न्याय व स्थानीयता का विशेष महत्व है–चूंकि पृथ्वी में संसाधन सीमित हैं, और दोहन में निरंतर बढ़ोत्तरी हो रही है, अतः टिकाऊ विकास हेतु ऐसी आर्थिक प्रणाली का सृजन हो जो इस समस्या का समाधान निकाल सके। अतः हमारे संसाधन भी बने रहें और आर्थिक विकास में भी निरंतर बढ़ोत्तरी हो तथा पारिस्थितिकीय प्रणालियों की अखण्डता भी बनी रहे, प्रदूषण भी न हो । हरित अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों की साथ–साथ सांस्कृतिक व मानवीय मूल्यों का संरक्षण भी आवश्यक है जिससे समाजिक स्थायित्व व न्याय बना रहे। अतः ऐसी जीवंत आर्थिक प्रणाली की आवश्यकता है, जो सभी को एक मर्यादित जीवन स्तर व सामाजिक आर्थिक विकास की ओर अग्रसर करे। इस बात पर दो राय नहीं कि प्रत्येक देश व समाज की अपनी समस्याएं होती हैं व उनका समाधान भी स्थानीय ही होता है। अतः हरित अर्थव्यवस्था के अंर्तगत ऐसी आर्थिक प्रणाली विकसित की जाए जो स्थानीय लोगों के लिए उनके हितों के सापेक्ष स्थानीय संसाधनों पर आधारित हो। स्थानीयता के आधार पर विकसित, विकासशील व अविकसित देशों की अपनी अलग–अलग आवश्यकतायें होती हैं व उनके आकार भौगोलिक स्थिति, जी०डी०पी०, आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए हरित अर्थव्यवस्था की नीति अलग अलग हो सकती है, पर इसके मुख्य

सिद्धान्त जैसे– पर्यावरण संरक्षण, सवंर्द्धित सामाजिक व आर्थिक विकास, सामाजिक समानता आदि में कोई भिन्नता नहीं होती। अतः संयुक्त राष्ट्र द्वारा संचालित यू०एन०ई०पी० ने ग्रीन इकोनोमी के तहत तीन गतिविधियों को सम्मिलित किया है।

1. ग्रीन इकोनोमी रिपोर्ट व शोध सामग्री पेश करना जो इन क्षेत्रों में निवेश में वृद्धि के लिए प्रोत्साहित करे।
2. ग्रीन इकोनोमी के लिए देशों को सलाहकार सेवायें प्रदान करना।
3. ग्रीन इकोनोमी की पहल में क्रियान्वयन, अनुसंधान, सरकारी व गैर सरकारी संगठन, व्यवसायियों, निवेशकों व संयुक्त राष्ट्र के भागीदारों के बीच सामंजस्य स्थापित करना।

हरित अर्थव्यवस्था पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक विकास व आर्थिक विकास के लिए तो प्रतिबद्ध है ही साथ ही यह एक सतत् विकास की प्रक्रिया है न कि गंतव्य की प्राप्ति, क्योंकि सच्चा विकास वही है जो वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भी भावी पीढ़ी की आवश्यकता की पूर्ति के साथ समझौता ना करे। हरित अर्थव्यवस्था में उद्योगों से निकले कचरे को निष्क्रियग्राही नहीं अपितु आर्थिक उत्पादन व समृद्धि का कारक माना गया है जिससे पुनः अर्थव्यवस्था को संबल मिले। अतः हरित अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन व गरीबी उन्मूलन की अधिक संभावनाएं हैं। आर्गेनिक कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, वनीकरण, ऊर्जा दक्षता के अनुरूप भवन निर्माण, अक्षय ऊर्जा, सार्वजनिक परिवहन, रिसाइक्लींग आदि ऐसे उदाहरण हैं जो स्थाई स्तर पर अपनाए जा सकते हैं। वैश्विक स्तर पर ग्लोबल कार्बन इकोनोमी को भी हरित अर्थव्यवस्था व हरित संसाधनों से ही मापा जाता है साथ ही कार्बन ट्रेडिंग, सब्सिडी व पर्यावरण उत्पादों पर शुल्क का निर्धारण भी हरित अर्थव्यवस्था से ही होता है।

भारत और हरित अर्थव्यवस्था – भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक आबादी वाला देश है, विश्व में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में देश का तीसरा स्थान है। हम लगभग 5.5 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं, परन्तु हमारी अर्थव्यवस्था 7–8 प्रतिशत की दर से वृद्धि कर रही है और हमने 10 प्रतिशत अर्थव्यवस्था वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस वृद्धि दर को हासिल करने के लिए हरित अर्थव्यवस्था के लक्ष्यों को हासिल करना चुनौतीपूर्ण प्रयास है। परन्तु हमें यह विश्वास है कि हम अपने परंपरागत ज्ञान, वैज्ञानिकों व इंजीनियरों द्वारा किए गए अनुसंधान के माध्यम से इस लक्ष्य को हासिल कर लेंगे। वैज्ञानिकों व इंजीनियरों की संख्या के मामले में भारत विश्व का तीसरा बड़ा देश है। पिछले दशकों में हमने कई उपलब्धियाँ हासिल की हैं जैसे हमने सूचना प्रौद्योगिकी व संचार के क्षेत्र में आशानुरूप वृद्धि की है, वैश्विक बाजार में भी हम अपनी विश्वसनीयता को कायम कर चुके हैं। पिछले दशकों में ग्रीन इनोवेशन के क्षेत्र में भी कई उपलब्धियां हासिल कर चुके हैं। अक्षय ऊर्जा निवेश में हम विश्व में तीसरे स्थान पर हैं तथा अभी भी हमारे पास इसकी अपार संभावनाएं हैं। हमारे देश में उद्यम व पूंजी के प्रवाह में भी बढ़ोत्तरी हो रही है।

यदि भारत अपनी हरित अर्थव्यवस्था की क्षमता का सही आंकलन कर इस्तेमाल करता है तो न केवल स्थाई व स्वच्छ पर्यावरण को बढ़ावा मिलेगा वरन् कई पीढ़ियों के लिए रोजगार का भी सृजन होगा । अभी भी भारत में दुनियाँ के कई देशों की तुलना में अधिक वन हैं, इसलिए हम अल्पकार्बन अर्थव्यवस्था सृजित करने की अद्वितीय स्थिति में हैं। हम अपने को हरित अर्थव्यवस्था के संक्रमण से नहीं रोक सकते। यदि भारत की आर्थिक गतिविधियां मौजूदा तरीके से चलती रही तो हमारे सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होगी जिसके लिये हमें अपनी आर्थिक नीतियों में भी बदलाव लाना पड़ेगा। वैसे भी आज उपभोक्ता व कर्मी पर्यावरण मुद्दों के प्रति अधिक जागरूक हैं साथ ही उद्यमी व निवेशक भी कार्बन व पर्यावरण प्रतिकूल गतिविधियों से जुडे. वित्तीय और व्यावसायिक जोखिमों के प्रति जागरूक हो रहे हैं।

ग्रीन इकोनोमी की दिशा में हाल के वर्षों में हमने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, जैसे– सूचना का अधिनियम 2005, नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल एक्ट 2010 के माध्यम से राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की स्थापना, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन, राष्ट्रीय क्लाइमेट चेन्ज एक्सन प्लान जिसके अंर्तगत सौर ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, सतत् कृषि आदि प्रमुख हैं। इनके बावजूद अभी भी भारत की लगभग 50 प्रतिशत आबादी बिजली की पहुंच से बाहर है। पर्याप्त पेय जल का अभाव है, हमारी कृषि मानसून पर आधारित है जिसे ढांचागत सुविधाओं और सिंचाई के साधनों की आवश्यकता है। इन समस्याओं से निजात के लिए ठोस कदम तो उठाने नितांत आवश्यक हैं क्योंकि समंदर के तट पर झांकने वालों को मोती नहीं मिलता अगर मोती पाना है तो गहराई तक गोता तो लगाना ही पड़ेगा, इसीलिए कुछ जोखिम तो उठाने के साथ ही पर्यावरण के प्रति भी जागरूक रहना होगा क्योंकि –

"पर्यावरण हमारे पुरखों की जागीर नहीं अपितु हमारे वंशजों की धरोहर है– महात्मा गांधी"

वनस्पति वाणी अंक 23 : 112-114(2014)

जैव–विविधता एवं जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र

विनीत कुमार रावत, पी. सत्यनारायण एवं आर. पी. सिंह[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर
[1]पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन, भोपाल

दुनिया के 12 जैव विविधता सम्पन्न राष्ट्रों (विश्व की 60 प्रतिशत से अधिक जैव विविधता इन देशों में ही समाहित हैं) में भारत का भी स्थान है, अतः जैव विविधता का महत्व एवं संरक्षण हमारे लिए अति आवश्यक है। किसी क्षेत्र में पायी जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव–जन्तुओं एवं पादपों की जातियों की बहुलता में जीवधारियों की भिन्नता एवं विविधता को ही जैव विविधता कहते हैं। जैव–विविधता वस्तुतः अतीत के करोड़ों वर्षों के दौरान अनवरत सक्रिय रहने वाली विकास की जैविक प्रक्रिया की देन है। जैव विविधता जीवन का आधार है एवं यही पर्यावरण में समय के साथ धीरे एवं तेजी से होने वाले परिवर्तनों के विरूद्ध लड़ने के लिये जैविक पदार्थ उपलब्ध कराने में सक्षम होती है। जैव विविधता की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुये वर्ष 2010 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष घोषित किया था। उष्ण कटिबंधीय वन इस कथन के मुख्य उदाहरण है।

जैव विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध कीट वैज्ञानिक विल्सन ने 1986 में जैविक विविधता पर अमेरिकन फोरम के लिये प्रस्तुत प्रतिवेदन में किया, तभी से यह शब्द एक संकल्पना के रूप में जैव वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, राजनीतिज्ञों आदि द्वारा विस्तृत रूप से अपनाया गया।

जैव–विविधता के तीन महत्वपूर्ण स्तर हैं – आनुवांशिक विविधता, जातिय विविधता एवं पारिस्थितिकीय विविधता।

आनुवांशिक विविधता – किसी भी लक्षण में उपस्थित विविधता का वह भाग, जो आनुवांशिक कारणों से उत्पन्न होता है। आनुवांशिक विविधता (जेनेटिक डायवर्सिटी) कहलाती है। जिसका जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है।

जातिय विविधता – जीवित प्राणियों में विविधता विद्यमान है जिसे जातिय विविधता (स्पीशिज डायवर्सिटी) कहा जाता है। भू–तल पर जातिय विविधता समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में विविधता अधिक तथा कुछ में कम है। भूमध्य रेखीय प्रदेश में जाति विविधता अन्य भोगौलिक प्रदेशों की अपेक्षा अधिक है। भारत का मानसूनी प्रदेश जातिय विविधता की दृष्टि से समृद्ध है। बर्फाच्छादित तथा मरूभूमि प्रदेश जैव–विविधता की दृष्टि से अत्यन्त निर्बल है। एक ही वंश के पादपों, जीवों की भिन्न भिन्न जातियाँ पाई जाती हैं।

पारिस्थितिकी विविधता – प्राकृतिक वास, पारिस्थितिकीय प्रणाली के प्रकार, प्रक्रियाओं के मध्य अन्तर आदि को पारिस्थिकीय विविधता (इकोसिस्टम डायवर्सिटी) के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक पारिस्थिकीय प्रणाली में ऊर्जा प्रवाह एवं जल चक्र की पृथक–पृथक पद्धतियाँ होती है। फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्र में भिन्न–भिन्न जैव विविधता उत्पन्न होती है।

भूमण्डलीय जैव-विविधता– एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के बाद से जन्तु, वनस्पतियों व अन्य सूक्ष्म जीवों की लगभग 500 मिलियन जातियाँ विकसित हो चुकी हैं। भारत का भौगोलिक क्षेत्र 32 मिलियन हेक्टेयर है, अपने विस्तृत अक्षांशीय फैलाव, तापमान, ऊँचाई व जलवायु की भिन्नता के कारण विश्व के 12 जैव विविधता वाले देशों (ब्राजील, कोलंबिया, इक्वाडोर, मेक्सिको, पेरू, भारत, मेडागास्कर, जायरे, चीन, इण्डोनेशिया, मलेशिया व आस्ट्रेलिया) की श्रेणी में आता है, इन्हीं देशों में विश्व की जैव विविधता का 60–70 प्रतिशत अंश विद्यमान है। इन देशों में आस्ट्रेलिया ही अकेला विकसित राष्ट्र है तथा अन्य 11 देश विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं। जहाँ पर आर्थिक विकास हेतु वन्य भू–भागों, वनों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव है। इसी कारण पर्यावरणीय व पारिस्थतिकीय प्राथमिकतायें इस विकास में तुलनात्मक रूप से पिछड़ जाती हैं। भारत विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल का वरण करते हुये भी वैश्विक जैव विविधता के 8–11 प्रतिशत अंश को समाहित करता है। मेयर (1990) में स्थानीय स्तर पर जातियों के अपवादात्मक संकेन्द्रण की प्रमुखता के आधार पर विश्व भर में 12 हॉटस्पॉट (तप्तस्थल) को चिन्हित किया है, तथा इनमें 2 हाटस्पाट पूर्वी हिमालय व पश्चिमी घाट भारत में स्थित है। वर्तमान में यह संख्या बढ़कर 25 तक पहुँच गयी है, यही हॉटस्पॉट क्षेत्र विश्व की अधिकांश फसलों के उद्गम क्षेत्र भी हैं। जैव विविधता को विश्व स्तर पर निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है –

अत्यधिक जैव विविधता वाले क्षेत्र में उष्ण कटिबंध के स्थलीय एवं जलीय भाग, प्रवाल भित्ति क्षेत्र तथा आर्द्र भूमि जैव–विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जैव विविधता की दृष्टि से सबसे समृद्ध होते हैं। इसे जैव विविधता का भण्डार कहा जाता है। यह

विश्व के 13 प्रतिशत भू–भाग पर फैले हुये हैं एवं संसार की 50 प्रतिशत से अधिक जातियॉ इन वनों में विद्यमान है। प्रवाल भित्तियॉ (Coral Reefs) भी इसी श्रेणी में आती हैं। इन्हें समुद्रों के वर्षा वन कहा जाता है। विश्व की सबसे बड़ी प्रवाल भित्ति आस्ट्रेलिया में है। पूर्वी हिन्द महासागर तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर का संक्रमण क्षेत्र की प्रवाल भित्तियों से समृद्ध है। वर्तमान समय में लगभग 109 देशों में प्रवाल भित्तियॉ पायी जाती हैं, लेकिन आज 93 देशों की प्रवाल भित्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं। आर्द्र भूमि भी जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध हैं। सुन्दर वन विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव है, जिसमें सुन्दरी वृक्षों की अधिकता है। अधिक जैव विविधता वाला क्षेत्रों में इन पश्चिमी यूरोप, मानसूनी प्रदेश एवं घास के मैदान जैसे प्रेयरी, स्टेपी, पम्पास, वेल्ड, डाउन्स आदि प्रमुख हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर का सारगेसन नामक विशेष प्रजाति की समुद्री घास के लिये प्रसिद्ध है। मानसूनी प्रदेश में भारी वर्षा एवं छोटी शुष्क शीत ऋतु होती है। भारत के मालाबार तट एवं असम के अधिक वर्षो वाले क्षेत्र संघन जंगल है। कम जैव विविधता वाले क्षेत्रों में उपध्रुवीय एवं मरूस्थलीय क्षेत्र प्रमुख हैं। निम्न जैव विविधता वाला क्षेत्रों में उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव इनके महत्वपूर्ण उदाहरण है।

जैव विविधता परितंत्र में अपना विशेष योगदान देती हैं। विविधता पूर्ण जैविक समुदाय अपनी स्थिरिता को आसानी से कायम रखता है। जबकि कम जातियों वाला पारिस्थितिकी तंत्र स्थितर होता है। जैव विविधता आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पर्यावरण के अस्तित्व के लिये जैव विविधता का सुरक्षित रखना नितान्त आवश्यक है। किसी एक जाति के नष्ट हो जाने से सम्पूर्ण परिस्थितिकी तंत्र अस्थिर हो जाता है। जैव विविधता के ह्रास के कारणों में मुख्य है आवासों का विनाश– एशिया के उष्ण कटिबन्धीय देशों में 65 प्रतिशत वन्य जीवों के आवास नष्ट कर दिये गये हैं। जिनमें बांग्लादेश 97 प्रतिशत, हॉगकॉग 95 प्रतिशत, श्रीलंका–85 प्रतिशत एवं वियतनाम 80 प्रतिशत प्रमुख हैं। आवासों के बिखराव के कारण भी जैव विविधता में कम आने लगी है। वन्य जीवों का अवैध शिकार भी एक मुख्य कारण हैं। साथ ही प्रदूषण, बाहरी जातियों का प्रवेश एवं स्थानान्तरीय कृषि के कारण जैव विविधता का क्षय हुआ है। जैव विविधता को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ही जैव मंडल आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना की गई है।

जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र– राष्ट्रीय बायोस्फियर रिजर्व कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1986 में की गई। यूनेस्को के मानव व जैवमण्डल कार्यक्रम के अन्तर्गत जैवमंडल आरक्षित (बायोस्फियर रिजर्व) क्षेत्र पर विचार 1974 में शुरू किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक रूप से सम्पन्न पारिस्थितिकी तंत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्रों का उनके वास्तविक रूप मे संरक्षण करना है। अंर्तराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में यह कार्यक्रम इन क्षेत्रों में रहने वाले जनसमुदायों को पारिस्थितिकीय तंत्र का मूलभूत हिस्सा है, जो पौराणिक काल से प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुये रह रहे हैं। इस योजना में इन समुदायों के सामाजिक आर्थिक विकास के द्वारा वहां की पारिस्थितिकीय तंत्रो के संरक्षण को बढ़ावा देना है। जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र कार्यक्रम सम्पूर्ण मानव जाति के लाभ के लिए जैव विविधता एवं पारिस्थितिकीय तंत्रों के संरक्षण को बढ़ावा देता है।

भारत वर्ष में विभिन्न स्त्रोतों के अनुसार सम्मलित हैं – पाँच बायोम्स 1. उष्ण कटिबंधीय आर्द्र वन, 2. उष्णकटिबंधीय शुष्क या पर्णपाती वन (मानसून वनों सहित), 3. गर्म रेगिस्तान एवं अर्ध रेगिस्तान, 4. शंकुधारी वन एवं 5. अल्पाइन मीडो, दस जैव–भौगोलिक क्षेत्र : 1. ट्रांस हिमाालयन, 2. हिमालयन, 3. भारतीय रेगिस्तान, 4. अर्ध शुष्क, 5. पश्चिमी घाट, 6. दक्षिणी प्रायद्वीप, 7. गंगा का मैदान, 8. उत्तर पूर्वी भारत, 9. द्वीप समूह 10. समुद्र तट एवं छब्बीस जैव–भौगोलिक प्रक्षेत्र : 1. ट्रांस हिमालय– लद्दाख माउन्टेन्स 2. ट्रांस हिमालय– तिब्बत पठार 3. उत्तर –पश्चिम हिमालय 4. पश्चिम हिमालय 5. मध्य हिमालय 6. पूर्वी हिमालय 7. मरूस्थल – धार 8. मरूस्थल–कच्छ 9. अर्ध शुष्क– पंजाब का मैदान 10. अर्ध शुष्क– गुजरात राजपूताना 11. पश्चिमी घाट – मालाबार का मैदान 12. पश्चिमी घाट 13. डेक्कन पेनिनसुला – मध्य हाइलैण्ड 14. डेक्कन पेनिनसुला – छोटा नागपुर 15. डेक्कन पेनिनसुला – पूर्वी हाइलैण्ड 16. डेक्कन पेनिनसुला – मध्य पठार 17. डेक्कन पेनिनसुला 18. ऊपरी गंगा का मैदान 19. निचला गंगा का मैदान 20. तट – पश्चिमी तट 21. पूर्वी तट 22. तट – लक्ष्यद्वीप 23. ब्रहमपुत्र वैली 24. उत्तर पूर्व पहाड़ियाँ 25. अंडमानद्वीप 26. निकोबार द्वीप।इस पारिस्थितिकीय विभिन्नता के कारण ही भारत वर्ष को विश्व के मानचित्र पर कुल महाविविधिता मे से एक महाविविधिता वाले क्षेत्र के रूप में निरूपित किया गया है।

जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र (बायोस्फियर रिजर्व) की विशेषतायें– जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र बायोस्फियर रिजर्व प्राकृतिक बायोम्स का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्र होते हैं। बायोस्फियर रिजर्व जैव विविधता के अदभुत समुदायों का या अपवाद स्वरूप असामान्य प्राकृतिक विशिष्टता वाले क्षेत्रों का संरक्षण करते हैं। यह मान कर चलते हैं कि इन प्रतिनिधित्व वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक भू–दृश्यों, पारिस्थितिकीय तंत्रों एवं आनुवांशिक विविधता के अद्वितीय लक्षण भी मौजूद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए वैश्विक दुर्लभ जातियों की एक जनसंख्या, उनके प्रतिनिधित्व एवं अद्वितीयता वाले क्षेत्रों या दोनों ही विशेषतायें हो सकती हैं।

मापदंड–बायोस्फियर रिजर्व के स्थल के चयन के लिए निर्धारित मापदंड तय किये गये हैं जिनका सूक्ष्म वर्णन निम्नवत है।

प्राथमिक मापदंड–

- ऐसा स्थल, जो प्रभावशाली ढंग से संरक्षित हों एवं न्यूनतम बाधित केन्द्रीय क्षेत्र, जो प्रकृति के संरक्षण हेतु धरोहर के रूप में जाना जाता हो तथा प्राकृतिक संरक्षण हेतु शोध एवं प्रबंधन के स्वपोषी तरीके के प्रदर्शन एवं अनुसंधान के लिए अतिरिक्त भूमि और जल उपलब्ध हो।
- केन्द्रीय (कोर) क्षेत्र एक विशिष्ट जैव–भौगोलिक इकाई के रूप में हो एवं पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र हो, जिससे कि पारिस्थिति की तंत्र में समस्त अनुवर्ती स्तरों का प्रतिनिधित्व करने वाली जीवनक्षम जनसंख्या का पोषण हो सके।

द्वितीयक मापदंड–

- वे स्थल, जहाँ दुर्लभ या संकटापन्न जातियाँ पाई जाती हों।
- वे स्थल, जहाँ मृदा में विभिन्नता एवं सूक्ष्म वातावरणीय स्थितियों में विविधता हो, तथा जहाँ बायोटा की देशी किस्में हों।
- ऐसे संम्भावित स्थल, जहाँ पर्यावरण के मैत्रीपूर्ण उपयोग के लिए रहन–सहन की ग्रामीण पद्धति या पारंपरिक जनजाति के संरक्षण की संभावना हो।

बायोस्फियर रिजर्व की संरचना व परिकल्पना – जैव विविधता संरक्षण एवं प्रबन्धन विकास के संचालन के तारतम्य में बायोस्फियर रिजर्व को 3 अंर्त–समबद्ध क्षेत्रों में बॉटा गया है।

कोर जोन (केन्द्रीय क्षेत्र)– केन्द्रीय क्षेत्र प्रायः आर्थिक प्रजातियों के वन्य संबंधियों का संरक्षण करते हैं एवं महत्वपूर्ण अनुवांशिक भंडारों को निरूपित करते हैं। कोर क्षेत्र को बाहर के समस्त मानवीय दबावों से मुक्त रखा जाना चाहिए। कोर क्षेत्र को पूरी तरह बाधा रहित रखा जाता है। इसमें उच्च वर्ग के परभक्षियों सहित विभिन्न पादप एवं प्राणी प्रजातियों के लिए उपयुक्त निवास स्थान होना चाहिए एवं इनमें स्थानिक केन्द्र भी सम्मलित हो सकते हैं।

बफरजोन (मध्यवर्ती क्षेत्र)– इस क्षेत्र में उपयोग एवं गतिविधियों में पुनर्रचना, संसाधनों की महत्वता को बढ़ाने के लिए स्थल प्रदर्शन, सीमित मनोरंजन, पर्यटन, मत्स्य पालन एवं चराई की अनुमति दी गई है, सम्मिलित है, जिससे केन्द्रीय क्षेत्र पर इसका प्रभाव कम हो सके। इसमें शोध एवं शिक्षण गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है। मध्यवर्ती क्षेत्र, जो केन्द्रीय क्षेत्र से जुड़ा अथवा चारों तरफ रहता है, में उपयोग व गतिविधियॉ इस प्रकार संचालित की जाती है, जिससे केन्द्रीय क्षेत्र को सुरक्षित रखा जा सके।

ट्रान्जिसन जोन (परिवर्तनीय क्षेत्र)– इसमें आवास, कृषिभूमि, व्यवस्थित वन एवं गहन मनोरंजन के लिए एवं आर्थिक उपयोग की क्षेत्रीय विशेषताएँ शामिल रहती हैं। परिवर्तनीय क्षेत्र बायोस्फियर रिजर्व का सबसे बाहरी हिस्सा होता है। सामान्यतः इसकी सीमा निधारित नहीं की जाती एवं यह ऐसा सहयोगी क्षेत्र होता है, जहॉ संरक्षण ज्ञान एवं प्रबंधन कौशल के प्रयास किये जाते हैं,

बायोस्फियर रिजर्व, वन्य-जीव अभयारण्यों व राष्ट्रीय उद्यानों से अलग कैसे हैं– जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र में विभिन्न घटको–जैसे भू–दृश्यों, प्राकृतिक आवासों एवं जातियों एवं भू–वंशों के संरक्षण पर जोर दिया जाता है । इसमें समग्र विकासात्मक गतिविधियों पर ध्यान दिया जाता है एवं विकास व संरक्षण के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का समाधान किया जाता है। राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य अभयारण्य कार्यक्रम की तुलना में इसमें सहभागी संस्थाओं के वृहद रूप, विशेष कर स्थानीय लोगों की भागीदारी में वृद्धि एवं उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है। इसमें पारिस्थितिकीय तंत्र के संरचना तथा कार्य प्रणाली को समझने तथा मानवीय हस्तक्षेप के कारण होने वाले प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए शोध एवं पर्यवेक्षण को बढ़ावा देने का कार्य भी किया जाता है।

बायोस्फियर रिजर्व को नामित करने के लिए केन्द्र / राज्य सरकारों की पहल निर्धारित मापदण्ड के अनुरूप एक विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परियोजना प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। चिन्हित स्थलों को बायोस्फियर रिजर्व घोषित करने के पहले सम्बन्धित राज्य सरकारों की सहमति होना आवश्यक है। केन्द्र शासन द्वारा इन बायोस्फियर रिजर्व के प्रबन्धन एवं शोध गतिविधियों हेतु आवश्यक राशि अनुदान के रूप में मुहैया कराई जाती है।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 115-118(2014)

ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा : एक संकटापन्न, औषधीय एवं सजावटी शाक

गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा लैमिएसी कुल का सदस्य है और पूरे विश्व में इसकी 27 जातियाँ हैं, जो मुख्यतः पश्चिमी एवं दक्षिणी एशिया में पायी जाती हैं। *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* रॉयली एक्स बेन्थ भारत की एकमात्र ऐसी संकटापन्न, शाकीय जाति है, जो मुख्यतः उत्तर भारत के शिवालिक क्षेत्र में पायी जाती है। इस जाति को सर्वप्रथम 1977 में उत्तराखण्ड राज्य के मोहन्ड क्षेत्र, देहरादून, (तत्कालीन उत्तर प्रदेश) से प्रोफे. सी. आर. बाबू ने खोजा था और तब इस जाति को उत्तराखण्ड की स्थानीय जाति (Endemic Species) समझा जा रहा था, किन्तु बाद में इस जाति को अन्य राज्यों से भी खोजा गया । मोहन्ड क्षेत्र गुर्जर जनजाति का प्रवासीय स्थान है जिनके पालतू पशु साल के 6 माह यहाँ पर चराई करते हैं। अति अवैज्ञानिक चारण के कारण मोहन्ड क्षेत्र में इसकी संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गयी है। सन् 1997 में यह संख्या घट कर 25 पौधों तक पहुँच गयी थी, जो कि एक चिन्ता का विषय बन गया था। इस क्षेत्र में *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* की घटती हुयी संख्या, जो जाति के संकटापन्न होने का संकेत है, की गम्भीरता को समझते हुये उत्तरी–भारत के अन्य राज्यों में गहन सर्वेक्षण किया गया और 2003 में वर्मा एवं साथियों ने जम्मू राज्य के विभिन्न क्षेत्रों, सुन्दरवनी, तारा, सुकेतर से इस शाकीय जाति की पाँच और इसी प्रकार उनियाल एवं साथियों ने 2012 में 72 साल बाद दो जातियों को हिमाचल राज्य के कांगड़ा एवं ऊना से खोजा था। आँकड़ों से प्रदर्शित होता है कि वर्तमान में यह जाति उत्तर–भारत के कुल आठ स्थानों पर उपलब्ध है, जिनमें से अधिकतम पाँच स्थान जम्मू राज्य में, दो स्थान हिमाचल राज्य में और एक स्थान उत्तराखण्ड राज्य के शिवालिक क्षेत्र में है और कुल सभी स्थानों को मिलाकर वर्तमान में इस जाति के लगभग 3500 से 4000 पौधे हैं।

***ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* पर संभावित खतरे –** आज यह जाति प्रकृति में विलुप्त होने की कगार पर है, जिसके मुख्य कारण इसके कन्द/मूलाभास का औषधीय गुण, गुर्जर जनजाति द्वारा पशुओं में दूध की मात्रा बढ़ाने हेतु इस जाति की जड़ों को खोद कर पशुओं को खिलाना एवं जड़ों को पशुओं में मैसटाइटिस नामक रोग की रोकथाम हेतु प्रयोग किया जाना, आवासीय विघटन, पशुओं द्वारा चराई, बीज का कम मात्रा में उत्पादन एवं बीजों की क्षीण जीवन क्षमता, जाति का प्रकृति में छितरी हुयी होने के कारण जाति में अन्तः प्रजनन की दर बढ़ने से जाति का प्रकृति से ह्रास होना, फूलों को बीज विकसित होने से पहले उनकी सुन्दरता की वजह से तोड़ लिया जाना इत्यादि हैं। उनियाल एवं साथियों को हिमाचल प्रदेश में स्थानीय लोगों से बात करने पर यह भी पता चला है कि जिन स्थानों पर पहले यह जाति उगती थी, आज वह समस्त क्षेत्र विदेशी हमलावर जातियों, जैसे *लैण्टाना कैमारा* (लैन्टर्न) एवं *ऐजीरेटीना एडिनोफोरा* (काला बासिंगा) ने कब्जा रखा है, जो कि प्रकृति में इस जाति के संकुचन का एक संभावित कारण हो सकता है।

सक्रिय संघटक और उपयोग– यद्यपि *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* के सक्रिय संघटकों के अध्ययन का अभी तक कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु वंश ऐरीमोस्टैकिस की अन्य जातियों के सक्रिय संघटकों के अध्ययन से पता चलता है कि यह जाति भी अन्य जातियों की भाँति कई मानव उपयोगी रसायनों से परिपूर्ण है। जिनमें ग्लाइकोसाइडस, फलैवोनोइडस, टरपीन्स, ऐरीमोस्टैकिन इत्यादि हैं। ये सभी सक्रिय संघटक एन्टीबैक्टीरियल, एन्टीडिप्रैसेन्ट, एन्टीऑक्सीडैन्ट गुण युक्त हैं। इनका उपयोग मानसिक तनाव कम करने, प्रतिउपचायक, जीवाणु जनित रोगों की रोकथाम इत्यादि में किया जाता है। गुर्जर जनजाति इसके कन्द/मूलाभास को पालतू पशुओं में मैसटाइटिस की रोकथाम में प्रयोग करते हैं तथा पशुओं में दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए इसके कन्द/मूलाभास को काटकर खिलाते हैं।

ऋतुजैविकी (Phenology)– *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* एक–वर्षीय शाकीय जाति है और हर वर्ष बरसात के बाद भूमिगत कन्द/मूलाभास से नयी कलिकायें निकलनी प्रारम्भ हो जाती हैं और फरवरी माह तक पूर्ण कायिक पौधे तैयार हो जाते हैं। तत्पश्चात् मार्च माह में तने के ऊपरी सिरे से स्पाइक विकसित होने लगता है और इसी स्पाइक से मार्च माह के दूसरे सप्ताह से सुन्दर पीले रंग के फूल खिलने लगते हैं और माह के अन्त तक खिलते रहते हैं। इसके पश्चात अप्रैल एवं मई माह के प्रथम सप्ताह तक इसके बीज पूर्ण विकसित होकर झड़ने लगते हैं और इसी तरह यह शाकीय जाति हर वर्ष अपना जीवन चक्र पूरा करती है।

बीजों का अंकुरण– जैसा कि पूर्व में प्रकाशित साहित्य से पता चला है कि बीजों में अंकुरण की समस्या की वजह से यह जाति विलुप्त हो रही है। इसकी पुष्टि हेतु इसके बीजों को प्राकृतिक एवं नियंत्रित वातावरण में अंकुरित कराया गया। जिसमें यह पाया गया कि इस जाति के बीज

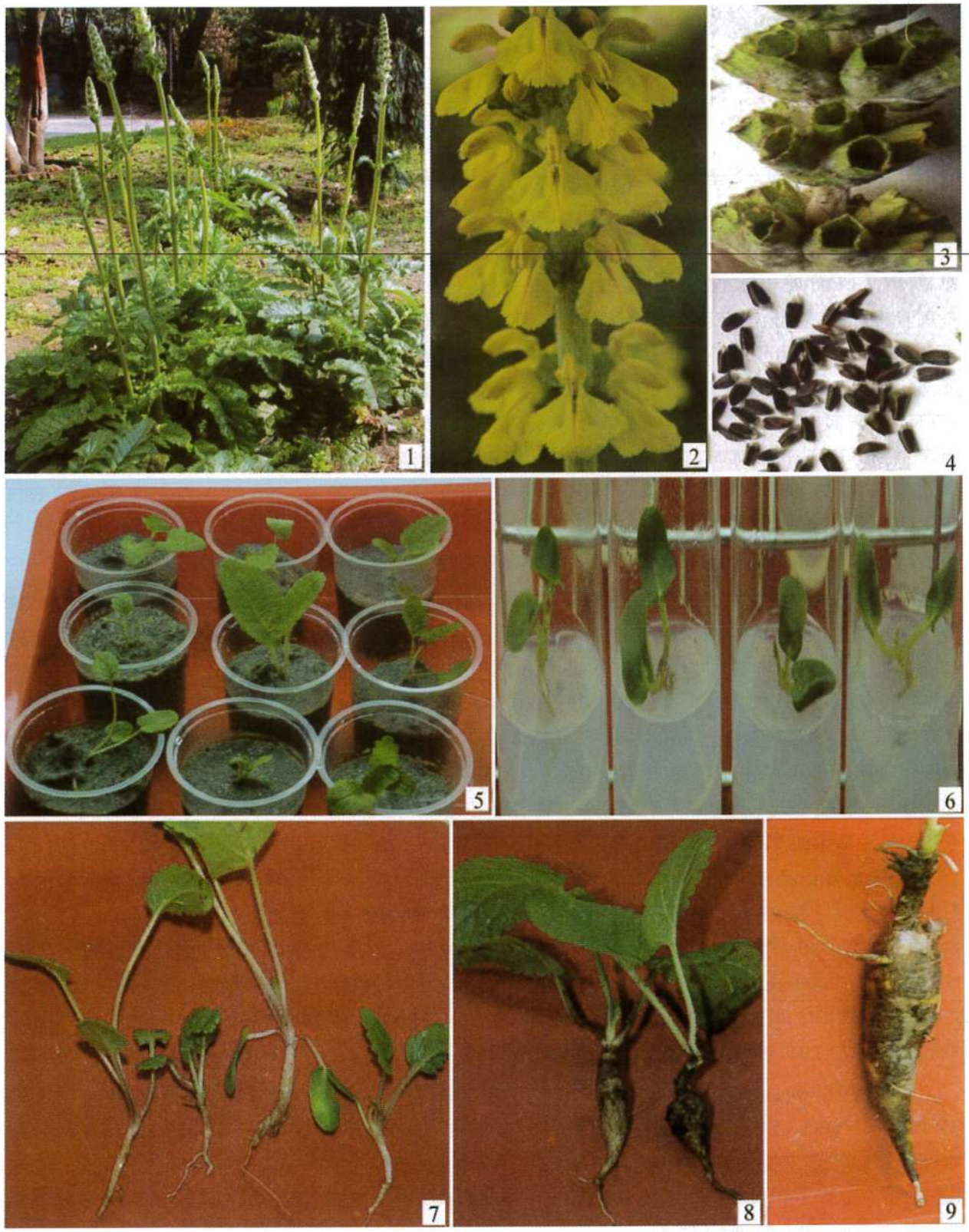

1. *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा*, मूल पौधा 2. *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* के सुन्दर फूल, 3. *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* के परिपक्व नटलेट, 4. परिपक्व बीज, 5. और 6. प्राकृतिक एवं नियंत्रित वातावरण में बीजों का अंकुरण, 7. बीजों के अंकुरण के पश्चात् विकसित पौधे, 8. किशोर कन्द/मूलाभास 9. पूर्ण विकसित कन्द/मूलाभास।

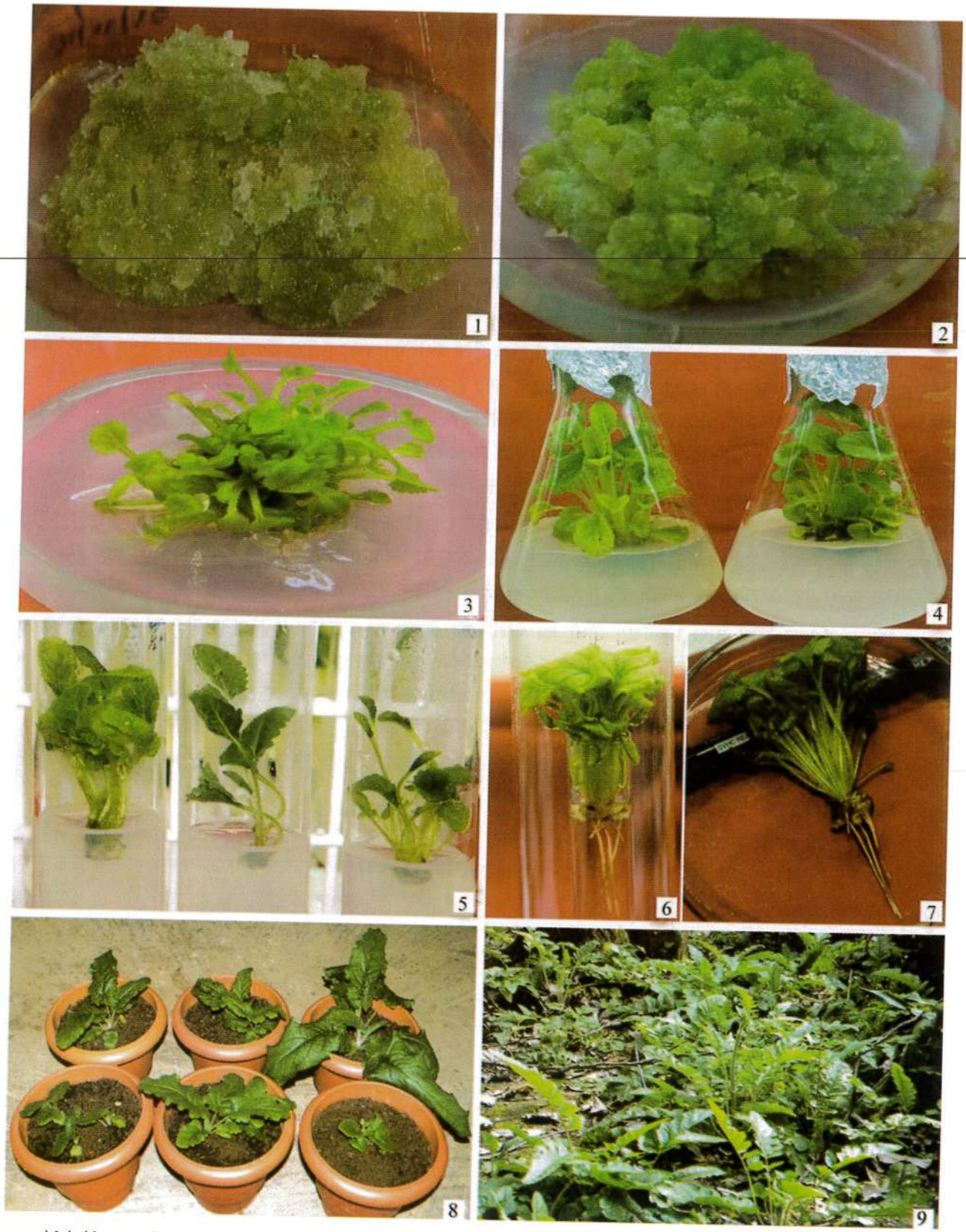

ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा रॉयली एक्स बेन्थ का पादप ऊतक संवर्धन : 1–2 पूर्ण विकसित किण, 3 और 4 तनों का विकास, 5, 6, और 7 जड़ों का विकास, 8–9 पौधों का वातावरण में अनुकूलन और वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरण।

दोनों ही स्थिति में अंकुरित हुये हैं किन्तु अंकुरण दर सामान्य से कम पायी गयी। इस अध्ययन में बीजों की जीवन क्षमता का परीक्षण टेट्राजोलियम क्लोराइड से करने पर पता चला कि अधिकतम बीजों के भ्रूण जीवित हैं।

ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा का पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण– *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* की घटती हुयी संख्या, इस पर मंडराते हुऐ खतरों एवं इसकी संकटापन्न स्थिति को ध्यान में रखते हुए, इस जाति को पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षित करके इसके अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयास किया गया है जो कि निम्नवत है–

किण प्रेरण (Callus Induction)– किण संवर्धों को 2, 4–डी और बेन्जोइल अमीनो प्यूरीन (बी.ए.पी.) से संपूरित किये गये एम.एस. माध्यम में नवजात पत्तियों के छोटे–छोटे (0.5 से०मी०) विभाज्योत्तक भागों को स्थापित किया जाता है। किण संवर्धों को स्थापित करने के करीब एक से दो माह बाद पूर्ण विकसित किण प्राप्त हो जाते हैं। किण के प्रचुर मात्रा में विकास के लिए टी.डी.जेड. एवं एन.ए.ए. पादप वृद्धि नियंत्रकों युक्त एम. एस. माध्यम में विकसित किया गया और अन्त में करीब एक माह बाद हरे रंग का कड़ी संरचना वाला पूर्ण विकसित किण प्राप्त हुआ।

तना प्रेरण (Shoot Induction)– *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* के स्वस्थ बीजों को विभिन्न रसायनों द्वारा जीवाणुरहित करके एम.एस. पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित कर देते हैं। कुछ समय पश्चात् जब बीज अंकुरित होने लगते हैं, तो नवजात तने के शीर्ष सिरे को काट कर बी.ए.पी. एवं एन.ए.ए. से संपूरित एम.एस. माध्यम में प्रतिस्थापित कर प्रेरित किया जाता है। विकसित तनों को 25 से 30 दिनों के बाद उपसंवर्धित किया जाता है और अन्त में एक तने के शीर्ष से करीब 20 से 25 पूर्ण विकसित तने प्राप्त होते हैं ।

मूल प्रेरण (Root Induction)–ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित तनों को जड़ों के विकास हेतु मूल प्रेरण माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है। मूल प्रेरण माध्यम विभिन्न ऑक्जिन जैसे आइ.बी.ए., आइ.ए.ए. एवं एन.ए.ए. की विभिन्न सान्द्रताओं से संपूरित किये गये विभिन्न लवणों युक्त एम.एस. पोषक माध्यम (पूर्ण, अर्द्व एवं चौथाई मात्रा) में विकसित तनों को प्रतिस्थापित किया जाता है। मूल प्रेरण के दौरान यह भी देखा गया है कि जड़ें ठोस माध्यम की अपेक्षा तरल माध्यम में अच्छी तरह से विकसित हो रही हैं और तरल माध्यम में जड़ों की संख्या एवं लम्बाई भी अधिक पायी गयी।

ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा विकसित पौधों का परिस्थिति अनुकूलन– पूर्ण रुप से विकसित पौधों को संवर्धन नलिका से निकालकर पहले भली–भॉति धुल लेते हैं और उसके उपरान्त उन्हें जीवाणु रहित वर्मीकुलाइट एवं मृदा से भरे गमलों में स्थानान्तरित किया जाता है। इन गमलों को शुरु में आर्द्रता बनाये रखने के लिए एक सप्ताह तक प्लास्टिक की पॉलीथीन से ढक कर रखते हैं। एक माह पश्चात इन पौधों को मृदा से भरे गमलों में हरित गृह में स्थानान्तरित किया जाता है। हौगलैण्ड विलयन की 1:10 सान्द्रता के घोल वाला पानी पौधों को हर तीन दिन बाद दिया जाता है। धीरे–धीरे यह पौधे हरित गृह के वातावरण में अपने आप को ढाल लेते हैं और अन्ततः इन पौधों को नर्सरी या वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं भावी संभावना– इस शाकीय जाति के संरक्षण के लिए ऊतक संवर्धन के साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके बीजों से इसकी पौध तैयार की जाये और राज्य वन विभाग को इसके यथावत संरक्षण के लिए तैयार किया जाये। साथ ही साथ इसके सुन्दर फूलों को सजावट के लिये प्रयुक्त किया जाना चाहिए। वस्तुतः *ऐरीमोस्टैकिस सुपर्बा* को संरक्षित करने के साथ ही इसके औषधीय गुणधर्मों पर विस्तारपूर्वक शोध करने की आवश्यकता है, ताकि प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर को मनुष्य जाति के लिये उपयोगी बनाया जा सके ।

ऐफ्लाटॉक्सिन : एक घातक कवक विष

राहुल कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

कवकों द्वारा खाद्य विषाक्तता (Food poisoning) की घटनायें सम्पूर्ण विश्व में घटित हो चुकी हैं, कवक अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कवक विष उत्पन्न करते हैं, जिन्हें 'माइकोटॉक्सिन' कहते हैं। इन 'माइकोटॉक्सिन' में 'ऐफ्लाटॉक्सिन' तीव्र जहर है, जिससे फेफड़े, वृक्क, आंत आदि में कैंसर जैसे भयानक एवं जानलेवा रोग हो सकते हैं, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने 30 पी.पी.बी. से अधिक मात्रा में ऐफ्लाटॉक्सिन की शरीर में उपस्थिति को विषाक्त घोषित किया है।

'माइकोटॉक्सिन' की उत्पत्ति का इतिहास करीब 5000 वर्ष पुराना है। विकासशील एवं कम विकसित देशों में विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों पर विभिन्न प्रकार के कवक विष ज्ञात किये जा चुके हैं। भारत एवं अन्य विकासशील देशों में कवक विष से खाद्य विषाक्तता की दुर्घटनायें हो चुकी हैं, जिसमें जानवरों एवं मनुष्यों की मृत्यु भी हुई है। इन कवक विषों को क्रमशः 'जूटॉक्सिक' (जो जानवरों हेतु विषाक्त होते हैं) व 'फाइटोटॉक्सिक' (जो पादपों हेतु विषाक्त होते है) की श्रेणी में विभाजित किया जाता है।

इन 'माइकोटॉक्सिन' में 'ऐफ्लाटॉक्सिन' नामक कवक विष सबसे तीव्र एवं विषैला है। यह मुख्यतः एस्परजिलस नामक कवक के द्वारा उत्पन्न होता है। मध्यकाल में यूरोप में 'सेंट ऐन्थेनीफायर' या 'अरगोटिज्म' के नाम से फैला रोग इसी 'ऐफ्लाटॉक्सिन' के कारण ही हुआ था, जिसमें *एस्परजिलस फ्लेक्स* नामक कवक के द्वारा संक्रमित खाद्य पदार्थों को खाने से कई जानवर मर गए थे। इसी प्रकार जापान में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् 'पेनिसीलियम' नामक कवक से संक्रमित खाद्य से सैकड़ों लोग बीमार हो गये थे। विभिन्न प्रकार के कवक विषों में से सर्वप्रथम खोज 'ऐफ्लाटॉक्सिन' की ही हुई थी, जो मुख्यतः *एस्परजिलस फ्लैक्स* तथा *एस्परजिलस पेरासाइटिकस* से उत्पन्न होता है। अब तक 18 से अधिक ऐफ्लाटॉक्सिन की खोज हो चुकी हैं, इनमें से मुख्यतः चार सामान्य खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं– ऐफ्लाटॉक्सिन बी–1, बी–2, जी–1 एवं जी–2 इसके अतिरिक्त, ऐफ्लाटॉक्सिन एम–1, एम–2 जानवरों के दूध में तथा ऐफ्लाटॉक्सिन पी–1 (यह ऐफ्लाटॉक्सिन बी–1 से संक्रमित खाद्य ग्रहण किए हुए) बंदर के मूत्र में पाया गया है।

विभिन्न देशों में ऐफ्लाटॉक्सिन सहन करने की सीमा ज्ञात की जा चुकी है। वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हो चुका है कि विभिन्न प्रकार के माइको टॉक्सिन की मात्रा धीरे–धीरे शरीर में जाती रहे तो एक निश्चित मात्रा के एकत्रित होने की दशा में मनुष्य/जानवर की मृत्यु भी हो सकती है जिसे 'लीथल–डोस' कहते हैं। ऐफ्लाटॉक्सिन उत्पन्न करने वाले कवकों के बीजाणु वायु में मुक्त रूप से बिखरे रहते हैं तथा किसी भी प्रकार के खाद्य को संक्रमित कर उनमें खाद्य विषाक्ता उत्पन्न कर सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में जहाँ खाद्य संग्रहण के सुरक्षित आरोग्य वैज्ञानिक तरीकों का अभाव होता है तथा गरीब लोगों में जिनके लिए पौष्टिक खाद्य दुष्कर होता है, इस विष कवक से ग्रसित होने के ज्यादा आसार रहते हैं।

अतः किसी प्रकार के कवक से संग्रहित वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए तथा उन्हें नष्ट कर देना चाहिए, जिससे जानवरों आदि में खाद्य विषाक्तता न होने पाए। ऐफ्लाटॉक्सिन नामक तीव्र जहर से बचने का एकमात्र उपाय उससे सुरक्षा ही है। एक बार इस विष के खाद्य पदार्थों में बन जाने पर उसे नष्ट करना ही एकमात्र उपाय है। इस बारे में ग्रामीण एवं गरीब तबके के लोगों को जानकारी देने एवं उससे बचाव के तरीके बताने हेतु प्रयास करने की भी आवश्यकता है, खाद्य संग्रहण के वैज्ञानिक तरीके अपनाकर एवं संक्रमित भोजन को नष्ट करना ही ऐफ्लाटॉक्सिन से बचने का उपाय है।

अंटार्कटिका : एक रोमांचक एवं अविस्मरणीय यात्रा

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,कोलकाता

बचपन में भूगोल में पढ़ा था कि अंटार्कटिका एवं आर्कटिक क्षेत्र हिमाच्छादित है, जहाँ जीवन बहुत कठिन है एवं वातावरणीय तापमान शून्य से नीचे रहता है। तब मैंने कभी नहीं सोचा था कि इस दुर्गम क्षेत्र की यात्रा कभी स्वयं कर पाऊंगी। जब मुझे अंटार्कटिका जाने के लिए परियोजना बनाने का अवसर मिला, उसी समय से मैं अंटार्कटिका की विशिष्टताओं में डूब गयी और जब मेरी परियोजना प्रथम चरण में चयनित हुई और मुझे उसके विस्तृत प्रस्तुतिकरण के लिए गोवा बुलाया गया तो मेरे मन में कहीं न कहीं विश्वास था कि अब मैं अंटार्कटिका पहुँच जाऊंगी। प्रस्तुतिकरण इतना आसान नहीं था, सैंकड़ो प्रतिभागियों के बीच में बैठे विद्वान विशेषज्ञों के मध्य जो हर परियोजना की विज्ञान की परकाष्ठा पर कस और परख कर प्रस्तुतकर्ता को पसीने छुड़वा देते थे। मेरे प्रस्तुतिकरण के बाद उन लोगों ने बहुत से प्रश्न किये जिनका मैंने अपने सामर्थ अनुसार संतोषजनक उत्तर दिया, उनका अन्तिम प्रश्न था कि आप क्यों नहीं एक ही वर्ग के शैवाल का अध्ययन करती है क्यों सभी वर्ग के शैवालों का अध्ययन करना चाहती हैं, तो मैंने उत्तर में कहा जब प्लवक जाल पानी में जायेगा तो मेरे लिये केवल एक ही वर्ग के सूक्ष्म शैवालों का संग्रह नहीं होगा, वरन् जल में उपस्थित सभी शैवाल उसमें आ जाएंगे। जब मेरा देश, देश की सरकार करोड़ों रुपये व्यय कर मुझे वहाँ जाने का सुवसर दे रही है, तो क्यों न मैं अपनी अत्यधिक क्षमताओं का उपयोग करके वहाँ उपलब्ध शैवालों की सभी वर्ग की जातियों का अध्ययन करुँ !

मैं प्रस्तुतिकरण करके वापस आ गई उसके तीन माह पश्चात् मेरी परियोजना की स्वीकृति के साथ मुझे गहन चिकित्सीय परीक्षण के लिये बुलाया गया। जिसमें सफल होने पर भारतीय तिब्बत बार्डर पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र (आई.टी.बी.पी) में पर्वतारोहण एवं हिम अनुकूलन के प्रशिक्षण हेतु बुलाया गया। आई.टी.बी.पी. देश का एक बहुत ही अनुशासित पैरामिलेटरी संगठन है, वहां देर से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तुरन्त सजा मिलती है, फिर चाहे वो 15 दिनों के लिए आये प्रशिक्षु ही क्यों न हों। हम लोग जब यहाँ पहुँचे तो उत्तराखंड में त्रासदी हुए कुछ सप्ताह ही बीते थे । 16 एवं 17 जून 2013 की दैवीय आपदा से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है, सम्पूर्ण उत्तराखंड बाढ़ एवं भूस्खलन की भीषण चपेट में था। आंकड़ों के अनुसार लगभग पांच हजार सात सौ से अधिक लोगों की इस दैवीय आपदा ने जान ले ली थी। कितने ही परिवारों ने अपने माता पिता और बेटा बेटी खोये तो कितने ही परिवार पूरे के पूरे ही अलकनंदा–भागीरथी की भेंट चढ़ गये। कितने परिवारों में तो कोई नाम लेने वाला ही नहीं बचा। ऐसा अनुमानित है कि यह सब भूस्खलन के कारण अलकनंदा के रास्ता बदलने के कारण हुआ, प्रकृति का ऐसा तांडव दिल दहला देने वाला था। उसका प्रत्यक्ष अहसास मैंने भारतीय तिब्बत बार्डर पुलिस, औली में पर्वतारोहण एवं हिम अनुकूलन प्रशिक्षण के दौरान किया। हमारा अभियान दल पृथ्वी भवन, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, नई दिल्ली से उत्तराखंड के लिए 6 सितम्बर 2013 को प्रातःकाल 8.00 बजे रवाना हुआ जो हरिद्वार, ऋषिकेश होता हुआ औली पहुँचा। वहाँ पर संस्थान के प्रशिक्षण प्रभारी का सबसे परिचय हुआ, प्रशिक्षण के दौरान उन्होंने बहुत से व्याख्यानों, जो अंटार्कटिका के अनुकूलन प्रशिक्षण के लिये आवश्यक थे, का आयोजन किया जैसे – अंटार्कटिका जैसे बर्फीले क्षेत्र में साफ सफाई एवं चोट लगने पर प्रथम उपचार क्या करेंगे, अत्यधिक ठंड में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं एवं चोट की आंशका, हिम शीतलन से हाथ, पैर एवं चेहरे की त्वचा को होने वाली गंभीर क्षतियों, अत्यधिक ठंड में मनोवैज्ञानिक एवं मनोविकृतियों के रूप मैत्री एवं भारती का अनुरक्षण, अंटार्कटिका के पर्यावरण के रुप, हिमनद क्षेत्र में कैवासों से सुरक्षा एवं राहत कैसे करें इत्यादि। व्याख्यानों के अतिरिक्त उन्होंने औली में पवर्तारोहण एवं हिम अनुकूलन संस्थान के अंदर एवं बाहर अनुकूलन पद यात्रा (ट्रैकिंग) संबंधी सामान पद यात्रा की लंबी खड़ी चढ़ाई का अभ्यास करवाया। उसके पश्चात हमने वहाँ से हिमनद क्षेत्र में पद यात्रा एवं प्रशिक्षण के लिए औली से बद्रीनाथ के लिये प्रस्थान किया। बद्रीनाथ से लगभग 20 कि.मी. पहले ही हम लोगों को बस से उतरना पड़ा क्योंकि उसके आगे बस से यात्रा संभव नहीं थी, क्योंकि सारे रास्ते, पुल, हैलीपैड टूट जाने के कारण कोई रास्ता नहीं था। हमने आई.टी.बी.पी के वरिष्ठ पदाधिकारियों एवं जवानों से परामर्श किया और फिर लगभग 6.5 कि.मी. पैदल जाने का निर्णय लिया। यहाँ से अभियान दल के सभी सदस्य कन्धे में रुकसुक लेकर पैदल उन टेढ़े–मेढ़े, कंकरीले, आपदाग्रस्त रास्ते पर निकल पड़े। उस रुकसुक में 8 दिनों का पूरा सामान, साथ में हिमनद प्रशिक्षण के दौरान प्रयोग में आने वाले उपकरण एवं ऊनी कपड़े थे, जिसका भार लगभग 15 किलो से कम नहीं था। रास्ता बहुत ही कठिन था, जहाँ अकेले अपने आप चलना मुश्किल था, वहाँ इतना भार लेकर चलना और भी कठिन हो रहा था। एक मोड़ तो ऐसा आया जहाँ ठीक से पैर रखने की जगह भी नहीं थी । किसी तरह मैं अपना दाहिना पैर टिका पाई थी और ज्यों ही बांया पैर रखा तो नीचे से मिट्टी खिसक गई, ऐसा लगा कि बस यही मेरी जिन्दगी का आखिरी क्षण बन जायेगा

और मैं अलकनन्दा नदी जो अपने पूरे वेग से बह रही थी उसमें जा गीरूंगी, लेकिन तभी आई.टी.बी.पी. के मनोज सर ने मुझे हाथ पकड़ कर आगे की ओर खींच लिया। रास्ते में जो दृश्य मैनें देखे वो दिल दहला देने वाले थे, चारों ओर टूटी सड़कें, खंडहर मकान, नींव खो चुके टूटे हुए मकानों में टंगे हुए कुछ कपड़े, अलकनंदा में टूटे जर्जर पुल, नदी की धीमी पड़ चुकी धारा में दिखते हुए गाड़ियों के पहिये, टूटी पगडंडियाँ भयावह आपदा की कहानी बयाँ कर रही थी। पुलों के टूटने के कारण आई.टी.बी.पी के जवानों ने एंकर लगाकर उसमें रस्सी से एक पतले से लकड़ी में टुकडे को बांधा उसी पर चलकर हम सब ने अलकनंदा नदी को पार किया ऐसा प्रतीत होता था कि अब गिरे तब गिरे ! बहुत ही दयनीय स्थिति में हम लोग उस सड़क तक पहुँचे जहाँ से बद्रीनाथ के शेष नेत्र आश्रम तक पहुँच सकें, वहाँ पर कर्फ्यू जैसा माहौल था, चारों ओर पसरा सन्नाटा, विरान सड़कें। विभिन्न राज्यों जैसे राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश आदि की नंबर प्लेट लगी आपदा में फंसी गाड़ियाँ क्रम से सड़क के किनारे जहाँ तहाँ खड़ी हुई थीं। मैंने सुना कि इन गाड़ियों से उत्तराखण्ड तीर्थ यात्रा पर आये कई लोग यहाँ तक कि वाहन चालक भी वापस अपनों के पास नहीं जा सके और आपदा का शिकार हो गये। अभियान दल के सभी सदस्यों ने सोचा कि यहाँ तक आये हैं तो बद्रीनाथ जी के दर्शन कर लिए जाये जब हम लोग दर्शन के लिए मंदिर पहुँचे तो मंदिर के पुजारी का पहला प्रश्न था कि आप लोग यहाँ तक आये कैसे ? रास्ता तो बंद है तब हम लोगों ने उन्हें अपनी यात्रा वृतान्त बताया और यह बताया कि बिना आई.टी.बी.पी. के जवानों की मदद के बिना हम लोग यहां तक पहुँच नहीं सकते थे। यूं तो प्रत्येक वर्ष पर्वतारोहण एवं हिम अनुकूलन प्रशिक्षण का आयोजन अंटार्कटिका जाने से पहले किया जाता था किन्तु इस वर्ष आपदा के कारण यह मुश्किल प्रशिक्षण और भी दुष्कर हो गया था। पथरीले रास्तों पर लगतार चलने के कारण मेरे दोनों पैरों के अंगूठे में घाव हो गया था जिसे मैनें औली जाकर आई.टी.बी.पी. के चिकित्सक को दिखाया तो उन्होंने कहा कि मवाद भर जाने कारण शल्यचिकित्सा की एवं आराम की आवश्यकता है, लेकिन प्रशिक्षण प्रभारी ने कहा प्रशिक्षण पूरा करना ही होगा तभी यहाँ से प्रमाण–पत्र दिया जाएगा। मैनें परिस्थितियों से हार न मानते हुये प्रशिक्षण पूरा करने का निर्णय लिया। हमें वहाँ पर्वतीय हिमनद क्षेत्र में शिविर लगाकर रहने, कैवास क्षेत्र को समझने और विपरित परिस्थितयों में किसी के फंसने पर रेस्क्यू करने के साथ ही हिमनद पर्वतारोहण में काम करने वाले उपकरणों से अवगत कराया।

प्रशिक्षण पूरा करके 22 सितम्बर 2013 को हम लोग वापस आ गये । उसके पश्चात अक्तूबर माह के अंत में राष्ट्रीय अंटार्कटिका एवं समुद्री अनुसंधान केन्द्र, गोवा से एक पत्र आया और हमारा अंटार्कटिका जाना सुनिश्चित हो गया। दिनांक 04 दिसम्बर 2013 को मैंने एन.सी.आर.ए.आर. गोवा के लिए प्रस्थान किया। 4 से 8 दिसम्बर के मध्य गोवा में बहुत सी मीटिंग्स, व्याख्यान एवं आग से बचाव के लिए प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। 8 दिसम्बर 2013 को अभियान दल ने गोवा से मुम्बई, जोहनसबर्ग व केपटाउन होते हुये अंटार्कटिका के लिए प्रस्थान किया । श्रीमती स्वाती कुलकर्णी, कनसोलेट जनरल ने केपटाउन में दल के सभी सदस्यों से मिलने के लिए एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया एवं आगामी अंटार्कटिक यात्रा की शुभकामनाएं दीं।

दिनांक 12 दिसम्बर 2013 को इवान पापरिन समुद्री जहाज से हम लोगों की अंटार्कटिका यात्रा भारती स्टेशन के लिए आरम्भ हुई । रास्ते में बहुत सारे हिम शैल (आइसबर्ग) के टुकडे, विभिन्न प्रकार की बर्फ जैसे थिक आइस, पैक आइस इत्यादि देखने को मिली। मन में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे, जो मैनें निम्न पंक्तियों के रूप में अपनी डायरी में लिख लिये–

शबनम की बूंदे जैसे फूलों की भिगा रहीं हैं,
अंटार्कटिका की हवाएं ताजगी जगा रहीं हैं।
और कह रही है कि हो जाइये आप भी
अंटार्कटिका की बर्फीली वादियों में शामिल
एक प्यारी सी सुबह
आपको भारती में बुला रही है ।

रास्ते में बर्फ की सफेद मोटी मोटी सिल्लियों में नन्हें नन्हें पैंगुइनों की चहल पहल, आकाश में हजारों मील की उड़ान भरते तरह तरह के पक्षी, सूर्य की तेज रोशनी जिसे नग्न आंखों से सह पाना संभव नहीं और जब रोशनी सफेद बर्फ पड़ती तो प्रकाश परावर्तन के कारण आंखों को चकाचौंध कर देतीं। अन्ततः 24 दिसम्बर 2013 को हमारा 33वाँ भारतीय वैज्ञानिक अभियान दल अंटार्कटिका पहुँच गया।

अंटार्कटिका इस पृथ्वी का सबसे ठंडा, सूखा एवं पांचवाँ सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह दक्षिणी गोलार्द्ध में लगभग 1,42,43000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र

इस यात्रा में मेरी तबियत सबसे अधिक बिगड़ी, 6 दिनों तक तो हालत ऐसी रही कि न तो पानी की एक बूंद पेट में जा पाती थी और न ही औषधियाँ। इलेक्ट्रॉल का पानी तक नहीं पचता था, अन्त में पित्त आने लगा। समुद्री अभियान के प्रभारी कंमाडर पी.के. मन्ना एवं चिकित्सक का कहना था कि कुछ नहीं खाने से हालत और भी अधिक खराब हो जायेगी। मुझे ऐसी स्थिति में 6 दिन हो चुके थे, बहुत अधिक कमजोरी आ गई थी, ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं भारत वापिस नहीं जा पाऊंगी, शायद यहीं मेरे प्राण निकल जायेगें। मैंने किसी भी तरह निदेशक, भा.व.स. व डॉ. डी. के. सिंह सर को ई–मेल किया और अपने स्थिति के बारे में जानकारी दी। फिर रोलिंग–पिचिंग भी थोड़ी कम हुई। अन्त में शहद के सेवन से मेरी हालत में धीरे–धीरे सुधार आने लगा। मैंने केवल शहद और पानी पर रहना प्रारम्भ किया। जहाज धीरे धीरे समुद्र में जमी बर्फ में पहुँच गया। बर्फ इतनी जमी हुई थी कि जहाज का बर्फ काटकर आगे बढना भी मुश्किल हो गया। जहाज मैत्री स्टेशन की आइस शैल्फ से लगभग 180 कि.मी. पहले ही रुक गया और कई दिनों तक फंस कर वहीं रुक गया। इससे सदस्यों ईंधन और राशन की समस्या होने लगी। समुद्री अभियान के प्रभारी प्रतिदिन जहाज के कप्तान से बात करते। सुबह शाम बैठकें होती पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। जहाज के चलने के बारे कोई सही जबाब नहीं दे पाते। अन्त में निर्णय लिया गया कि ईंधन और अन्य सामान यहीं से हेलिकाप्टर के माध्यम से मैत्री स्टेशन तक पहुंचाया जाएगा। कानवय को मैत्री स्टेशन से जहाँ जहाज रुका है वहीं से सारा सामान मैत्री आइस शैल्फ तक पहुंचाया गया एवं वहाँ से मैत्री स्टेशन तक सामान पहुंचाने का निर्णय लिया गया, बीच में मौसम बहुत खराब हुआ बर्फीला तूफान प्रारम्भ हो गया, वायु वेग 130 नाटिकल माइल्स के ऊपर था, बीच बीच में व्हाइट आउट रहने लगा। हैलिकॉप्टर 25 एवं कैमो 40 नाटिकल माइल्स के वायु वेग से ज्यादा में उड़ान नहीं भर पाते । हम लोगों को डेक पर जाने को मना कर दिया गया था। सब लोग यही कहते थे कि जहाज फंस गया है और अंटार्कटिका में शीत ऋतु प्रारम्भ हो चुकी है तो प्रतिदिन बर्फ का बढ़ना तय है। इस स्थिति में जहाज या तो बर्फ में धंसता जाऐगा या फिर वहीं खड़ा रहेगा। जैसे जैसे दिन बढ़ते जा रहे थे जहाज में खाने पीने का सामान खत्म होता जा रहा था। समुद्री अभियान के प्रभारी एवं अन्य लोग यही कहते कि अब फरवरी, 2015 के पहले जहाज का केपटाउन पहुँचना मुश्किल है। हम सब को ध्रुवीय शीतकाल का समय यहीं गुजारना पडेगा। उसके बाद समुद्री अभियान के प्रभारी एवं जहाज के प्रभारी से मीटिंग हुई और उन्होंने कहा कि अंटार्कटिका के रुसी स्टेशन में सारा सामान दे देंगे तो वहाँ से 04 अप्रैल को चलेंगे उनके पास बर्फ को काटने की सुविधा है, इसलिए वो दोनों जहाज आगे जाएंगे और इवान पापानिन उसके पीछे जाएगा लेकिन अंटार्कटिका में मौसम के बारे में कुछ भी कहना संभव नहीं है। अचानक मौसम का रुख बदला जहाज जहाँ रुका था और जहाँ से मैत्री आइस– शैल्फ पर सामान भेजा जा रहा था, वहीं पर मैत्री स्टेशन की पांच पिस्टन बुली भी खड़ी थी। उसी दिन सुबह चार बजे सारे कानावाय मैत्री स्टेशन के पास वाली आइस–शैल्फ के लिए निकली थी लेकिन पिस्टन बुली वहीं जहाज के पास खड़ी थी कि, अचानक भंयकर बर्फ की आंधी आरम्भ हो गई और रुका हुआ जहाज अपने आप घुमने लगा और फिर जहाज को सुरक्षित स्थान पर रोका गया और जब मौसम अनुकुल हुआ तो जहाज धीरे धीरे चल पड़ा और हम लोग केप टाउन होते हुए दिल्ली एवं तदोपरान्त 15 अप्रैल 2014 को मैं कोलकाता पहुंच गयी। इतनी विषम परिस्थिति के बाद भी अंटार्कटिका का 33वां भारतीय वैज्ञानिक अभियान सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अन्त में मैं यही कहुंगी हिमसागर– हिम पर्वत, हिमनद व हिमखंडो से अच्छादित प्रकृति की अनमोल धरोहर अंटार्कटिका की पवित्र धरा को देखकर पवित्र हवा को हवाओं के स्पर्श से मुग्ध हुआ मन मेरा।

ये हैं जंगल के उपकार, मिट्टी पानी और बयार ।
मिट्टी पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार।।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 127-130(2014)

ग्रीन लेक की यात्रा और हरितोद्भिद् अन्वेषण

देवेन्द्र सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

ग्रीन लेक सिक्किम के उत्तरी जिले के कंचनजंघा राष्ट्रीय उद्यान में स्थित है। इसके उत्तर में हिडेन ग्लेशियर, उत्तर पश्चिम में टेन्ट पीक ग्लेशियर, पश्चिम में नेपाल गैप ग्लेशियर तथा दक्षिण में जेमु ग्लेशियर स्थित है। यह झील समुद्रतल 5150 मी० की ऊंचाई पर स्थित है। अत्यधिक शीतल एवं संरक्षित इस परिक्षेत्र में वानस्पतिक संग्रह करने के लिये राज्य के गृह विभाग से एक इनर लाईन प्रवेश अनुमति तथा मुख्य वन्य जीव संरक्षक की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य होता है। ग्रीन लेक का वानस्पतिक संग्रह पूर्व में 20–25 वर्ष पहले डॉ. सर्वनाम सिंह की अगुवाई में किया गया था।

ग्रीन लेक के लिये हमारी वानस्पतिक यात्रा सिक्किम की राजधानी गंगटोक से प्रारम्भ हुई, सड़क मार्ग से हिमालय के पर्वत चोटियों को निहारते निहारते 6 से 7 घंटे की दूरी तय कर हम 3240 मी० की ऊंचाई पर स्थित लाचेन पहुँचे । लाचेन हमारे हमारे वानस्पतिक संग्रह सम्बन्धित भ्रमण के दौरान पहला पड़ाव था, हमनें वहीं ठहरने और अगले दिन आगे की यात्रा की योजना बनाई। लाचेन छोलामों होटल में चर्चा के दौरान होटल मालिक से ग्रीन लेक के विषय में चर्चा हुई, होटल मालिक भोटिया समुदाय के थे, जो लाचेन की प्रमुख आबादी में से एक है,उन्होंने ग्रीन लेक जाने से सम्बन्धित हमें अत्यधिक रोचक व महत्वपूर्ण जानकारी दी। उन्होंने हमारी मुलाकात पोर्टरों से करवायी तथा आवश्यक सामान जो हमारे पास नहीं था, उसका भी प्रबन्ध करवाया।

हमारी इस यात्रा का उद्देश्य ग्रीन लेक तक पहुँचना एवं हरितोद्भिद् पौधों के नमूने संग्रह करना था। इससे पूर्व इस दुर्गम जगह से किसी देशी या विदेशी शोध का कोई भी उल्लेख हरितोद्भिदों के संदर्भ में नहीं पाया गया है। होटल में वार्ता के दौरान ही पोर्टरों ने हमें ग्रीन लेक जाने के दो रास्ते सुझाये– पहला रास्ता लाचेन से जेमा, दोरजम, तेलम्, जाकथांग होते हुये याबुक और फिर रेस्ट कैंप के बाद ग्रीन लेक जाता है और दूसरा लाचेन से मुगुथांग, थयेला, वयोकासा होते हुये थांगु और फिर रेस्ट कैम्प के बाद ग्रीन लेक का है।

हमने अपनी यात्रा के लिए लाचेन–याबूक वाला मार्ग चुना और अगले दिन दिनांक 22. 03. 2013 को हम लाचेन से ग्रीन लेक के अपने अविस्मरणीय एवं रोचक सफर के लिए निकल पड़े। लाचेन से मात्र 3 कि.मी. की दूरी तय करके हम जेमा पहुँचे। जेमा से एक मुख्य सड़क मार्ग दायीं तरफ थांगू के लिये निकल जाता है एवं एक पगडंडी बांयी तरफ से ग्रीन लेक के लिये जाती है। यह सोच कर की गाड़ी के इतर पैदल मार्ग का अनुसरण न केवल रोमांचक होगा अपितु वानस्पतिक संग्रहण के लिये भी उपर्युक्त होगा हम उसी पगडंडी पर पैदल आगे बढ़ चले।

जेमा से ही हमने अपना वानस्पतिक संग्रहण प्रारम्भ कर दिया। पगडंडी पर आगे बढ़ते हुये हम दोरजम पहुँचे, जहाँ पर अत्यन्त दुर्गम मार्ग हमारा इन्तजार कर रहा था, यह लगभग 1 कि०मी० का भूस्खलित क्षेत्र था तथा जिसे पार कर पाना मुझे असम्भव सा लग रहा था। हमारे अत्यन्त

कुशल एक पोर्टर ने अपने विशेष जूते (गम बूट) से खोद खोद कर एक–एक पैर रखने का स्थान बनाया, जिससे हम व हमारे अन्य दो पोर्टर साथियों ने ये मार्ग पार किया। इस रास्ते को हम अपने कैमरे में कैद न कर सके, क्यूंकि तत्क्षण यह सुरक्षित नहीं था। इसके पश्चात् हम ऊँचे–नीचे मार्गों से होते हुये, अपना हरितोद्भिद् संग्रह करते हुये आगे बढ़ते चले गये। दोरजम से निकलने के पश्चात् हमने मध्याह्न भोजन ग्रहण करने का निर्णय लिया, यह भोजन हमारे पोर्टरों के सौजन्य से था, जिसमें उनके घर से लायी पूड़ियाँ थी, जो अत्यधिक ठंड से पत्थर जैसी सख्त हो गयीं थी, हमने इन पूरियों का आग में सेंक कर थोड़ा नरम करके खाया। भोजन करके हम फिर आगे निकल पड़े तेलम के लिये।

लाचेन में रात्री विश्राम के बाद तेलम हमारा दूसरा पड़ाव था और तेलम पहुँचते–पहुँचते सांझ हो गयी थी। यहाँ पर रुकने के लिये कोई भी आश्रय न था। पोर्टरों ने एक बड़े पत्थर के नीचे हमारे रात गुजारने का प्रबन्ध किया जो स्वयं में हमारे लिये एक अविस्मरणीय था। यह हमें आदिम युग की अनुभूति करा गया, जब हमारे पूर्वज कंदराओं में रह कर जीवनयापन करते थे। यहाँ पर पोर्टरों के साथ मिल कर हमने भोजन पकाया और हम सब भोजन करके सो गये। किन्तु मध्यरात्रि में अत्यधिक ठिठुरन के कारण मेरी नींद खुल गयी, अलाव को फिर से जलाकर मैनें कड़ाके की ठंड सुबह होने के इंतजार में जागते जागते ही काट दी।

अगले दिन दिनाँक 23.03.2013 की सुबह हम फिर निकल पड़े दुगुने उत्साह के साथ लक्ष्य था तेलम से जांकथांग। ये रास्ता *रोडोडेन्ड्रॉन* के वृक्षों से आच्छादित था, बर्फ से ढके इस रास्ते पर आप सुबह ही चल सकते हैं अन्यथा जैसे ही सूर्य की किरणें बर्फ पर पड़ती हैं, बर्फ मुलायम हो कर धंसने लगती है और इस पर चलना कठिन हो जाता है। जिससे एक एक कदम बढ़ने के लिये शरीर की काफी ऊर्जा खर्च होने लगती है। चलते–चलते थक कर चूर हो हमने धूपीडाणा में विश्राम करने का निर्णय लिया, जहाँ पर हमारे पोर्टरों ने बर्फ को गलाकर पानी एकत्र किया और चाय बनायी। चाय के दौरान पोर्टरों ने बताया कि जांकथांग से एक रास्ता थुलुंग को जाता है, जो आगे जाकर मंगन में मिलता है, परन्तु यह रास्ता सालों से बन्द है। थोड़ा रुक कर हम फिर बढ़ चले जांकथांग की ओर। इसी दौरान हमने पत्थरों एवं *रोडोडेन्ड्रॉन* वृक्षों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हरितोद्भिदों का संग्रह किया। सांझ ढलते–ढलते हम जांकथांग पहुँचे, जांकथांग जेमुचु नदी के किनारे बसा एक वीरान मैदानी इलाका है। यहाँ पर आपको बताते चलें कि अभी तक की यात्रा में हमें कहीं भी कोई इंसानी चहल–पहल नहीं मिली। ये पूरा इलाका वीरान है, जांकथांग में हमारा आश्रय बना काठ का बना आधा खुला घर ! जिसमें जाट रेजिमेंट द्वारा रेजिमेंट का नाम अंकित था। पोर्टरों ने बताया कि भारतीय सेना अपने वार्षिक निरीक्षण के अर्न्तगत देश की सीमा के निरीक्षण के लिये इस क्षेत्र में वर्ष में एक बार आती है। ठंड में ठिठुरते हुये और स्थानीय पोर्टरों की लोककथायें संस्मरण सुनते, अलाव सेकते हुये हम कब नींद के आगोश में चले गये पता ही नहीं चला।

1. विश्राम गृह जाकथांग,
2. जाकथांग और याबुक के बीच दुर्लभ दर्रा

यात्रा का अगला लक्ष्य था याबुक पहुँचना, रात में ही हम ने सुनिश्चित कर लिया कि बिल्कुल सुबह हम लोग निकलेंगें ताकि बर्फ मुलायम होने से पहले हम अपने लक्ष्य तक पहुँच जायें। परन्तु फिर भी याबूक पहुँचते– पहुँचते दोपहर हो गयी और पैर पूरी तरह से बर्फ में धंसने लगे,जिससे हमारी गति धीमी होती चली गयी, इसी दौरान वानस्पतिक संग्रह करते हुये, मैं लगभग कमर तक बर्फ में घुस गया। हमारे पोर्टरों ने मुझे तत्काल

1–2 तेलम कैम्प का एक दृश्य, 3: तेलम और जाकथांग के बीच का दर्रा,

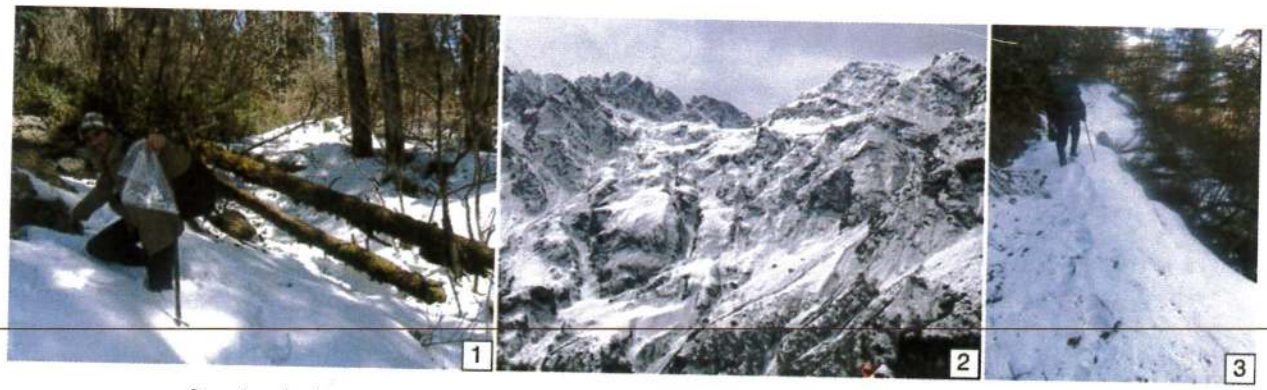

1. वानस्पतिक संग्रह के दौरान का एक दृश्य याबुक के पास, खः कस्यांग का दृश्य याबुक से, गः रेस्ट कैम और याबूक के बीच का दृश्य

निकाला, बर्फ मेरे गम–बूट में घुस गयी थी, जिसकी वजह से मेरे पैर ठंडे पड़ने लगे थे, तभी एक पोर्टर ने अपने साथ लाई एक बोरी फाड़ कर मेरे गम बूट का मुंह बांध दिया, जिससे बर्फ का अन्दर जाना रुक गया। अब उसने आगे चलने का निर्णय लिया और दल के सदस्य अक्षरशः उसके पग–चिन्हों का अनुसरण करते वानस्पतिक संग्रह करते हुये याबुक पहुँचे।

याबुक, हिमालय की इस शान्त अनछुई घाटी में फैला क्षेत्र है, यहाँ पर एक लकड़ी का छोटा सा घर मिला जो भारतीय वन विभाग का था, हमने अपनी रात इसी में काटी और तड़के ही निकल पड़े अपने आखिरी लक्ष्य ग्रीन लेक के लिये। अब रास्ता धीरे–धीरे जटिल होता जा रहा था, 2–3 कि.मी. के बाद से ही पूरा रास्ता बर्फीला एवं तीखे ढलानों से भरा था, थोड़ी सी भी लापरवाही 2000 फीट नीचे खाई धकेल सकती थी । फिर भी हम चलते रहे, कभी झाड़ी पकड़ कर तो कभी गमबूटों के सहारे, परन्तु रास्ता जटिल से जटिल होता चला गया। अंत में वह दुर्भाग्यपूर्ण क्षण आया, जब एक असम्भव सा मार्ग हमारे समक्ष खड़ा मिला। हमारे अनुभवी पोर्टर जो इस यात्रा में हमारे गाईड थे, उन्होंने भी हिम्मत हार दी और वापस लौट चलने की सलाह दी, क्योंकि वास्तव में आगे मार्ग पूरी तरह से बर्फ आच्छादित, तीखे ढलान वाला था जिस पर ऊपर चढ़ने को कोई सहारा नहीं था।

इस प्रकार मात्र कुछ कि.मी. की दूरी से हमारा सपना सपना ही रह गया, यह क्षण अत्यन्त निराशा से भरा था। परन्तु एक खोजी वैज्ञानिक दल होने के कारण हमने उस पूरे क्षेत्र का जहाँ तक हम पहुँच सके, हरितोद्भिद संग्रह किया तथा अधूरे मन से हम वापस लौटने लगे। उतरते हुये हम याबूक में रुके, तथा पहले की भांति जांकथांग, जांकथांग से तेलम पहुँचे। तेलम में हमने भोजन ग्रहण करने का मन बनाया, खाने के बीच में ही हमारा मिट्टी का तेल खत्म हो गया, अनुभवी पोर्टरो ने तुरन्त पत्थरों में खोजबीन शुरु की और काफी खोज बीन के बाद पत्थरों के बीच से मिट्टी की तेल की एक भरी बोतल निकाली, पूछने पर बहुत ही रोचक तथ्य पता चला कि मार्ग निर्माण हेतु जो मजदूर इधर आते हैं, वो अपना बचा सामान पत्थरों के नीचे छुपाकर रख जाते हैं, ताकि पुनः आकर इसका उपयोग कर सकें। उनका सामान प्रयोग करना हमारी मजबूरी थी। इसी क्रम में हमारे पोर्टरों ने भी अपना सामान छुपा दिया, जिससे उनका भार भी कम हो गया। उनमें से कुछ ने बांस की एक जाति *थैमनोकैलमस स्पैथिफ्लोरस* की शाखायें अपने साथ ले ली जो झाड़ू बनाने के काम आती है। अब हम तेलम से दोरजम के लिये निकल पड़े, यह वही लगातार भूस्खलन वाला क्षेत्र था, हमें फिर से 1 घंटे तक इंतजार करना पड़ा क्योंकि भूस्खलन बहुत तीव्रता के साथ जारी था। इसी दौरान हमने अपने कैमरे को ऑन किया परन्तु काफी दिनों से बिना चार्जिंग के चलते रहने के कारण वह ऑन न हुआ, मैंने बैटरी निकाली और उसे काफी रगड़ा जिससे कैमरा ऑन हो गया और फिर जल्दी से एक छोटी सी विडियो स्मृति स्वरूप ले ली। इसके बाद हिम्मत करके और थोड़ा डरते–डरते हमने इस दुर्लभ मार्ग को पार किया और जेमा पहुँचे।

28. 03. 2013 को हम लाचेन वापस आ गये। इस प्रकार रोमांच, उत्साह एवं नवीन संग्रह से भरी यह यात्रा सम्पन्न हुई। ग्रीन लेक यात्रा के दौरान हमने सिक्किम से बहुत सी नयी हरितोद्भिद जातियों का संग्रह किया जो इससे पूर्व भारत से अथवा सिक्किम से नहीं संग्रहित की गई थी, इन जातियों में *हैप्लोमिट्रीयम ब्लुमीयायी* (नीस) आर.एम.सुस्ट.; *बजानीया सिक्किमेंसिस* (स्टेफ.) हेर्जोग, *बजानीया ट्राइक्रेनाटा* (वाहलेम्ब.) लिन्डब., *प्लैजियोकाइला डेबीलिस* मीट., *एक्रोबोलबस सिलिएटस* (मीट.) सीफन., *प्लेयुरोजिया परपुरिया* लिन्डब. *सोलेनोस्टोमा फारियनम* (बीयुवर्ड) बकलीम, *लोफोकोलिया* जाति, *ब्लासिया पुसिला* एल., *मेटाजेरिया लेप्टोन्यूरा* स्प्रूस., *कोनोसिफैलम जपोनिकम* (थम्ब.) ग्रोले मुख्य हैं, इनके अतिरिक्त न केवल हरितोद्भिदों अपितु हमने कुछ पर्णाग, बांस, *रोडोडेन्ड्रान*, कवक, शैवाल का भी संग्रह किया और सम्बन्धित वैज्ञानिकों को सौंप दिया। इस प्रकार ग्रीन

1. *हैप्लोमिट्रीयम ब्लुमीयायी,* 2. याबुक के पास *रोडोडेन्ड्रान* के तने पर लगा हरितोद्भिद आवास, 3. जाकथांग के पास पत्थर पर लगा हरितोद्भिद आवास, 4. दोरजम के पास पेड़ के मुख्य तने पर लगा हरितोद्भिद आवास, 5. *एक्रोबोलबस सिलिएटस* 6. *प्लेयुरोजिया परपुरिया,* 7. *सोलेनोस्टोमा फारियनम,* 8.*लोफोकोलिया* जाति 9.*ब्लासिया पुसिला,* 10. *कोनोसिफैलम जपोनिकम*

लेक की ये यात्रा पोर्टरों के अनुभव व मार्गदर्शन से सम्पन्न हुयी। मन में थोड़ी सी निराशा तो उत्पन्न हुई किन्तु नयी खोज और मार्ग की नैसर्गिक सुंदरता तथा हमारे दल के उत्साह ने इस यात्रा को अविस्मरणीय बना दिया। ऊँचे पर्वत, प्रकृति के विहंगम दृश्य, हमारे साथ–साथ बहती जेमुचु नदी की निर्मल धारा ये सब मेरे हृदय के स्मृति पटल में हमेशा के लिये अंकित हो गये।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 131-135(2014)

गहवर वन : जैव विविधता व धार्मिक आस्थाओं का एक जीवंत केन्द्र

भावना जोशी व रसानन्द कर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

समस्त जीव जगत से जुड़ी अधिकतर गतिविधियों के लिए वन प्राचीन काल से ही मूल स्रोत के रूप में एक अहम भूमिका निभाते आ रहे हैं। वनों में पाये जाने वृक्ष मनुष्य के लिए प्रकृति का सबसे बड़ा उपहार हैं। वृक्षों की महत्ता के दृष्टिकोण से हर व्यक्ति जानता है कि वृक्ष समस्त संसार के लिए एक आवरण का कार्य करते है। इनसे हमें जल, ऊर्जा, वायु, भोजन, चारा, लकड़ी, औषधि व अन्य विभिन्न प्रकार के वनोत्पाद प्राप्त होते हैं। वनों से जुड़ी आवश्यकताओं के मद्देनजर तकरीबन करोड़ों की आबादी अपनी आजीविका के लिए इन्हीं वनों पर निर्भर है। संसार की कई जनजातियां आज भी समूह बनाकर जंगल में ही निवास कर रही हैं, साथ ही विश्व व्यापार के कुल हिस्से का तीन प्रतिशत से अधिक व्यापार जंगली उत्पाद से ही प्राप्त होता है। राष्ट्रीय वन नीति 1952 के आधार पर हमारे देश के पूरे क्षेत्रफल का 33 प्रतिशत या एक तिहाई के विपरीत देश में इस समय मात्र 19.27 प्रतिशत वन क्षेत्रफल ही बचा है। इसका मुख्य कारण तेजी से बढ़ती जनसंख्या, प्राकृतिक आवासों का क्षरण, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वनों की निरन्तर कटाई आदि मानवीय गतिविधियाँ वनों के अस्तित्व को लगातार खतरे में डाल रही हैं। खतरों से जूझ रहे वनों में एक ताजा उदाहरण मथुरा का गहवर वन है, जो अपनी जैव विविधता के लिए उत्तर प्रदेश में ही नही वरन समस्त भारत वर्ष में विख्यात रहा है। लेकिन लगातार बढ़ती मानव आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिये इस प्रकार के वनों के विदोहन एवं निरन्तर जैव विविधता के हनन से ऐसे वनों का अस्तित्व ही खतरे में है।

इन सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये इस गहवर वन की वर्तमान जैव विविधता एवं इसके संरक्षण की जानकारी देने का यहाँ प्रयत्न किया गया है।

स्थिति एवं विस्तार – उत्तर प्रदेश राज्य का एक छोटा सा शहर है मथुरा, जो पौराणिक काल से कृष्ण नगरी के नाम से विख्यात है। मथुरा से मात्र 47 कि०मी० उत्तर–पश्चिम दिशा पर स्थित है बरसाना जो कि तहसील छाता के अर्न्तगत आता है। बरसाना को देवी राधा जी की जन्मभूमि कहा जाता है और इसका हर एक कोना राधा और कृष्ण जी की समस्त लीलाओं का साक्षी है। इस स्थान में चारों दिशाओं में चार पहाड़ियाँ ब्रह्मा जी के चार मुख की तरह प्रतीत होती हैं, इसलिए इस स्थान का पुराना नाम ब्रह्मसरायीन था, जो आज बरसाना के नाम से प्रचलित है। इसी पावन भूमि पर फैला है गहवर वन जो 27.65^0 उत्तरी अक्षांश से 77.38^0 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। ये वन स्थल चारों ओर तीन राज्यों उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा की सीमाओं से घिरा हुआ है।

जलवायु– यहाँ पर माह मई–जून में अधिकतम तापमान 45° से०ग्रे० व माह दिसम्बर–जनवरी में न्यूनतम तापमान 4° से०ग्रे० तक रहता है एवं वर्षा जुलाई से लेकर सितम्बर तक होती है।

वन एवं वनस्पतियाँ– पादप भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र तीन राज्यों की सीमाओं से घिरा होने के साथ ही मौसम के अनुरूप यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पतियों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है। आज से पाँच छह दशक पूर्व तक तो इस वन की सघनता की स्थिती यह थी कि सूर्य की किरणें तक यहाँ की भूमि को स्पर्श नहीं कर पाती थी। इस वन में पायी जाने वाली वन सम्पदा का अगर निरिक्षण करें तो यह वन मुख्यतः *डायोस्पायरस मालाबेरिका* (तमाल), *क्रेटीवा नर्वूला* (पीलूवरना), *काप्पारिस जिलेनिका* (करील), *अजाडिराक्टा इंडिका* (नीम), *नियोलेर्माकिया कदम्बा* (कदम्ब), *फाइकस रिलिजिओसा* (पीपल), *बैलानाइटिस अजिप्टआका* (गोंदी) आदि अनेक प्रकार के पेड़ों से आच्छदित है। इस वन में पायी जाने वाली वनस्पतियों को उनके स्वभावानुसार निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

वृक्ष– यहाँ पर पाये जाने वृक्षों में मुख्यतः *ऐजेल मारमेलोस* (बेल), *अजाडिराक्टा इंडिका* (नीम), *बाहूनिआ वैरीगेटा* (कचनार), *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलाश), *कैसिया फिस्टुला* (अमलताश), *फाइकस बेंघालेन्सिस* (बरगद), *स्ट्रीचनास नक्सवोमिका* (कुचिला), *फाइलान्थस अंबलिका* (आंवला), *टमिरिन्डस इंडिका* (इमली), *टर्मिनेलिया अर्जुना* (अर्जुन), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेरा), *जिजिफस माउरीसियाना* (बेर), *माइमूसोप्स एलेन्गी* (मौलश्री), *मधुका लांगीफोलिया* उपजाति *लैटीफोलिया* (महुआ) और *माल्लोटुस फिलीपेन्सिस* (सिन्दूरी) हैं। जो कि पूरे वनक्षेत्र को किसी छत्र की भाँति ढ़के रहते हैं। इस प्रकार यह वृक्ष यहाँ की धरती को नम बनाये रखते हैं तथा जल के विभिन्न स्रोतों, वनस्पतियों तथा छोटे–बड़े जीव जन्तुओं के साथ एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र को स्थापित करते हैं।

झाड़ियाँ– *आबूटीलोन इन्डिकम* (कंघी), *आडाटोड़ा जिलेनिका* (अडूसा), *बार्लेरिया प्रिओनिटिस* (कटसरैया), *बालिओस्पर्मम मान्टेनम* (दन्ती), *डातुरा मेटल* (धतूरा), *हेलिक्टेरस आइसोरा* (मरोड़ फली), *पुनिका ग्रेनेटम* (अनार), *वाइटेक्स निगुन्डो* (निर्गुन्डी), *रिसिनस कम्यूनिस* (एरण्ड), *निक्टेन्थिस अरबोरट्रिस्टीस* (हरसिंगार), *जिजिफस ओइनोपिला* (मोखा) और *जिजिफस नुमुलेरिया* (झरबेरी) आदि पायी जाती हैं। इन झाड़ियों के साथ साथ इसमें लगने वाले फलों एवं फूलों को शाकाहारी जीव जन्तु अपना भोजन बनाते हैं।

शाकीय पौधे– विभिन्न शाकीय पौधे जैसे कि *आर्जिमोन मेक्सिकाना* (पीली कंटीली), *एन्ड्रोग्राफिस पेनीकुलाटा* (कालमेघ),*अलोए वेरा* (घृतकुमारी), *एकैरैंथस आस्पेरा* (लटजीरा), *अकोरस कालामुस* (बच), *एर्वा लनाटा* (गोरख गांजा), *ब्लूमिआ लसेरा* (कुकरौंधा), *बोहेर्विया डिफ्यूसा* (रक्त पुर्ननवा), *सेन्ना टोरा* (चकौड़ा), *क्लोएम विस्कोसा* (हुरहुर), *कोनवाल्वुलस प्रोस्ट्राटस* (शंखपुष्पी), *एकलिप्टा प्रोस्ट्राटा* (भृंगराज), *यूफोर्बिया हिर्टा* (दूधी), *फूमारिआ इन्डिका* (पितपापड़ा), *मारटीनिया आन्नुआ* (बघनखा), *मेरेमिआ इमार्जिनाटा* (मूसाकानी), *पेरिस्ट्रोफी पेनीकुलाटा* (काकजंधा), *फाइला नोडीफ्लोरा* (जल पिपली), *फाइलैन्थस अमारूस* (भुई ऑवला), *फाइलैन्थस यूरीनारिआ* (भूमि ऑवला), *फिसालिस मिनिमा* (चिरपोंटा), *कुलेन कोरीलिफोलिआ* (बाकुची), *रॉउबोल्फिआ सरपेन्टाइना* (सर्पगन्धा), *सीडा अक्यूटा* (महाबला), *सीडा अल्बा* (नागबला), *सीडा कार्डाटा* (राजबला), *सीडा रोम्बीफोलिआ* (अतिबला),*सोलेनम नाइग्रम* (मकोय), *सोलेनम वर्जिनिआनुम* (कटईया), *सोलेनम इनकैनम* (वनभांटा), *स्फेरान्थुस इन्डिकस* (गोरखमुंडी), *स्पाइलेन्थस कल्वा* (अकरकरा), *टेफ्रोसिआ परपूरिआ* (सर्पुन्खा), *वर्नोनिआ साइनेरिया* (सहदेवी), *वेटीवेरिया जिजानिओडिस* (खस), *विथानिआ सोम्नीफेरा* (अश्वगंधा) और *ट्रीबुलुस टेरेस्ट्रिस* (गोखरू) आदि इसकी धरती पर बिछावन की तरह प्रतीत होते हैं तथा इस पर आने वाले फल व फलियाँ शाकाहारी जीवों और पक्षियों के भोजन के रूप में लाये जाते हैं ।

लतायें– *एब्रस प्रेकाटोरियस* (घुंघची), *आर्गीरेइआ स्पेसिओसा* (विधारा), *ऐस्परेगस रेसीमोस्स* (सतावर), *कोकुलुस हिरसूट्स* (जलजमनी), *काप्पारिस जिलेनिका* (करील), *काक्सीनिआ ग्रांडिस* (कुंदरू), *क्रिप्टोलेपिस बुचनानी* (नागबेल), *डिप्लोसाइक्लोस पामेटुस* (शिवलिंगी), *जिम्नेमा सिल्वेस्टर* (गुड़मार), *हेमीडेस्मुस इन्डिकस* (अनन्तमूल), *एपोमोआ निल* (कालादाना), *मुकुना प्रूरिएंस* (जंगली केवांच), *ओपेरकुलीना टरपेन्थम* (निशोथ), *पेरगुलारिया डेमिया* (दूधीबेल), *सीसलपीनिआ बोन्डुक* (गटारन), *टेरान्नुस लेबियोलिस* (मांसरोहणी) और *टिनोस्पोरा कार्डीफोलिआ* (गिलोय) आदि लतायें एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जेवर के रूप में सजी ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि पूरा गहवर वन मालाओं से सुसज्जित है।

वन्य जीव विविधता– इस वन में पाये जाने वाले प्रमुख जंगली जीव जन्तुओं जैसे स्तनधारियों में हिरण, नीलगाय, चीतल, सांभर, खरगोश, सियार, लोमड़ी, बन्दर, चूहे, गिलहरी आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय पक्षी मोर जितनी बहुतायात में यहाँ मिलते है, सम्भवतः पूरे विश्व में शायद ही कहीं देखने को मिलें। इनकी उपस्थिति इस स्थान को आकर्षण का केन्द्र बना देती है। पक्षियों में कोयल, कबूतर, खंजन पक्षी, छोटे व बड़े बाज, उल्लू एवं तोता मैना आदि प्रमुख हैं। विषखपरिया, सर्प, मेंढ़क, बिच्छू आादि भी यहाँ की वन्य जैव सम्पदा के प्रमुख अंग हैं।

आर्थिक महत्व की वनस्पतियाँ – गहवर वन में पाये जाने वाली वनस्पतियों को उनकी उपयोगिता के आधार पर मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

खाद्य उपयोगी वनस्पतियाँ – *आर्ट्रोकार्पस हिटरोफिला* (कटहल), *ऐजेल मारमेलोस* (बेल), *एलोकेशिया मैक्रोराईजा* (अरवी), *चीनोपोडियम अलबम* (बथुआ), *काक्सीनिआ ग्रांडिस* (कुंदरू), *मधुका लौंगीफोलिया* उपजाति *लैटीफोलिया* (महुआ), *मोरिंगा ओलिफेरा* (सहजन), *मैन्गीफेरा इंडिका* (आम), *मूसा पैराडिसिका* (केला), *फाइलैन्थस अंबलिका* (आंवला), *पुनिका ग्रेनेटम* (अनार), *साइजियम क्युमिनाई* (जामुन), *साइडियम ग्वाजावा* (अमरूद) *टमिरिन्डस इंडिका* (इमली), *जिजिफस मोरिसियाना* (बेर) आदि प्रमुखता से मिलते हैं।

काष्ठोत्पादक वनस्पतियाँ –इस वन में कई प्रकार के मूल्यवान काष्ठोत्पादक पौधे जैस *टमिरिन्डस इंडिका* (इमली), *टर्मिनेलिया अर्जुना* (अर्जुन), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेरा), *हलडिनिया कार्डिफोलिया* (हल्दू), *अल्बीजिया लिबक* (सिरिस), *मेलिया एजेडिरेक्टा* (बकायन), *मैन्गीफेरा इंडिका* (आम), *साइजियम क्युमिनाई* (जामुन), *अजाडिराक्टा इंडिका* (नीम), *मेलाइना आर्बोरिया* (खमेर), *अकेशिया निलोटिका* (बबूल), *होलोप्टेलिया इन्टेग्रेटीफोलिया* (चिलबिल) एवं *एनोजीसिस लैटीफोलिया* (घवा) आदि पाये जाते है।

औषधीय वनस्पतियाँ– इस वन क्षेत्र में कई ऐसी जड़ी बूटियाँ उपलब्ध हैं, जो मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इन औषधीय पौधों का विवरण निम्नवत है।

ऐजेल मारमेलोस (रूटेसी) 'बेल'– पत्ती एवं फल उदर विकार, मधुमेह, ज्वर एवं वात रोग में लाभकारी होते हैं ।
अजाडिराक्टा इंडिका (मेलिएसी) 'नीम' – छाल एवं पत्ती चर्मरोग, ऑतकृमि, मधुमेह एवं दंत विकार में लाभकारी होते हैं।
मधुका लांगीफोलिया उपजाति *लैटीफोलिया* (सपोटेसी) 'महुआ' –छाल, फूल एवं बीज, तेल गठिया, श्वांसरोग एवं चर्मरोग में उपयोगी होते हैं।
फाइलैन्थस अंबलिका (यूफोर्बिएसी) 'आंवला'– फल उदर विकार एवं शारीरिक कमजोरी को दूर करता है।
पोन्गोमिया पिन्नाटा (फैबेसी) 'करंज'– शाखा एवं बीज तेल दंत विकार एवं चर्मरोग में लाभकारी होते हैं।
सिजाइगियम कुमीनी (मिर्टेसी) 'जामुन' –पत्ती, फल एवं बीज उदर विकार, मधुमेह तथा कोमल पत्तियां वमन कराने में उपयोगी हैं, फल अजीर्ण एवं अतिसार मे लाभकारी होता है।
टर्मिनेलिया अर्जुना (कोम्ब्रिटेसी) 'अर्जुन' –छाल हृदय विकार, हड्डी जोड़ने में एवं श्वेत व रक्त प्रदर में उपयोगी है।
जिजिफस माउरीसियाना (राइनेसी) 'बेर'–पत्ती एवं फल उदर विकार तथा पुराने फोड़ो में उपयोगी एवं पोषक होते हैं।
डातुरा मेटल (सोलानेसी) 'धतूरा'–पत्ती पुराने फोड़ें, चर्मरोग एवं स्वांस रोगों में लाभकारी है।
हेलिक्टेरस आइसोरा (स्टरकुलिएसी) 'मरोड़ फली' –फल उदर विकार में लाभकारी होते हैं ।
रिसिनस कम्यूनिस (यूफोरबिएसी) 'एरण्ड'–पत्ती एवं बीज, तेल कब्ज दूर करने में, सूजन, फोड़े एवं सन्धिवात में उपयोगी होते हैं।
अचिरांथेस आस्पेरा (अमरन्थेसी) 'अपामार्ग'–पंचाग दमा, खांसी, कफ, वात एवं बिच्छू दंश में उपयोगी होते हैं।
आर्जिमोन मेक्सिकाना (पपावरेसी) 'स्वर्णक्षीरी (पीली), भड़भड़'– बीज एवं तेल दूध नेत्र विकार में एवं बीज तेल चर्मरोग में लाभकारी होते हैं।
बोहेर्विया डिफ्यूसा (निक्टाजिनेसी) 'रक्त पुर्ननवा'–सभी भाग यकृत विकार, वृक्क विकार एवं ज्वर (विशेषतः चतुर्थक ज्वर) में लाभकारी होते हैं।
क्लिओम विस्कोसा (कप्पारेसी) 'हुरहुर'–जड़ ज्वर एवं कर्ण विकार में लाभकारी ।
रौल्फिआ सरपेन्टाइना (एपोसायनेसी) 'सर्पगन्धा'–जड़ मानसिक विकार, उच्च रक्तदाब एवं सर्प दंश में लाभकारी ।
वर्नोनिआ साइनेरिया (एस्टेरेसी) 'सहदेवी'–सभी भाग ज्वर (विशेषतः जीर्ण एवं विषम ज्वर) में लाभकारी ।
एब्रस प्रेकाटोरियस (फैबेसी) 'घुंघची'–मूल, पत्ती एवं बीज बवासीर, चर्मरोग, निमोनिया, सर्प दंश एवं शारीरिक कमजोरी में लाभकारी ।
काप्पारिस जिलेनिका (कप्पारेसी) 'हैंसी (व्याघ्रनखी)'–जड़ सर्प दंश, सूजन एवं गठिया,वात में लाभकारी।
कोकुलुस हिरसूट्स (मैनीस्पर्मेसी) 'जल जमनी'–सभी भाग प्रदर, शुक्रमेह एवं चर्मरोग में लाभकारी।
मुकुना प्रूरिएंस (फैबेसी) 'जंगली केवांच'–बीज वाजीकरण एवं शारीरिक कमजोरी में लाभकारी।
ओपेरकुलीना टरपेन्थम (कोन्वॉल्वुलेसी) 'निशोथ' जड़ कब्ज दूर करने में लाभकारी।
पेरगुलारिया डेमिया (एस्क्लेपिडेसी) 'दूधीबेल (उतरन)'–जड़ ज्वर एवं बवासीर में लाभकारी।
टेराम्नुस लेबियोलिस (फैबेसी) 'मांसरोहणी'–सभी भाग पक्षाघात, ज्वर एवं शुक्रमेह में लाभकारी।

1. गहवर वन की पौराणिक महत्ता दर्शाता बोर्ड, 2. *एब्रस प्रेकाटोरियस,* 3. *फाइलैन्थस अंबलिका,* 4. *सोलानुम इनकैनम,* 5.*अल्बीजिया लेबक,* 6. *अकेशिया निलोटिका,* 7. *साइजियम क्युमिनाई,* 8. *अजाडिराक्टा इंडिका*

टिनोस्पोरा कार्डीफोलिआ (मैनीस्पर्मेसी) 'गिलोय'–सभी भाग हृदय विकार, प्रतिरक्षा तंत्र, मधुमेह एवं विषमज्वर में लाभकारी।

पौराणिक महत्व– इस वन का वैभव यूँ ही नहीं है, इसके पीछे इसकी दिव्यता के अनेक प्रमाण हैं। प्राचीनकाल में इस दिव्य स्थान को बृहद या ब्रह्मगिरी पर्वत के नाम से भी जाना जाता था। पूर्वजों के कथनानुसार यह वन राधा–कृष्ण की लीलाओं का साक्षी रहा है। स्वामी हरिदास जी ने गहवर वन की लीलाओं का व्याख्यान अपनी रचनाओं में भी किया हैं।

गहवराख्याय कृष्णलीलाविधायिने।
गोपीरमणरौख्याय बनाय चः नमो नमः।।

इस धार्मिक वन को राज्य द्वारा लंबे समय तक अनदेखा किया गया था, लेकिन श्री रमेश बाबा जी के अथक प्रयासों द्वारा 46 वर्ष बाद इस वन को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया, परन्तु फिर भी इसकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। 2006 से 2010 तक ब्रज निर्माण कर्ताओं की सहायता से यहाँ की परिधि पर दीवार का निर्माण, अन्दर रास्ते तथा बैठने का स्थान भी बनाया गया। अतः इस प्रकार इस स्थान का धार्मिक और अध्यात्मिक रूप से ही महत्व नहीं है अपितु यह वन प्रकृति के अलौकिक वैभव की खान है ।

संकट एवं संरक्षण– गहवर वन का धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व होने के कारण तीर्थयात्रियों का आना जाना यहाँ लगा रहता है, जिनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए निकटवर्ती गाँव के लोग इस वन की वनस्पतियों का दोहन करने लगे हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा की सीमाओं में आने वाले इस वन क्षेत्र में पहाड़ियों के अवैध खनन एवं वनों की कटाई का काम बड़ी निर्ममता से हुआ, दो तीन दशकों तक तमाम प्रयासों के बावजूद भी जब यह खनन एवं वनों की कटाई का काम नहीं रोका गया तो इसकी रक्षा हेतु 1973 में गहवर वन बचाओ आन्दोलन की शुरूआत की गई। वर्ष 2000 में संगठन ने एक वृहद गहवर वन बचाओं आन्दोलन भी किया था। तमाम आन्दोलन एवं धरनों के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान सरकार द्वारा वनों की कटाई एवं पहाड़ियों के खनन पर रोक लगाई गई है। राजस्थान सरकार ने गहवर वन क्षेत्र के 5232 हैक्टेयर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने 7 हैक्टेयर भूमि को गहवर वन के संरक्षण हेतु आरक्षित भी कर दिया था। इस प्रकार की सरकारी रोक के बाद आंशिक रूप से तो रोक लगी किन्तु कुछ लोग आज भी चोरी छिपे अवैध रूप से वन में कटान करने में सफल हो रहे हैं। जब उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा तीनों प्रदेशों की सरकारें आपसी ताल मेल से इसकी रक्षा हेतु संकल्पित हों तभी गहवर वन की पारिस्थितिकी की रक्षा सम्भव है। केन्द्र सरकार को भी यथोचित इस कार्य में सहयोग करना चाहिए। राधा कृष्ण की दिव्य लीलाओं का साक्षी गहवर वन उजड़ने से न केवल हम एक अनूठी धरोहर खो बैठेगें अपितु प्राणदायी पर्यावरण को नुकसान पहुंचा कर आने वाली पीढ़ी के लिये भी संकट उत्पन्न कर देगें। उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि, यह क्षेत्र अपने घने वन, जैव विविधता एवं उपयोगी पौधों के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। गहवर वन की पहाड़ियों और वन सम्पदा को बचाने की बात केवल आस्था के कारण ही नहीं कही जा रही है, अपितु पर्यावरणीय दृष्टि से भी अगर इस और ध्यान नहीं दिया गया तो निकट भविष्य में इसके भारी दुष्परिणाम भुगतने होगें। अतः जन जागृति और जन सहयोग भी अति आवश्यक है, जो यहाँ की वनस्पतियों के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

वनस्पति वाणी अंक 23 : 136-138(2014)

एक वृक्ष का अद्भुद जंगल

शिव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा

वन को अनेक रूपों, स्वरूपों मे विभिन्न परिभाषाओं से परिभाषित किया गया है । सामान्यतः एक छोटे क्षेत्रफल के अंतर्गत बहुत सारे पेड़–पौधे (जैसे ऊष्ण–कटिबंधीय वर्षा तथा ऊष्ण–शुष्क पतझड़वन) या फिर कुछ पेड़–पौधों का ऐसा समूह जो एक बहुत बड़े क्षेत्रफल (जैसे तैगा तथा मरुस्थलीय–पर्वतीय वन) में होता है तथा विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं को अपने आगोश में फलने–फुलने का अवसर प्रदान करता है। सिर्फ यह ही नहीं, इसका बायोमास भी किसी अन्य पादप समुदाय से अधिक होता है। जिसमें इनकी प्रचुरता की अत्यधिक संख्या जमीन के अंदर पादप के जड़ों के इर्द–गिर्द तथा उनके टूटे या मरणासन्न अंगों को अपघटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वास्तव में वन वृक्षों, क्षुपों या झाड़ियों, जड़ी–बूटीयों या शाकों या घास का एक ऐसा समुदाय है, जिसमें वृक्ष सबसे ऊँचा और अधिक स्थान घेरने के कारण प्रमुख होता है। वन हमें चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, औषधियाँ, रेशे, फल–फूल, बीज ही नहीं वरन् जीवनदायी ऑक्सीजन भी देता है, वातावरण में उपस्थित कार्बन–डॉइ ऑक्साइड को अवशोषित कर पर्यावरण को संतुलित रखता है। वन मानव जाति के लिए प्रत्यक्ष (जैसे ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत, रोजगार के अवसर, कुटीर तथा लघु–उद्योगों की स्थापना, पर्यटन, इत्यादि) तथा परोक्ष (जैसे सीमित स्थानों की जलवायु पर अनुकूल प्रभाव, भूस्खलन, बाढ़ और सूखे पर नियंत्रण, जल तथा मृदा संरक्षण, अनावृष्टि, कोलाहल सहित पर्यावरण के अन्य घटकों के ऊपर हो रहे प्रदूषण के दूष्प्रभाव को कम करने, इत्यादि) रुप में महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निभाता है ।

भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भागवत् गीता में कहा है कि समस्त वृक्षों में 'वट वृक्ष' श्रेष्ठ है। इस वृक्ष को '*फाइकस बेंग्घालेंसिस*' (मोरेसी कुल) नाम से जाना जाता है। हिन्दी में इसे बरगद, वट वृक्ष, वरय बंगाली में बरय, संस्कृत में अवरोहा, बहुपदा के नाम से जाना जाता है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार वट वृक्ष को 'कल्पवृक्ष' भी कहा जाता है। यह भारत का 'स्थानिक वृक्ष' (एण्डेमिक) होने के साथ ही 'राष्ट्रीय वृक्ष' भी है। पश्चिम भारत के दो मुख्य शहरों के नाम 'वडोदरा' तथा 'वलसाड' इसी वृक्ष के नाम पर रखे गये हैं। कई शताब्दी पूर्व, देशाटन–पर्यटन करने वाले लोगों को इस वृक्ष के छाँव में (जिसमें प्रायः बनिया जाति या भारतीय सौदागर) जमा होकर व्यापार करते हुए दर्शाया गया है। पुर्तगालियों के द्वारा इस शब्द का प्रयोग बहुतायत भारतीय सौदागरों के लिए किया तथा पर्याय अंग्रेजों ने भी इसका इस्तेमाल सन् 1599 ई. से शुरु किया, तथापि सन् 1634 ई. से अंग्रेज लेखकों ने 'बैनयन ट्री', एक ऐसे वृक्ष जिसके नीचे भारतीय सौदागर अपना व्यापार किया करते थे, को आमतौर पर अपने लेखों में लिखने लगे। इस वृक्ष के द्वारा अत्यधिक छाया प्रदान किए जाने के कारण इसके नीचे ग्राम–सभाएँ, गोष्ठीयां तथा वस्तुओं का क्रय विक्रय हुआ करता था। यह सिलसिला आज भी जारी है। इस प्रकार इस वृक्ष का नाम 'बैनयन' पड़ गया।

यहाँ यह बताते हुए हमें गर्व हो रहा है कि ऐसा ही एक सर्वगुण सम्पन्न विशालकाय वट वृक्ष, पश्चिम बंगाल राज्य के आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में 22°33'36.84'' से लेकर 22°33'42.28'' उत्तरी अक्षांश तथा 88°17'8.6'' से लेकर 88°17'14.16'' पूर्वी देशांतर के मध्य (जिसका केन्द्र 22°33'38.58''उत्तरी अक्षांश तथा 88°17'11.47''पूर्वी देशांतर) पर है एवं समुद्र तल से 39 फीट की ऊँचाई पर अवस्थित होने के साथ सर्वाधिक वन की परिभाषा का अनुकरण भी करता है।

ऐसा कहा जाता है कि चेन्नई के अद्यार तथा बेंगुलूरु के रामोहल्ली का वट वृक्ष (क्रमशः 450 वर्ष तथा 400 वर्ष) इस उद्यान के विशालकाय वट वृक्ष की तुलना में अधिक उम्र के हैं, किन्तु उनका कोई ठोस आधार या प्रमाण अभिलेखित नहीं है। इस उद्यान की स्थापना सन् 1787 ई. में हुई तथा उससे 9 वर्ष पूर्व, सन् 1778 ई. में जेम्स फोर्ब्स द्वारा चित्रांकित चित्र (जिसे फोर्ब्स के ओरिएण्टेलिस मेमॉर्श, पुस्तक संख्या 1 तथा पेज 28 पर सन् 1813 ई. में प्रकाशित किया गया) में जिस प्रकार इस वृक्ष को दर्शाया गया है। उसके अनुसार चित्रांकन के समय इसकी अनुमानित उम्र लगभग 100 वर्ष रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकार उद्यान की स्थापना एवं उसके पूर्व के वर्ष को मिलाने पर इस वृक्ष की आयु 236 वर्ष होती है तथा चित्र के अनुसार उसमें 100 वर्ष को मिलाने पर इस महान वट वृक्ष की कुल उम्र 336 वर्ष होती है। सन् 1900 ई. में डेविड प्रैन ने अपनी रिपोर्ट में मुख्य तने की परिधि को 15 मी० अवलम्ब जड़ों (प्रौप रुट) की कुल संख्या 464, जिसमें कुछ अवलम्ब जड़ों की परिधि 3.5 मी० तथा वृक्ष के आच्छादन (कैनोपी) की परिधि को 377 मी० बतलाया है। सन् 1963 ई. में इस वट वृक्ष की ऊँचाई लगभग 20 मी. थी तथा सन् 1965 ई. में अवलम्ब जड़ों की कुल संख्या 1,044, वृक्ष के आच्छादन की परिधि 420 मी. और सन् 1999 ई. में अवलम्ब जड़ों की कुल संख्या 2,880 पायी गयी। इस प्रकार, इस वृक्ष को विश्व के समस्त जीवित वृक्षों की तुलना में सबसे अत्यधिक क्षेत्रफल पर आच्छादित होने तथा वानस्पतिक जगत में इसके विलक्षण एवं वृहद आकृति के कारण, सन् 1984 ई. में इसे गिनीज बुक में दर्ज किया गया। उस समय इस वृक्ष का फैलाव लगभग 15,665 वर्ग मी. (1.56 हेक्टेयर या 3.87 एकड़) क्षेत्रफल में था, जो अब बढ़कर 22,165 वर्ग मी. (2.21 हेक्टेयर या 5.47 एकड़) हो गया है। सन् 2004 ई. में उपग्रह से लिए गए छायाचित्र का भौगोलिक सूचना पद्धति (जी.आई.एस.) द्वारा अध्ययन किए जाने पर, इसकी परिधि की लम्बाई 1.08 किलो मीटर मापी गयी। अप्रैल, 2010 में छाती स्तर (1.2 मी.) पर 20 सें.मी. से अधिक परिधि वाले अवलम्ब जड़ों की गणना के अनुसार इनकी कुल संख्या 3,511 तथा वृक्ष के मध्य इसके शीर्ष की ऊँचाई 25 मी० थी ।

1. सन् 1778 ई० में जेम्स फोर्ब्स द्वारा चित्रांकित महान वट वृक्ष का चित्र 2. जी.आई.एस. द्वारा सन् 2004 में उपग्रह छायाचित्र में महान वट वृक्ष की परिधि

इस वृक्ष का अत्यधिक प्रसार या बढ़ना यहाँ की पारिस्थितिकी ऊष्ण–कटिबंधीय वर्षा वन के समान होने के साथ–साथ सरंक्षण के दृष्टिकोण से इसे दिया जाने वाला समुचित रख–रखाव ही मुख्य कारण हो सकता है । इसके फैलाव को दूर से देखने पर यह एक वृक्ष के जगह, छोटे जंगल जैसा दिखता है। ऐसे दुर्लभ एवं ख्याति प्राप्त इस एक वृक्ष वाले अद्भुद जंगल को देखने के लिए प्रति वर्ष भारत के विभिन्न प्रांतों के साथ ही विदेशों से लाखों की संख्या में शोद्यार्थियों, पर्यटकों एवं आम लोगों का आना होता रहता है। भारत में पाए जाने वाली पादप–सम्पदाओं के सर्वेक्षण, उनके बारे में जानकारी हासिल करने के साथ–साथ पेड़–पौधों के बारे में जन–जागरण, उनका संरक्षण एवं पुनरूस्थापना करने के उद्देश्य से सन् 1890 ई. में स्थापित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का 'संकेतक चिन्ह' (सिम्बल) भी यह विशाल वट वृक्ष ही है, जिसकी प्रशासनिक देख–रेख में यह उद्यान कार्य करता है। दिनांक 01.01.1963 को इस उद्यान के रख–रखाव तथा भविष्य में इसके उत्थान के लिए इसे पश्चिम बंगाल राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार को सौंपा तथा इसके लिए आयोजित समारोह भी इसी वृक्ष के नीचे सम्पादित किया गया।

यह शायद किसी को नहीं पता कि इस वृक्ष को यहाँ किसने लगवाया, किन्तु ऐसा कहा जाता है कि यह वृक्ष क्रमशः पहले किसी जंगली खजूर (*बोरासस फ्लाबेलिर्फ* एल.) के ऊपर उगा तथा जब उस पेड़ ने अपना जीवन–काल पूरा कर मृत्यु को प्राप्त किया तब स्वतः यह वट वृक्ष स्थापित हो गया। सन् 1803 ई. में जब लार्ड वेलेंसिया इस उद्यान में आए तब उन्होंने इस महान वट वृक्ष को देख कर *"द फाइनेस्ट ऑब्जेक्ट इन द बोटेनिक गार्डेन इज ए नोब्ल एस्पेसीमेन ऑफ द फाइकस बेंग्घालेंसिस,."* टिप्पणी की। जॉर्ज किंग ने अपने शताब्दिक रिर्पाट में लिखा है कि सन् 1864 ई. तथा

1867 ई. में इस उद्यान के ऊपर आये बवंडर ने इस वट वृक्ष सहित लगभग 2,000 वृक्षों को काफी नुकसान पहुँचाया तथा इसकी अनेक शाखाएँ टूट कर नष्ट हो गई । तत्पश्चात सन् 1916–17 ई., 1926–27 ई. तथा 1940–41 ई. के बीच आये चक्रवाती तूफानों ने यहाँ तक कि सन् 2007 ई. के 'आइला तूफान' के कारण भी इस उद्यान के हजारों वृक्ष या तो उखड़गए या यथास्थान से झुक गए। परन्तु इस विशाल वट वृक्ष पर इन तूफानों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सन् 2008 ई. में इसकी आकृति की तुलना में वृक्ष के पश्चिम भाग की एक छोटी शाखा जीवन–काल के सामान्य प्राकृतिक कारण से स्वतः टूट गई पर इसके कारण इसके बाह्य–आकृति में कोई बदलाव नहीं आया। ऐसा उल्लेखित है कि सन् 1925 ई. में जब इसके मुख्य तना जिसकी परिधि 1.7 मीटर पर 16.5 मीटर थी को काष्ठ–अपघटित करने वाले फफूँदों (वूड रॉटिंग फन्जाई) के अतिरिक्त अन्य फफूँदों के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए काट कर निकाल दिया गया। तत्पश्चात, वट वृक्ष के मध्य भाग में एक बहुत बड़ा भू–भाग खाली हो गया तथा कालांतर में उस स्थान पर संगमरमर का एक त्रिभुजाकार स्मारक जिसके हर पटल के ऊपर क्रमशः हिंदी, बंग्ला तथा अंग्रेजी भाषा में मुख्य तने के निकाल दिए जाने के समय इस वृक्ष की स्थिति को वर्णित कर स्थापित किया गया है। मुख्य तने के निकाल दिए जाने के बाद भी आज यह वृक्ष अपने अनेक अवलम्ब जड़ों के सहारे न सिर्फ जीवित है वरन् दिन–प्रतिदन आगे बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार इस वट वृक्ष को 'पथिक वृक्ष' (ट्रेवलर्स ट्री) भी कहा जाता है।

सामान्यतः इस वृक्ष में एक विचित्र अनुकूलन व्यवस्था होती है, जिसके कारण इसकी अवलम्ब जड़ें शाखाओं से उत्पन्न होकर धरातल के अन्दर स्थापित होने के उपरांत मुख्य तने की तरह स्वतंत्र रुप से कार्य करती हैं । इस वृक्ष की शाखाओं को टूटने से बचाने के लिए, नवजात धागेनुमा अवलम्ब जड़ों को पर्वसंधि विहीन बाँस, जिसके मध्य भरे हुए जैविक खाद तथा मिट्टी के अन्दर प्रविष्ट कराकर विशेष आधार दिया जाता है। इस प्रकार जड़ें जब बाँस के सहारे जमीन के नीचे चली जाती हैं तब बाहर से दी जा रही खाद्य–सामग्री को निकाल दिया जाता है। ऐसे अवलम्ब जड़ें प्रौढ़ होकर शाखाओं को अत्यधिक सहारा देने के साथ–साथ तना की तरह कार्य भी करती हैं। गर्मी के दिनों में हजारों दर्शकों के लिए यह वट अपनी गूँथी शाखाओं तथा उनकी छोटी–छोटी टहनियों पर अण्डाकार से दीर्घ–वृत्ताकार एवं अधोभाग में हृदय के आकार या गोलाई वाले चर्मिल पत्तियों के फलतः अत्यधिक छाया प्रदान करता है। यह विभिन्न प्रकार के पक्षियों, गिलहरियों, सर्पों तथा स्तनपायी जन्तुओं के साथ–साथ दूसरे सूक्ष्म तथा बृहत् जीवों के लिए आवास प्रदान करने के साथ ही यह सूक्ष्म पादपों जैसे जीवाणु, शैवाल (काई), फफूँद, शैवाक (लाइकेन) तथा अन्य अपुष्पी–पादपों (क्रिप्टोगेम्स) जैसे ब्रायोफाइट्स, टेरिडोफाइट्स तथा अन्य पादपों को भी अधिपादप की तरह तथा अन्य परजीवीयों के लिए आधार प्रदान करता है। इस प्रकार यह महान वट वृक्ष एक छोटे से क्षेत्रफल में अत्यधिक एवं सघन जैव–विविधिता (बायो–डाइवर्सिटी) को धारण करने के साथ–साथ आस–पास के परिस्थितिकी को संतुलित रखने के साथ जीवों को सुरक्षा भी प्रदान कर रहा है। अवलम्ब जड़ों के ऊपर असंख्य शैवाकों (लाइकेन) की उपस्थिति उक्त स्थान पर प्रचुर ऑक्सीजन इस वृक्ष के द्वारा उत्पन्न किए जाने को प्रमाणित करता है । इसके पत्ते तथा फल को पशुओं तथा पक्षियों के लिए चारा एवं खाद्य–सामग्री के रुप में व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु पादपों के संरक्षण को ध्यान में रखते हुए, इस उद्यान में किसी भी पादप को नुकसान पहुँचाने की अनुमति नहीं है। इस उद्यान के बाहर तीन तरफ पेट्रोल–डीजल से चलने वाले अत्यधिक वाहनों के कारण उनसे निकलने वाले धुँए में मिश्रित कार्बन–डायऑक्साइड को यह वृक्ष अवशोषित कर ऑक्सीजन प्रदान करने के साथ–साथ अन्य वायु प्रदूषकों जैसे धूल–कण, सल्फर–डाइ–ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड इत्यादि को कम कर यहाँ के वातावरण को संतुलित करता है। इसका अवलम्ब जड़–विन्यास मिट्टी के क्षरण को रोकता है ।

आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार, वट वृक्ष को उदर के ज्वलंशीलता को कम करने, पित्ताशय की चिकित्सा, व्रण (अल्सर), मुहासों, उल्टी, योनी–सम्बन्धी शिकायत, ज्वर, सूजन, कोढ़इत्यादि तथा यूनानी पद्धति के अनुसार इसका दूध या रस कामोद्दीपक की तरह, बलवर्धक, व्रण (घाव) को अच्छा करने, प्रौढ़ता, ताल (लेंस) के सूजन, बवासीर, नासिका व्याधि, सूजाक (गॉनोरीया), इत्यादि के उपचार के लिए व्यवहार किया जाता है । अवलम्ब जड़ रुधिर के स्राव को रोकने में, पित्ताशय की चिकित्सा, उपदंश, आँव, यकृत में सूजन इत्यादि की चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल मधुमेह, पत्ता एक्जिमा के विपरित तथा दूधिया रस बलवर्धक औषधि की तरह काम करती है ।

इस प्रकार, यह विशाल वट वृक्ष को एक अदभुद जंगल की भाँति हुगली नदी के किनारे हावड़ा शहर ही नहीं वरन् भारत एवं विश्व के लिये अमूल्य धरोहर है। इस उद्यान की स्थापना के समय से लेकर आज तक प्रकृति की इस बहुमूल्य धरोहर को संरक्षित करने का महान कार्य करने वाले संरक्षक प्रशंसा के पात्र हैं, आशा है कि हम समस्त जन भावी पीढ़ी के लिये प्रकृति की इस धरोहर को इसी प्रकार संजों कर रखने में सफल रहेगें।

———

वनस्पति वाणी अंक 23 : 139-140(2014)

वृक्षों पर बसेरा

संजीव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वृक्ष हमारे जीवन का आधार हैं और शरणागत को शरण देते हैं। यह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से हमारी सहायता करते हैं। इन पर बड़े– बड़े उद्योग आधारित हैं। यह प्रदूषण दूर करने, वर्षा लाने एवं मृदा अपरदन रोकने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हजारों पशु पक्षी वृक्षों पर घोंसला व आवास बना कर जीवन यापन करते हैं। विश्व के कई स्थानों पर मनुष्य भी वृक्षों के ऊपर घर बनाकर रहता है।

वृक्षों पर विभिन्न प्रकार के पक्षी तरह तरह से अपनें घोंसलें बनाते हैं। कुछ पक्षी जीवित या सुखे वृक्ष के तनों में विवर बना कर अपना घोंसला बनाते है। तोंता, कठफोडा, उल्लू ,धनेश, कोडिल्ला व अन्य पक्षी विवर बनाकर अपना घोंसला बनाते हैं। विवर में आवश्यकतानुसार घासफूस व रुई इत्यादि डालकर विवर को आरामदायक व अंडे देने लायक बना लेते हैं। कुछ कठफोडे एक साल के लिए ही विवर बनाते हैं एवं लाल चोंच वाले कठफोडे एक साल से अधिक दिन के लिए भी वृक्ष में घोंसले बनाते हैं। ये पक्षी घोंसले बनाते समय सुरक्षा का भी ख्याल रखते हैं, जिसके लिये वे विवर के सामने टहनी से गेट बना देते हैं, जिससे सांप आसानी से न घुस सके। विवर का मुंह भी बहुत छोटा रखते हैं जिससे अन्य प्राणी प्रवेश न कर सकें। कुछ कठफोडे अपने विवर के मुख में चिपचिपा पदार्थ सटा देते हैं तथा कुछ कठफोडे अपने विवर के सामने मरा हुआ दुर्गन्धयुक्त कीट एवं कीचड़ रख देते हैं। कुछ पक्षी वृक्षों में विवर बनाते समय सुरक्षा कारणों से कई द्वार बना लेते हैं। धनेश पक्षी अपना सारा समय वृक्षों के ऊपर गुजार देती है, इस प्रकार ये पक्षी वृक्षों में घोंसला बनाकर जीवन यापन करते हैं।

कुछ पक्षी वृक्षों पर प्यालानुमा आकार के घोंसले बनाते हैं। घोंसले बनाते समय घास फूस सूखे पत्ते टहनियां उपयोग में लाते हैं । घोंसलों को मजबूत बनाने के लिए पक्षी मकड़ी के जाल व लार का उपयोग करते हैं। सुरक्षा कारणों से पक्षी अपने घोंसले वृक्ष की ऊपरी टहनियों में बनाते हैं। चील जैसे बड़े पक्षी प्लेटनुमा घोंसला बनाते हैं जो आकार में बड़े होते हैं। कुछ पक्षी वृक्षों पर बड़ी ही बुद्धितापूर्ण ढंग से घोंसले बनाते हैं, बया नामक पक्षी ताड़, खजूर व ऊंचे वृक्षों के लटकते हुए टहनियों में घोंसला बनाते है। सुरक्षा कारणों से बया अपने घोंसले लटकते कंटीलें टहनियों एवं जलाशय के किनारे बनाते हैं, जिससे बाहरी आक्रमण से बचा जा सके। ये घास, धान व गेंहू जैसे फसलों के तिनकों से बड़े जतन से अपना घोंसला बुनती है। घोंसलों में मरे तितली,मरे कीट व मेढ़क के बच्चे लाकर रख देते हैं जिससे अपने शावकों को खिला सके। ये झुंड में रहना पंसद करते हैं, इसलिए एक इलाके में इनके अनेक घोंसले देखे जा सकते हैं। अफ्रिका में इनके घोंसले एक एक टन वजन वाले पाये गये हैं। घोंसले के अंदर मिट्टी एवं गोबर का लेप भी पाया जाता है। प्रकाश के लिए घोसलों की दीवारों में पक्षी जुगनू नामक कीट को बडे सटीक ढंग से गाड देते हैं। कंटीली झाडियों में भी पक्षी घोंसले बनाना पसन्द करते हैं। दर्जिन पक्षी अपना घोंसला बैंगन जैसे झाड़ीनुमा कंटीले पौधों में दो पत्तों को सिलकर बनाती है। इस प्रकार हजारों पक्षी पेड़ो पर घोंसला बनाते हैं। पक्षियों के घोंसले बनाने के लिए उस क्षेत्र में अनुकूल वृक्ष रोपित किये जायें व वृक्षों का संरक्षण किया जाए तो आवास की कमी के कारण लुप्त होते अनेक पक्षियों का संरक्षण किया जा सकता है ।

पक्षी ही नहीं वरन् काफी संख्या में वन्यजीव भी अपना बसेरा वृक्ष के ऊपर बनातें हैं। गोरिल्ला, चिंपाजी, गिलहरी कई प्राणी अपना घर वृक्ष के ऊपर बनाते हैं। गिलहरी सर्दियों से बचने के लिए वृक्षों पर कोटर बनाकर निवास करती है एवं कोटर को आरामदायक बनाने के लिए कोटर में रुई, खाने के लिए फसल के दाने भी जमा करके रखती है। गहन खोज, अवलोकन व अध्ययन से पता चलता है कि गोरिल्ला, चिम्पैंजी, बन्दर व लंगूर जैसे प्राणियों को वृक्षों पर घोंसलानुमा आवास बनाने की आदत है। फल, कंदमूल व जल की खोज में ये प्रायः प्रत्येक दिन अपना स्थान व डेरा परिवर्तित करते रहते है। जहाँ रात बितानी होती है उस इलाके के जंगल में वृक्षों के ऊपर टहनियां पत्तियां आदि तोडकर प्लेटफार्म जैसा बना लेते

है एवं वहीं सो जाते है। प्लेटफार्मनुमा घोंसले मजबूत होते है व इस प्रकार के घोंसले बनाने में वे पांच मिनट तक समय लेते है। लंगूर जाति के ये प्राणी अपने पूरे जीवन काल में 10 से 15 हजार घोंसले बनाते हैं।

कहीं कहीं मनुष्य भी अपना घर वृक्षों पर बनाते हैं। पापुया न्यूगिनी में मनुष्य की आदिम जातियाँ ऊंचे वृक्षों पर अपना घर बनाते हैं। बताया जाता है कि वे अपने प्रतिद्वन्दी गुटों, जंगली जानवरों, मच्छरों एवं अन्य जहरीलें कीटों से बचने के लिए ऐसा करते हैं। इन्डोनेशिया की कोरवाई आदिम जाति उपरोक्त कारणों से ही अपना घर वृक्षों पर बनाती आई है। ये आदिम जातियाँ बहुत समझदार होती हैं। आर्द्रतापूर्ण गर्मी से बचने एवं अत्यधिक वर्षा होने के कारण धरातल कीचड़युक्त होने के कारण वे अपना घर वृक्षों पर बनाते हैं। ये वृक्ष आवास 6 से 12 मीटर तक ऊंचे होते हैं। कुछ घर तो 35 मी० ऊंचे वृक्षों पर बनाई गई है। ये आदिम जातियां निकट के कई वृक्षों को बांध कर एक घर बनाते हैं जो काफी मजबूत होते हैं। वृक्षों पर घर बनाते समय बट वृक्ष को मध्य में रखना पसन्द करते हैं। टहनियों, पत्तों व ताड के पत्तों से ये चबुतरा बनाते है, इन घरों में 12 आदमी तक रह सकते हैं, उतरने के लिए सुंदर व मजबूत सीढी बनाएं जाते है। सचमुच ये बहुत अद्‌भुत व सुन्दर होते है। भारत के कर्नाटक की एक आदिम जाति जेनु कुर्बा के लोग भी वृक्षों पर घर बनाकर रहते हैं। वे ऐसा जंगली जानवरों के भय विशेषकर हाथी के भय से करते हैं। ये ऊंचे घर सुरक्षा टावर के रुप में भी काम करते हैं। आदिम जाति अपना घर बांस व उसके पत्तों की सहायता से बनाते है। भारत के ही उत्तर पूर्व स्थित राज्य मेघालय में कुछ आदिम जातियाँ बांस व उसके पत्तों से वृक्षों के ऊपर अपना घर बनाते हैं। इन लोगों का घर एवं गांव प्राकृतिक रुप से काफी साफ सुथरा रहता है। इतिहास के पन्नों को उलटने से ज्ञात होता है कि कई बड़े–बड़े योद्धाओं ने प्रकृति व उसके जंगल को कवच बनाकर अपने शत्रुओं से लड़ाई लड़ी। छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप व तितुमीर जैसे वीर योद्धाओं के नाम इस सिलसिले में लिये जा सकते हैं। वैसे भी बाढ़ इत्यादि आने से मनुष्य व जंगली जीवों को कहीं शरण न मिलने पर वृक्षों में ही आश्रय लेना होता है। पक्षी बीज संरक्षण का उत्तम प्राकृतिक उपाय है। इस प्रकार हम देखते है कि पक्षी जहाँ वृक्षों व झाडियों को घरोंदों के रुप में उपयोग करते है वहीं मनुष्य भी बसेरा के रुप में उपयोग करने में कहीं से भी पीछे नहीं हैं। इसके लिए पक्षी व मनुष्य इलाके के भौगोलिक संरचना,आर्द्रता,तापमान एवं भोजन व जल की उपलब्धता का भी भरपूर ख्याल रखते हैं। पक्षी का घरोंदा हो या मनुष्यों का वृक्षों में जीवन यापन यह केवल आवश्यकता एवं सुलभता मात्र नहीं बल्कि इसमें विज्ञान भी समाहित है जो वृक्षों से जुड़ा है।

शुद्ध खाद्यान्न, सादा जीवन,
स्वच्छ वातावरण, लम्बा जीवन
सुन्दर विचार, आत्मा की पुकार
यही है हरे–भरे भारत की पुकार।

विस्मयकारी वनस्पति जगत की रोचक जानकारियां

प्रशान्त के. पुसालकर एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

- दक्षिण अमेरिका के पेरू में पायी जाने वाली रैननकुलेसी कुल की *लेक्कोपेटालम जाइगेंटिकम* नामक वनस्पति के फूलों में 10000 स्त्रीकेसर होते हैं, जो वनस्पति जगत में किसी एक पुष्प में सर्वाधिक पाये जाने वाली स्त्रीकेसर संख्या है।
- पुष्पीय वनस्पतियों में सबसे लम्बे परागकोश विषुवृत्तीय दक्षिण अमेरिका की *फेनाकोस्पर्मम ग्वायनेन्से* नामक स्ट्रेलिट्जिऐसी कुल की वनस्पति में पाए जाते हैं, जो कि 7 से.मी. लम्बे होते हैं।
- बॉम्बेकेसी कुल के *एडेनसोनिया* वंश की जातियों में पुष्प जो की संध्याकाल के समय खिलते हैं, उन्हें पूरी तरह से खिलने के लिये मात्र 30 सेकेंड का समय लगता है।
- सर्वाधिक बीज निर्माता का कीर्तिमान ऑकिडेसी कुल के नाम है, जहाँ एक ही फली में लाखों बीज होते हैं। हिड्नोरेसी कुल के फलों में बीजों का संख्या 90,000 पाई गई है।
- विषुवृत्तीय अमेरिका में पाई जाने वाली *रिलरीसिडीया सेपियम* नामक वनस्पति में फल इतने जोर से फटते हैं कि बीज 40 मीटर तक फैल जाते हैं।
- पूर्वी मलेशिया की *फाल्काटारिया मोलूकाना* नामक मटर कुल की वनस्पति में प्रतिवर्ष 5 मी० की लंबाई एवं 15 सेंटीमीटर चौड़ाई की बढ़ोत्तरी होती है। 1975 में सबाह में इसकी लम्बाई 13 महीनों में 10.74 मीटर दर्ज की गई जो एक विश्व कीर्तिमान हैं।
- एमस्टरडॅम वनस्पति उद्यान में 300 साल पूर्व रोपित *एनसेफेलार्टस अल्टेनस्टेनी* नामक जैमिएसी कुल की जाति को गमले में लगी दुनिया की सबसे पुरानी वनस्पति होने का सम्मान प्राप्त है।
- दक्षिण अफ्रिका में पाई जाने वाली *डायोस्कोरीओफाइलम क्युमिन्सी* नामक डायोस्कोरीएसी कुल की वनस्पति में मोनेलिन नामक वसा अम्ल पाया जाता है जो शर्करा की तुलना में 9000 गुना अधिक मीठा होता है।
- मध्य ऑस्ट्रेलिया के मैदानों की *इरिमोफिला डट्टोनी* नामक स्क्रोफुलेरिएसी वंश की जाति कीटाणुनाशक होती है। इसी वजह से कंगारूओं को इस पर अक्सर अपना शरीर रगड़ते हुये या इसकी झाड़ियों पर लोटते हुए देखा जा सकता है।
- विषुवृत्तीय अमेरिका के जंगलों में संग्रहित ऐरेसी वंश की *डाइफेनबेकीया सेंग्विनी* वनस्पति का उपयोग गुलामों पर अत्याचार के लिये किया जाता था। इस वनस्पति की डंडीयां चबाने से मनुष्य अस्थायी रूप से गूंगा एवं बंध्य बन जाता है।
- भारत में सड़कों के सौन्दर्यकरण क लिए लगाई जाने वाली *जॅकरेण्डा माइमोसिफोलिया* नामक वृक्ष जाति के हमलावर होने के कारण इसके रोपण पर अफ्रीका में पाबंदी लगाई गयी है।
- ग्वाबा के जंगलों में पाई जाने वाली *इंगा वेरा* नामक जाति परागण के लिहाज से एक यशस्वी जाति है। इसके फूलों में दिन के समय जहाँ सुक्रोज शर्करा युक्त शहद के निर्माण से कीट, तितली एवं पक्षियों को आकर्षित किया जाता है, वहीं रात में इसे हेक्जोस शर्करा में परिवर्तित कर चमगादड़ों की परागण में भागीदारी सुनिश्चित की जाती है।
- पश्चिमी उत्तर अमेरिका की *लेविसिया रीडीवीवा* नामक वनस्पति में दो साल का भयंकर सूखा एवं खौलते पानी में डालने के पश्चात् भी जिंदा रहने की अद्भुत शक्ति होती है।
- विषुवृत्तीय अमेरिका के जंगलों में पाई जाने वाली *पोसोक्वेटीया लॅटीफोलिया* नामक वनस्पति के फलों को परिपक्व होने के लिये 2 साल 8 महीने का समय लगता है।
- *पोर्च्युलाका ओलेराशिया,* नामक जाति जिसकी गणना दुनिया की हमलावर खरपतवारों में की जाती है, उसमें उपयोगी ओमेगा–3–फैटी एसिड सर्वाधिक मात्रा में पाए जाते हैं।

- दक्षिण अफ्रिका के जंगलों में पाई जाने वाली ऑर्किडेसी कुल के *माइक्रोसेलिया* वंश की अधिपादप जातियों की जड़ों में प्रकाश संश्लेशण करने की क्षमता होती है।
- *माइरिकेरिया* वंश की जातियों के फूलों में हर वर्ष अपना लिंग परिवर्तन संभव होता है।
- जहाँ वनस्पतियों की कई जातियों में परागण उनसे जुड़े किसी विशिष्ट परागण प्रतिनिधियों पर निर्भर होता है, वहीं ब्राजील के जंगलों में पाई जाने वाली *नेक्टॅन्ड्रा परप्यूरिया* नामक वनस्पति में कीटों की 99 जातियां परागण करने में मददगार होती हैं।
- पुष्पी वनस्पतियों में सबसे बड़ा पुष्पकोश दक्षिण अफ्रिका में पाई जाने वाली लोरेन्थेसी कुल की *मोक्विनिएला रूब्रा* नामक जाति में होता है, जो 48 मिमी. लम्बा होता है।
- पुष्पी वनस्पतियों में सबसे बड़ा भ्रूण अमेरिका में पाई जाने वाली मटर कुल की वृक्ष जाति *मोरा ओलेइफेरा* में पाया जाता है जो 7 इंच लम्बा तथा 5 इंच चौड़ा होता है।
- द्विबीजपत्री वनस्पतियों में सबसे लम्बे बीज विषुवृत्तीय अमेरिका में पाई जाने वाली मटर कुल की जाति *मोरा मेजिस्टोस्पर्मा* में होते हैं, जो 18 सेमी लम्बे एवं 12 से.मी. चौड़े होते हैं।
- यूफोर्बिएसी कुल की ज्यादातर जातियां जहाँ दुधिया रंग के स्रावण के लिये ज्ञात है, वहीं बोर्निओ में पाई जाने वाली *बोर्निओडेन्ड्रॉन एनिग्मेटिकम* नामक जाति की असामान्य विशिष्टता उसका लाल रंग का स्रावण होता है।
- अमेजॉन के जंगलों में स्थानिक कॅरिओकॅरेसी कुल की सभी 23 जातियों में परागण चमगादड़ों द्वारा किया जाता है।
- मडागास्कर के जंगलों में पाई जाने वाली *बॉबगुनिया मादागास्करेन्सिस* नामक जातियों में पाया जाने वाला सेपोनिन त्वचा पर संक्रमण करने वाले कवक जातियों के खिलाफ सबसे कारगर प्रतिरोधक रसायन है।
- जरायुजता जो की समुद्रतट पर पाई जाने वाली मेन्ग्रूव समूह की विशिष्ट विशेषता है, वह सिर्फ इसी समूह तक सीमित नहीं है बल्कि पेन्टास्टेमॉनेसी कुल की *पेन्टास्टेमॉन सुमात्राना*, इरीडेसी कुल के *डाएटेस* वंश की कुछ जातियों, घास कुल की *पोआ बल्बोसा, पोआ हारे, पोआ अरनोल्डी, पोआ अल्पिना, मेलोकान्ना* जातियों एवं पर्णांग जाति *अस्प्लेनियम बल्बीफेरम* में भी पाई जाती हैं।
- विषुवृत्तीय अमेरिका के जंगलों में नदी तट पर पाई जाने वाली *एंडलिचेरीया* वंश की कुछ जातियों में बीज प्रसार मछलियों द्वारा किया जाता है।
- पूर्वी भूमध्यसागर एवं मध्य एशिया में पाई जाने वाली ऐरेसी कुल की *एमिनियम* वंश की जातियों में फलक्रम अनेक बार जमीन के अंदर ही विकसित होता है, तथा बाद में लम्बाई बढ़कर यह सतह तक पहुँच जाता है, जिससे बीज प्रसार में सहायता मिलती है।
- मलेशिया में पाई जाने वाली विस्केसी कुल के *जिनालोआ* वंश की जातियां लोरेन्थेसी कुल की परजीवी जातियों पर पर–परजीवी होकर रहती हैं।
- शकरकंद (*आइपोमिया* बटेटस) से प्राप्त रेशों के उपयोग से टोयाटा कंपनी ने जैव प्लास्टिक (जैव विघटित प्लास्टिक) का निर्माण किया है, जिसे 'टोयोटा इको प्लास्टिक' के नाम से पहचान कर इनका उपयोग टोयोटा कार के निर्माण में किया जा रहा है।
- 'ब्लॅक आयरनवुड' के नाम से मशहूर *क्रुजिओडेन्ड्रान फेरेयम* की लकड़ी दुनिया में सबसे ज्यादा वजनी होती है। इसका वजन 1300 किग्रा./मीटर^3 होता है, और यह पानी में डूब जाती है।
- बोर्निओ के जंगलों में पाई जाने वाली *युसिडेरोजाइलॉन ज्वागेरी* नामक वनस्पति की लकड़ी 1100 किग्रा./मीटर^3 वजन की होती है। 'बोर्निओ आयरनवुड' के नाम से मशहूर यह लकड़ी जीवाणु, कवक, कीट एवं समुद्री कीटों के प्रति प्रतिरोधक होती है, जमीन पर यह 100 साल तक तथा समुद्र में 20 साल तक बिना किसी नुकसान के उपयोग में लाई जा सकती है।
- 'लावा कैक्टस' के नाम से विख्यात गेलापेगॉस द्वीप पर पाई जाने वाली *ब्रॅकीसेरस नेसिओटिकस* नामक नागफनी की जाति को दुनिया के उच्चतम् विषम अधिवासों में पाई जाने वाली जाति होने का दर्जा हासिल है। यह जाति ज्वालामुखी के लावे के सुखने पर बने क्षेत्र में पायी जाती है।

- ग्विनीया में पाई जाने वाली *कॅमोएन्सिया स्कॅन्डेन्स* नामक लता के फूल मटर कुल में सबसे बड़े होते हैं। इनकी चौड़ाई 20 से.मी. तक होती है।
- अमेरिका में पाया जाने वाला *कॅरेया इलिनॉयनेन्सिस* को सबसे प्रथम राज्य वृक्ष घोषित होने का सम्मान हासिल है। 1919 में अमेरिका के टेक्सॉस राज्य ने इसे अपना राज्य वृक्ष घोषित किया था।
- आस्ट्रेलिया में पाए जाने वाले *कॅस्टानोस्पर्मम ऑस्ट्रेल* नामक मटर कुल की वृक्ष जाति में पाये जाना वाला 'कॅस्टानोस्पर्मिन' अल्कालॉइड एड्स के विषाणुओं को रोकने में समर्थ होता है।
- अमेरिका में स्थित *हमामेलिस वर्जिनियाना* वनस्पति के बीजों को अंकुरित होने के लिए डेढ़ से दो साल का समय लगता है।
- मलेशिया के जंगलों में स्थित जेरनेरिएसी कुल की *हेन्केलिया प्लॅटीपस* नामक वनस्पति में प्रतिवर्ष सिर्फ 4 ही नवीन पत्तियों का अवस्फुटन होता है।
- अमेरिकन जाति *हेस्पेरोयुक्का व्हिप्लेई* के पुष्पक्रम की लम्बाई 14 दिन में 3.65 मीटर दर्ज की गई थी जो एक विश्व कीर्तिमान है।
- अमेरिका की मशहूर इंग्लिश फिल्म उद्योग 'हॉलीवूड' का नाम कैलिफोर्निया की पहाड़ियों पर पाई जाने वाली *हेटरोमेलेस सॅलिसिपफोलिया* नामक रोजेसी कुल की जाति पर आधारित है, जिसका उपयोग मशहूर 'होली' वृक्ष की तरह किया जाता है।
- वनस्पति की अधिकतर जातियां अपने खुशबुदार फूलों के लिये जानी जाती हैं वहीं अनेक जातियाँ अपनी बदबू से भी पहचानी जाती हैं। *रेफ्लेशिया अरनोल्डी* (सड़े मांस), *ऑस्ट्रोवेलिया स्पीसीज* (सड़ी मछली), *मोस्डेवालिया स्पीसीज* (सड़े मांस) जैसी गंध के लिये जानी जाती हैं।
- दक्षिण–पूर्व अमेरिका में पाई जाने वाले *रैफिडोफाईलम हिस्ट्रक्स* नामक नारियल कुल की जाति में परागण घून द्वारा किया जाता है।
- 'टेलीग्राफ प्लॉन्ट' के नाम से मशहूर *कोडारिओकॅलिक्स मोटोरीयस* नामक विषुवृत्तीय एशियाई क्षुप जाति के बड़े पत्तों के नीचे स्थित दो पार्श्विक पत्तियों में तापमान, सूर्यप्रकाश एवं ध्वनी बदलावों के जवाब में घूमने एवं बंद होने की क्षमता होती है।
- पश्चिमी अमेरिका में पाई जाने वाली *पोटेन्टिला अरगुटा* नामक वनस्पति में अपनी जड़ों में फंसे संधिपाद प्राणियों के शरीर से प्रोटीन चूसने की क्षमता होती है।
- न्यू ग्वेना में पाई जाने वाली *स्कोलोपिया निटीडा* नामक वृक्ष जाति के सभी फूल एक साथ खिलते हैं।
- विषुवृत्तीय अमेरिका में पाए जाने वाले नारियल कुल के वृक्ष *फाइटोलेफस मेक्रोकार्पा* एवं *फा. एक्वेटोरिआलिस* के बीज दुनिया में सबसे अधिक कठोर होते हैं। 'आइवरी नट्स' के नाम से प्रसिद्ध इन बीजों का उपयोग बिलीयर्ड बॉल, बटन, डाईस इत्यादि बनाने में किया जाता है।
- भारत में 'जीवन वृक्ष' या 'कल्प वृक्ष' के नाम से विख्यात नारियल (*कोकोस न्यूसिफेरा*) वृक्ष को दुनिया में सर्वाधिक बहुमुखी प्रतिभाशाली वृक्ष होने का सम्मान प्राप्त है। इसके जीवन उपयोगी योगदान को सराहने के लिये हर साल एशियन एवं पेसेफिक कोकोनट कम्युनिटी अपने स्थापना दिवस 2 सितम्बर को विश्व नारियल दिवस के रूप में मनाती है। फिलिपाइन्स की विश्वविख्यात कोकोनट पैलेस कोर्ट का निर्माण मुख्यतः नारियल वृक्ष के उपयोग से किया गया है एवं इमारत नारियल को समर्पित है।

भारतीय शैवाल अनुसंधान क्षेत्र में प्रो. एम. उमामहेश्वर राव का योगदान

एस. के. यादव एवं एम. पलनिसामी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयम्बटूर

प्रो. एम. उमामहेश्वर
1937 - 2012

वनस्पति विज्ञान की विभिन्न शाखाओ में शैवाल विज्ञान भी एक महत्वपूर्ण शाखा है। यूँ तो हमारे देश में शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान की शुरुआत का श्रेय विश्व प्रसिद्ध शैवाल विज्ञानी प्रो. एफ. ई. फ्रिश्च के शिष्य एवं भारतीय शैवाल के जनक प्रो. एम. ओ. पी. आयंगर (1886 – 1963) को दिया जाता है। लेकिन प्रो. आयंगर के बाद उनके अनेकों शोद्यार्थियों ने वनस्पति विज्ञान के इस क्षेत्र में अपना योगदान देते हुए शैवाल विशेषज्ञों की एक पीढ़ी तैयार कर शैवाल विज्ञान को अनुसंधान की मुख्य धारा से जोड़ा। इन्हीं विशेषज्ञों में से एक हैं प्रो. एम. उमामहेश्वर राव।

प्रो. उमामहेश्वर राव का जन्म 8 मार्च, 1937 को दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश राज्य के पश्चिमी गोदावरी जिले के तनुकू नामक स्थान पर हुआ था। उनकी माता का नाम लक्ष्मी नरसम्मा एवं पिता का नाम ब्रमानन्द चारी था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा आंध्र प्रदेश में ही एलुरु नामक स्थान पर प्राप्त की। तत्पश्चात, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापत्तनम से बी.एस–सी. एवं एम. एस–सी. की उपाधियाँ प्राप्त की। इसके बाद सन् 1964 में वहीं से प्रसिद्द शैवालविज्ञ टी. श्रीरामुलू के मार्ग दर्शन में विशाखापत्तनम तट के अंतर्ज्वारिय शैवाल की पारिस्थितिकी अध्ययन (*An ecological study of intertidal algae of Visakhapatnam coast*) पर अनुसंधान कर पी.एच.डी. की उपलब्धि हासिल की। उन्होंने अपने पेशे की शुरुआत आंध्र विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में प्रदर्शक (डेमोंस्ट्रेटर) के रूप में की थी। इसके बाद सन् 1964 में केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान, तमिलनाडु में रामेश्वरम स्थित मंडपम कैम्प में सहायक मत्स्य वैज्ञानिक (असिस्टेंट फिशरी साइंटिस्ट) के रूप में एक दशक से भी ज्यादा समय तक अपना योगदान दिया। इसके बाद वे पुनः शिक्षा के क्षेत्र में अपना योगदान देते हुए सन 1973 में आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापत्तनम में वनस्पति विज्ञान विभाग में व्याख्याता (लेक्चरर), सन 1976 में रीडर एवं सन 1985 में प्रोफेसर के रूप में उन्होनें अपनी सेवाएं दी। इस दौरान उनके मार्ग निर्देशन में कई विद्यार्थियों ने डॉक्टरेट (पी.एच.डी.) एवं एम.फिल. की उपाधियाँ प्राप्त की।

भारतीय शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में प्रो. राव का योगदान काफी सराहनीय रहा है। उनका मुख्य कार्यक्षेत्र समुद्री शैवालों की पारिस्थितिकी (इकोलॉजी), वर्गिकी (टैक्सोनॉमी), संवर्धन एवं कृत्रिम कृषि रहा है। उन्होंने यू.जी.सी., डी.बी.टी., एम.इ.एस. इत्यादि द्वारा प्रायोजित कई परियोजनाओं को सफलता पूर्वक संचालित किया। इसके अलावा, अपने अनुसन्धान के दौरान उन्होंने 100 से भी ज्यादा शोधपत्रों को विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। उनके द्वारा प्रकाशित अधिकांश आलेखो की ई प्रिंट प्रतियां सी. एम. एफ. आर. आइ., कोचीन की वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ प्रमुख पत्रिकायें निम्नलिखित हैं– द इकोनॉमिक सी वीड्स ऑफ इंडिया, कीज फॉर द आइडेंटिफिकेशन ऑफ इकोनॉमिकली इम्पोर्टेन्ट सीवीड्स (समुद्री घास), कमर्शियल इम्पोर्टेंस ऑफ मरीन मैक्रो अल्गी, एक्सप्लॉयटेशन ऑफ मरीन अल्गी इन इंडो–पैसिफिक रीजन, सीवीड कल्टिवेसन इन इंडिया–प्रेजेंट एंड फ्यूचर, सीवीड रिसोर्सेज ऑफ इंडिया, द सीवीड पोटेंशियल ऑफ द सी अराउंड इंडिया इत्यादि है। वे सीवीड रिसर्च एंड यूटिलाइजेशन एसोसिएशन, कृष्णामूर्ति इंस्टिट्यूट ऑफ अल्गोलॉजी, मरीन बायोलॉजिकल एसोसिएशन ऑफ इंडिया सहित कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिकाओं के जीवन पर्यन्त सदस्य (लाइफ मेंबर) थे।

अनुसन्धान एवं शिक्षण क्षेत्र में विशेष रूचि रखने के अलावा वे एक कुशल प्रशासक भी थे। एक प्रशासक के रूप में उन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभागाध्यक्ष सहित यू.जी.सी. प्रायोजित कई योजनाओं के अध्यक्ष एवं सह समन्वयक एवं सी.एम.एफ.आर.आइ. में अपनी सेवा के दौरान अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर अपना योगदान देते हुए अपनी कुशल प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। भारतीय शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान एवं जीवन–पर्यन्त प्रयासों के लिए 25 सितम्बर 2004 को चेन्नई स्थित कृष्णामूर्ति इंस्टिट्यूट ऑफ अल्गोलॉजी द्वारा उन्हें लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया। उनका निधन लगभग 75 वर्ष की आयु में 4 अक्टूबर 2012 को हुआ । हालांकि प्रो. राव अब हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन भारतीय शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। वे हमेशा नई पीढ़ी के शैवालविज्ञों के लिए प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

प्रोफेसर शिवराम कश्यप : भारतीय हरितोद्भिद विज्ञान के जनक

देवेन्द्र सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

प्रो. शिवराम कश्यप
(1882–1934)

प्रोफेसर शिवराम कश्यप का जन्म 6 नवम्बर, 1882 को झेलम (पंजाब) में जो अभी पाकिस्तान में हैं, के साहसी सैनिक परिवार में हुआ था। शिवराम कश्यप को भारत में हरितोद्भिद् विज्ञान का जनक माना जाता है। सन् 1899 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् प्रो० कश्यप ने 1904 में आगरा मेडिकल कॉलेज से मेडिकल की उपाधि प्राप्त की। स्वास्थ्य विभाग में रहते हुए उन्होंने 1906 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी.एस.सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी वर्ष उन्होंने स्वास्थ्य सेवाओं से त्यागपत्र दे दिया और 1909 में वनस्पति विज्ञान में एम.एस. सी. की उपाधि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में विशेष उपलब्धि के लिए उन्हें विश्वविद्यालय द्वारा अरनोल्ड एवं मैक्लागन स्वर्ण पदक प्रदान किये गये। 1910 में प्रो. कश्यप ने कैब्रिज विश्वविद्यालय से नैचुरल साइंस में आनर्स की उपाधि प्राप्त की और स्वदेश लौटने पर उनकी नियुक्ति गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर में वनस्पति विज्ञान विभाग में प्रोफसर के पद पर हुई। 1919 में वह पंजाब विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुए और अन्त तक इसी पर बने रहे।

प्रो. कश्यप इंडियन बोटेनिकल सोसाइटी जिसकी स्थापना 1920 में हुई, के प्रथम सचिव थे। वे इस सोसाइटी द्वारा प्रकाशित पत्रिका जर्नल ऑफ इंडियन बोटेनिकल सोसाइटी के प्रधान सम्पादक भी रहे। इसके अतिरिक्त वह हालैण्ड से प्रकाशित पत्रिका क्रोनिका बोटेनिका के सम्पादक मण्डल में भी रहे। 1919 में बम्बई में हुए इंडियन साइंस कांग्रेस के वनस्पति विज्ञान खण्ड के वे सभापति रहे। विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए पंजाब विश्वविद्यालय ने प्रो0 कश्यप को 1933 में डॉक्टर ऑफ साइंस की मानक उपाधि से सम्मानित किया।

यद्यपि प्रो० कश्यप ने वनस्पति जगत के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया परन्तु तीन क्षेत्रों में उनका विशिष्ट योगदान रहा। ये क्षेत्र थे–(1) इक्वीटम की लैंगिक प्रवस्था (Sexual Generation of Equisetum), (2) पश्चिम हिमालय के लिवरवर्ट्स (Liverworts of Western Himalays), (3) तिब्बत की वनस्पति तथा (4) लाहौर जिले कि वनस्पति । उन्होंने 1914 में *इक्वीसीटम डिबाइल* के प्रौथैलस का विस्तृत अध्ययन किया जिसकी सराहना भारतवर्ष व विश्व के अनेक सम्मानित वैज्ञानिकों ने की। पश्चिमी हिमालय के लिवरवर्ट्स का अध्ययन उनका प्रमुख कार्य क्षेत्र रहा तथा इस विषय पर उन्होंने लिवरवर्ट्स ऑफ द वेर्स्टन हिमालयास एण्ड द पंजाब प्लेन्स नाम की मौलिक रचना प्रकाशित की। इस पुस्तक के दो खण्ड हैं जो क्रमशः 1929 व 1932 में प्रकाशित हुए। इसमें उन्होंने *ऐटकीसोनिएला* (*Aitchisoniella*), *सेवाडियेला* (*Sewardiella*), *साकिया* (*=साटेरिया*) *स्टेफ्रनसोनिएला* (*Stephensoniella*) नामक चार नये वंशों का वर्णन किया है इसके अतिरिक्त पश्चिमी हिमालय से उन्होंने विभिन्न वंशों की 30 से अधिक नयी जातियों का वर्णन किया है। अपने इस विस्तृत अध्ययन के आधार पर प्रोफेसर कश्यप इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि (1) पश्चिमी हिमालय की अपेक्षा पूर्वी हिमालय की अपेक्षा पूर्वी हिमालय की वनस्पति अधिक समृद्ध है, तथा पश्चिमी हिमालय में लिवरवर्ट्स 2000 व 3000 मीटर की ऊँचाई में बहुतायत में पाये जाते हैं जबकि पूर्वी हिमालय में इनका बाहुल्य अपेक्षाकृत कम ऊँचाई के क्षेत्रों में है।

इनके निर्देशन में तीन शिष्यों ने पीएच डी० की उपाधि प्राप्त की जिसमें आर.एस. चोपड़ा, एस.के. पाण्डे एवं पी.एन. मेहरा का उल्लेख है। इनके सम्मान में वंश कश्यपिया आर.एस. चोपड़ा का नाम रखा गया है, जो मॉस के अंर्तगत आता है। हिमालयी लिवरवर्ट्स के विभिन्न स्वरूपों के आधार पर प्रो. कश्यप ने गोबेल द्वारा प्रतिपादित "मार्केन्शिएलीज में ह्रास" (reduction in Marchantiales) के मत का समर्थन किया। प्रो. कश्यप ने *मार्केन्शिया* को एक केन्द्रीय स्वरूप जिससे अन्य वंशों की उत्पत्ति विभिन्न दिशाओं पर हुई है। वे ब्रायोफाइट्स के शैवालीय उत्पत्ति के मत के विरोधी थे। उनके विचार से ब्रायोफाइट्स की उत्पत्ति टेरिडोफाइट्स के ह्रास से हुई है, क्योंकि बायोफ्राइट्स व टेरिडोफ्राइट्स के युग्मकोदभिदों में बहुत समानता है तथा जननांगों की संरचना व जीवाणुओं का निर्माण भी लगभग एक समान ही होता है। प्रो. कश्यप के हृदय में हिमालय की यात्रा व उसकी वनस्पति के अध्ययन करने का विशेष उत्साह था। अपने जीवनकाल में उन्होंने 9 विभिन्न भागों से तिब्बत में प्रवेश किया। इन यात्राओं के दौरान उन्होंने पश्चिम हिमालय व तिब्बत की वनस्पति का विस्तृत अध्ययन किया। प्रो. कश्यप का निधन 26 नवम्बर, 1934 को हृदय गति रूकने के कारण हुआ जिसके पुर्व व अपने खोज यात्रा पर हिमालय गए हुए थे। भारतीय हरितोदभिद्की में इनके द्वारा किया गया योगदान एवं कार्य शोधार्थियों को प्रेरणा देता रहेगा।

नदियाँ बस कहने को होंगी।

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

कहे वैज्ञानिक शोध, खोज, सर्वेक्षण, सदियाँ दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।
जल ही अमृत,जल क्षुधा निवारक,जल ही औषधि, जल जीवन है ।
जल ही पावक, पवन, वनस्पति, जल ही धरती पर स्रोत सृजन है ।।
वो पावन जल यदि बचा नहीं, तो सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

जल उद्‌गम, संग्रह स्रोतों में, हिमनद, नदियाँ, झरने, झील, गुफायें ।
ताल, तलैया, तालाब, पोखर, जल संग्रह की पूरक परिभाषायें ।
भूतल जल दोहन यदि रूका नहीं तो, सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

यों विकासवाद की लहरों से, जल उद्‌गम स्रोत थकने सा लगा ।
फिर परिवर्तन के इस महा दौर में, जलवायु चक्र रूकने सा लगा ।।
जग प्रकृति पुकार यदि सुनी नहीं तो, सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

यों प्राकृतिक सम्पदाओं का जग, करे उपयोग दाल–रोटी की तरह।
वैज्ञानिक संरक्षण सुझाव को भी, करे अनदेखी बात छोटी की तरह।।
जग जनगण सचेत यदि हुआ नहीं तो, सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

ज्यों गांव, शहर, महानगर बढ़े, त्यों कूड़े, कचरे, मलवे का संग्रहण बढ़ा ।
फिर तालाब, नदी, नाले, झीलों, सागर तक प्रदूषण का संक्रमण बढ़ा ।।
जल शोधन निदान यदि किया नहीं तो, सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

यों धरती के कण–कण से छन–छन, बूंदों से बनता निर्मल जल ।
त्यों तिनके–तिनके के संबल से, हर मुश्किल का होता है हल ।।
समय हाथ से यदि निकला तो, गतिविधियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

यों वैज्ञानिक प्रयास, प्रस्ताव, नीतियाँ, संतुलन प्रति अधिक सहायक हैं ।
तकनीक तरक्की, नियम निवारण, जन सहयोग अनादि फलदायक हैं ।।
जग वैज्ञानिक सुझाव यदि गुना नहीं तो, सदियां दुख सहने को होंगी ।
यदि बिगड़ गया प्राकृतिक सन्तुलन, नदियाँ बस कहने को होंगी ।।

अंटार्कटिका

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

धरती नीली, अंबर नीला, समंदर का जल है नीला
नीले जल पर सफेद बर्फ की चादर,
लगता है मौसम और भी रंगीला ।
बर्फ की श्वेत चादर पर नन्हें–नन्हें से
पैन्गुइन आकर करते करलव,
लेते है विश्राम, देख यहाँ पर मानव जन को
कूद जाते हैं फिर जल में, है दृश्य ये बड़ा अनोखा ।
आकाश में तरह–तरह के पक्षी करलव करते
भरते कोसों मील की उड़ान,
नहीं हैं थकते, नहीं लेते विश्राम
ऐसा है यह दृश्य अनोखा ।।
यहाँ सूर्य चंद्र का संगम है हमने देखा
यहाँ सूर्य किरणों की छटा है दिखती तीव्र अनोखी,
जो श्वेत बर्फ की चादर को और भी चमका है देती ।
अब चारों ओर बस श्वेत रंग है
जो हम सबको है दिखता,
प्रकृति का यह विहंगम दृश्य है अनोखा ।
जो केवल अंटार्कटिका में ही है दिखता
जो केवल अंटार्कटिका में ही है दिखता।।

दिवस

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

मानव तुम जैसा कोई दुष्ट नहीं,

ओजोन परत को भेदकर पर्यावरण दिवस मनाते हो।

देश में महिलाएँ सुरक्षित नहीं,

फिर महिला दिवस मनाते हो।

नन्हें–नन्हें हाथों से किताबें छीन, काम कराते हो,

फिर बाल–दिवस मनाते हो।

प्रियजनों को मौत के मुँह धकेलते,

फिर तम्बाकू दिवस मनाते हो।

पहले श्रमिकों का शोषण करते,

फिर मजदूर दिवस मनाते हो।

जनता बूँद–बूँद पानी को तरसती,

फिर वॉटर डे मनाते हो,

देश परमाणु के खौफ में जीता,

फिर विज्ञान दिवस मनाते हो।

वृद्ध माता–पिता को आश्रम में छोड़ते,

फिर फादर्स–मदर्स डे मनाते हो।

आओ इन दिवसों का चक्कर छोड़े,

इंसान बन इंसानियत से नाता जोड़े,

फिर मनाएँ एक दिवस,

वह होगा इंसानियत दिवस ।

पीपल

अमरदेव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

कानन का यह तरूवर पीपल।
युग–युग से जग में अचल, अटल।
ऊपर विस्तृत नील–नील नीचे वसुधा में नदी झील।
जामुन, तमाल, ईमली, करील।
जल ऊपर उठता मृणाल फुनगी पर खिलता कमल लाल।
तिर–तिर करते क्रीड़ा मराल।
ऊँचे टीले में वसुधा पर झरती है, निर्झरिणी झर–झर
हो जाती बूँद–बूँद झर कर।
निर्झर के पास खड़ा पीपल सुनता रहता कलकल, छलछल
पीपल के पत्ते गोल–गोल
कुछ कहते डोल–डोल
जब–जब आता पंछी तरू पर, जब जब आता पंछी उड़कर।
जब खाता फल चुन–चुन कर
पड़ती जब पावस की फुहार, बजते जब पंछी के सितार।
बहने लगती शीतल बयार।
लख–लख, सुन–सुन विह्वल बुलबुल।
बुलबुल गाती रहती चह–चह, सरिता गाती रहती बह–बह।
पत्ते हिलते रहते रह रह
जितने भी हैं इसमें कोटर
सब पक्षी गिलहरियों के घर।
संध्या को अब दिन जाता ढल, सूरज चलते हैं अस्तांचल
कर में समेंटे किरणें उज्जवल।
हो जाता है सुनसान लोक, चल पड़ते घर को चील, काक
अंधियारी सन्ध्या को विलोक।
भर जाता है कोटर–कोटर बस जाते हैं पत्तों के घर।
घर–घर में आती नींद उतर।
निद्रा में ही प्रभात कट जाती है, इस तरह रात
फिर वही बात रे! वही बात।
इस वसुधा का यह वन्य प्रान्त।
है दूर अलग एकांत शांत।
है खड़े जहाँ पर साल, बांस, चौपाये चरते नरम घास।
निर्झर, सरिता के आस–पास।
रजनी भर रो–रोकर चकोर कर देता है, रे रोज मोर
नाचा करते हैं जहाँ मोर।
है वहाँ वल्लरी का बंधन–बंधन क्या, वह तो आलिंगन।
आलिंगन भी चिर आलिंगन।
बुझते जहाँ पथिकों की प्यास, निद्रा लग जाती अनायास।
है वहीं सदा इसका निवास ।

फूल

महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आकाश में उड़ता है पक्षी, मछली जल में तैर रही ।
फूल खिला है एक उद्यान में, तितली ने यह बात कही ।।

आओ चलकर उद्यान में देखें, फूल में कितने रंग भरे ।
उद्यान में पहुंचे तो फिर देखे, सारे फूल पत्ते हरे–भरे ।।

काँटों में एक फूल खिला था, लाल पीला रंग लिए ।
सोचा लौटेंगे अब घर पर, इसको अपने साथ लिए ।।

काँटों ने था खूब रूलाया, फूल हाथ में पर न आया ।
फूल को टहनी में रहने दो, हमने मन को यही समझाया ।।

हल्की हल्की फूल की खुशबू, हमको खूब रिझाती थी ।
पेड़ के नीचे छाया भी थी, नींद हमें तो आती थी ।।

हरी भरी जो घास उगी थी, उस पर हम सब सोये थे ।
नींद में फूल से बतियाने में, हम तो पूरे खोये थे ।।

सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,कोलकाता

अनगिनत शब्दों के झुरमुटों से
पुष्प–पत्र और नव–अंकुरों से,
संदेशवाहिनी प्राणवायु से,
बस सर्वस्व अर्पण करता रहता है,
सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

माँ की उस पर न चढ़ने की हिदायतें,
चबूतरे पे सजीं चौपालें और पंचायतें,
सिन्दूरी जनेऊ में बंधी दुआयें और इनायतें,
जीवन पथ पर संग हमारे चलता रहता है,
सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

घाव अनेक स्तंभों पर लिये,
मनु–विकास के शूल लिये,
इंसानी प्रगति के क्रूर वार सिये,
क्षण–क्षण विध्वंश सहता रहता है।
सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

सृष्टि, सौन्दर्य और जीवटता का,
सघन, मर्म–स्पर्शी स्नेहलता का,
है जड़ प्रतिरूप धैर्यता का,
जीवन जल में तृण सा बस बहता रहता है।
सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

बाल्यकाल की किलकारियाँ संजोंकर,
शैशव किशोरपन की अठखेलियां पिरोकर,
झूलों में तीज का यौवन सजाकर
वृद्ध सा अब बस तकता रहता है।
सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

सुन ! तरू कुछ कहता रहता है....

वर्तमान में कई हिन्दी संस्थाओं के साथ साथ भारत सरकार के द्वारा भी कई बेबसाइट कंप्यूटर पर हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं जिनका विवरण निम्नवत है।

1.	राजभाषा विभाग भारत सरकार	http://rajbhasha.gov.in
2.	भारतीय भाषाओं के लिये प्रौद्योगिकी विकास (फोन्ट एवं साफ्टवेयर)	http://ildc-in
3.	सूचना प्रौद्योगिकी विभाग	http://deity.gov.in
4.	प्रगत संगणन विकास केन्द्र	http://www.cdac.in
5.	हिन्दी फोन्ट डाउनलोड	http://www.wazu.jp/gallery/Fonts_Devanagari http://www.ffonts.net/Hindi http://devanaagarii.net/fonts
6.	डाउनलोड यूनिकोड हिन्दी फोन्ट	http://salrc.uchicago.edu http://www.alanwood.net/unicode
7.	माईक्रोसॉफ्ट भाषा इण्डिया	http://microsoft-indic-language-input-tool-conf.software.informer.com http://www.bhashaindia.com/ilit/Hindi
8.	फॉन्ट परिवर्तक	http://www.kavitakosh.org/convertfonts http://rajbhasha.net/drupal514/UniKrutidev+Converter
9.	वेबदुनिया का डेटा कनवर्टर– यहाँ सैकड़ों फॉन्ट से यूनिकोड में बदलने की आनलाइन सुविधा है	http://utilities.webdunia.com/dataconversion
10.	सम्पूर्ण फाइल के फोण्ट को यूनिकोड फोण्ट में बदलने हेतु	http://uni.medhas.org/fileconverter http://rajbhasha.net/drupal514/UniKrutidev+Converter
11.	ओपन ऑफिस में हिन्दी वर्तनी जाँचक (Spell Check) संस्थापित करने हेतु मार्गदर्शन	http://raviratlami.blogspot.com
12.	हिन्दी शब्दकोश	http://ehindi.hbcse.tifr.res.in/dictionary http://ehindi.hbcse.tifr.res.in/dictionary www.e-mahashabdkosh.cdac.in
13.	हिन्दी भाषा में कार्यरत संस्थाएं	
	केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा	http://www.hindisansthan.org
	राष्ट्रीय अनुवाद मिशन, मैसूर	http://www.ntm.org.in
	भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर	http://www.ciil.org

की-बोर्ड ऑन न होने की दशा में– टास्कबार पर बाईं ओर विंडोज स्टार्ट पर क्लिक करें और कंट्रोल पैनल खोलें ▶ Region and language पर क्लिक करें ▶ keyboard and language पर क्लिक कर खोले ▶ ऑयकान Change Keyboards पर पुनः क्लिक करें ▶ Hindi (India) Microsoft Indic Input Tool पर क्लिक कर चुनें एवं Hindi को सलेक्ट कर add कर ok करें ▶ हिन्दी की–बोर्ड काम करना प्रारम्भ कर देगा।

सरल रूप से हिन्दी का प्रयोग करना प्रारम्भ करने के पश्चात् यूनिकोड फोन्ट में लिखित रचना को कुर्ति देव, चाणक्य, शुषा, श्रीलिपि में भी बदला जा सकता है। फोन्ट में परिवर्तन के लिये तालिका के क्रमांक संख्या 8,9,10 पर दी गई बेबसाइट का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने वाली है कि कंप्यूटर पर यथा संभव हिन्दी की आवश्यक तकनीकें उपलब्ध हैं, किन्तु मशीनी/सॉफ्टवेयर या गूगल ट्रॉसलेटर के द्वारा किये गये टाईपिंग, फॉन्ट परिवर्तन में वर्तनी की त्रुटियाँ होनी स्वाभाविक हैं, एतएव कंप्यूटर पर कार्य करने के पश्चात् कार्य का निरीक्षण विषय विशेषज्ञों से करवाना चाहिये।

हिन्दी में विज्ञान लेखन के महत्वपूर्ण सूत्र– हिन्दी देश की सर्वाधिक बोले एवं समझे जाने वाली भाषा है, इसलिये विज्ञान से आम जनमानस को जोड़ने एवं लाभान्वित करने के लिये हिन्दी में विज्ञान लेखन अति महत्वपूर्ण है। किसी भी विषय पर विज्ञान लेखन के लिये कुछ विशेष बातों पर लेखक को ध्यान रखने की आवश्यकता होती है, जैसे–

- **विषय का चुनाव–** हिन्दी में लिखने से पूर्व सही विषय का चुनाव करना महत्वपूर्ण होता है। समसामयिक विज्ञान, नई खोजों, अन्वेषणों, वैज्ञानिक संस्थाओं की भूमिका, उनके द्वारा किये जा रहे कार्य एवं देश हित में उन कार्यों की भूमिका, वैज्ञानिकों का व्यक्तित्व लेखन, विशेष कार्यशालाओं का सारगर्भित विश्लेषण, अन्वेषण यात्रा वृतांत, वैज्ञानिक संस्मरण आदि अनेक विषयों को लेखक के द्वारा चुना जा सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जिस विषय पर लेखक विज्ञान लेख लिख रहा हो, उसे उस विषय की भलींभांति तथ्यपरक जानकारी हो। हिन्दी पर नये विषयों जैसे माइक्रोबायोलॉजी, आनुवांशिकी, वर्गिकी, वानस्पतिक यात्रा वृतांत, पर्यावरण संरक्षण की नवीन तकनीकें, आदि पर भी शोध कर लिखने की आवश्यकता है।
- **रूपरेखा–** विषय का चुनाव कर लेने के पश्चात लेखक को विषय से जुड़ी सभी जानकारियों को एकत्र कर, लेख के लिये उपयोगी लेखन सामग्री (writing content) का चुनाव कर लेख का एक बिन्दुवार खांका खींच लेना चाहिये। लेख को रोचक एवं पाठकों के लिये उपयोगी, ज्ञानवर्धक बनाने के लिये उचित उदाहरणों, चित्रों का उपयोग किया जाना चाहिये। लेख में तारतम्य एवं प्रवाह (Sequence & Flow) के लिये रूपरेखा बनाना अत्यंत आवश्यक होता है।
- **भाषा–** हिन्दी में विज्ञान लेखन पारम्परिक अंग्रेजी वैज्ञानिक लेखन से भिन्न है, अतः हिन्दी में शब्दों का चुनाव भी महत्वपूर्ण हो जाता है। लेखकों को ध्यान में रखना चाहिये कि लेख आम जनमानस और विज्ञान की आधारभूत (बेसिक) समझ रखने वाले पाठके की समझ में आना चाहिये इसलिये प्रचलित हिन्दी शब्दों का प्रयोग करें किन्तु भाषा की गरिमा बनी रहे यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है। कठिन वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करते हुये उसे यथासंभव उदाहरणों से समझाने का प्रयास करें एवं कोष्ठक (Bracket) के अन्दर उसका अंग्रेजी शब्द प्रयोग करें। पौधों एवं जन्तुओं की वैज्ञानिक नामावली से पूर्व उनका स्थानीय या सामान्य नाम अवश्य दें । भाषा को त्रुटिरहित बनाने के लिये हिन्दी के भाषाविद्ों एवं जानकारों से भी परामर्श लिया जाना चाहिये।
- **हिन्दी लिपि एवं टेक्सट फार्मेट–** कंप्यूटर पर हिन्दी लेखन का कार्य करने से पूर्व सही हिन्दी लिपि एवं टेक्स्ट फार्मेट की सही जानकारी होना आवश्यक है। अगर लेखक लेख को कंप्यूटर पर टाईप कर ई.मेल की सहायता से संबन्धित व्यक्ति अथवा प्रकाशक को भेजना हो तो लेख को यूनिकोड टेक्सट में ही लिखें । लेख की लिपि (फोन्ट) को प्रकाशक के साथ बात करके भी तय किया जा सकता है। अगर लेखक यूनिकोड में न लिख कर पारम्परिक हिन्दी फोन्ट का प्रयोग करता है, तो सीडी में लेख की सॉफ्टकापी देने से के साथ ही फोन्ट भी देना चाहिये।

इस प्रकार कंप्यूटर पर हिन्दी में कार्य करने हेतु यूनिकोड, कुर्तिदेव, चाणक्य, लिपिका, मंगल, फॉन्ट परिवर्तक, जैसे अनेक तकनीकी संसाधन हमारे पास उपलब्ध हैं, आवश्यकता है तो मात्र अपनी भाषा को गर्व के साथ अपनाकर इसका उपयोग दैनिक कार्यालयी गतिविधियों में ज्यादा से ज्यादा करने की।

निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा–ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल ।। – भारतेन्दु हरिश्चंद्र

पर्यावरण समाचार–2014

संजीव कुमार एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय कोलकाता

1. छत्तीसगढ के कई जिलों में बड़ी कंपनियाँ पर्यावरण को दांव में रखकर कोयला खनन को बढ़ावा व विस्तारित करने का कार्य रही थीं, उसे प्रसिद्ध पर्यावरण कार्यकर्ता श्री रमेश अग्रवाल ने बंद करवा दिया है। पर्यावरण को बचाए रखने के लिए उनके कार्य के फलस्वरुप उन्हें ग्रीन नोबेल पुरस्कार से सुशोभित किया गया। उन्हें पुरस्कार स्वरूप 175000 डॉलर प्राप्त होगा । (टाइम्स ऑफ इंडिया)

2. उत्तराखंड जैसी प्राकृतिक विपत्ति हिमाचल प्रदेश में भी हो सकती है। 16 एवं 17 जून 2013 में केदारनाथ के ऊपरी भाग में चोराबाड़ी झील के पर बादल फटने एवं अतिवृष्टि से जो तबाही मची थी, इसी प्रकार की हिमानी झीले हिमाचल प्रदेश में भी हैं । व्यास नदी के 80 हिमानी झील, चिनाव के 16, रावी के 28 एवं सतलुज नदी के 98 हिमानी झीलें हैं। मौसम में परिवर्तन, बादलों के फटने, अत्यधिक वर्षा एवं प्राकृतिक अस्थिरता के कारण उत्तराखंड जैसी विपत्ति आ सकती है । (टाइम्स ऑफ इंडिया)

3. फिलिपींस के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे पौधे की खोज की है जिसकी जीवन प्रणाली असामान्य है। अपने जीवन धारण के लिए यह पौधा स्वयं विषाक्त न होते हुए भी काफी मात्रा में (18,000 पीपीएम) निकिल स्वयं में संचय कर लेता है। इस पौधे का नाम *रिनोरिआ निकोलिफेरा* (*Rinorea Nicclifera*) है । (सांइस डेली)

4. एक नये वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार पौधों पर गुरुत्वाकर्षण का बहुत असर पड़ता है। महाकाश में पौधों को ले जाने पर उनकी प्रजनन क्षमता घटने लगती है । (डिसक्वरी पत्रिका)

5. एक वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार पौधों में बम (टी.एन.टी.) रसायन परखने की क्षमता होती है। कुछ पेड़–पौधें टी.एन.टी के पास होने से क्लोरोफिल का गुण खो देते है जिससे उनके हरे पत्ते सफेद हो जाते हैं । (डिसक्वरी पत्रिका)

6. लियोनार्द द विंची को विश्व आमतौर पर चित्रकार के रुप में जानते है । लेकिन उनकी विज्ञान का भी प्रगाढ ज्ञान था। उन्होंने पौधों के सुन्दर सुन्दर फसलों, फलों व जलीय पौधों के चित्र बनाएं । अपने चित्रों का नया आयाम दिया। उन्होनें एक चित्र को विभिन्न कोणों से बनाया तथा अपने चित्र द्वारा यह समझाने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार एक ही जाति के पौधे एव फूल एक दूसरे से भिन्न होते हैं। (आउटलुक इंडिया)

7. राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण ने महाराष्ट्र के महाराष्ट्र के भंडारा और गोंडिया जिले के बीच नागजिरा में एक नया टाइगर रिजर्व विकसित करने की 28 नवंबर 2013 को घोषणा की. यह टाइगर रिजर्व 700 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में विकसित किया जाना है। विदित हो कि सरकार ने इसी वर्ष 2013 में तीन नये टाइगर रिजर्व की घोषणा की थी–मुकुंदरा हिल्स(राजस्थान), सत्यमंगलम (तमिलनाडु), पीलीभीत (उत्तर प्रदेश)। (दैनिक जागरण)

8. कछुओं की विलुप्तप्राय जाति *ओलिव रिडली* को बचाने के लिए भारतीय तटरक्षक बलो ने *ऑपरेशन ओलिवर* नाम का वार्षिक अभियान नवंबर 2013 के अंतिम सप्ताह में शुरू किया। इस ऑपरेशन का उद्देश्य ओलिव रिडली प्रजाति के कछुओं का संरक्षण करना है। ओलिव रिडली समुद्र मे पाए जाने वाले कछुओं की एक विशेष प्रजाति है। ओड़िसा राज्य के केंद्रपाड़ा जिले मे गाहिरमाथा नामक स्थान इनके प्रजनन केंद्र के रूप मे विश्वविख्यात है जो भीतरकनिका वन्यजीव अभ्यारण्य का ही एक भाग है। ओलिव रिडली अनीमलिया वर्ग का प्राणी है। यह उष्ण जल में रहता है। ये भारत,श्रीलंका,जापान और अफ्रीका के दक्षिण भाग समेत ऑस्ट्रेलिया और ब्राजील में भी पाये जाते हैं । एक व्यस्क ओलिव रिडले की लम्बाई औसतन 60 से 70 सेंटीमीटर होती है । (दैनिक जागरण)

9. केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के स्वायत्तशासी संस्थान गोविंद बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान के उत्तर–पूर्व शाखा के भूतपूर्व प्रकृति विज्ञानी लाकपा तमांग ने लैबियोनाइन मछली की नई जाति की खोज की है। इस जाति को स्थानीय भाषा में न्गॉप (Ngop) के नाम से

जाना जाता है। लैबियोनाइन मछली की नयी खोजी गयी जाति न्गॉप का वंश गारा है और इसे अरुणाचल प्रदेश के ऊपरी सियांग जिले में बहने वाली सियांग नदी की सहायक नदी में पाया गया। अरूणाचल प्रदेश में गारा वंश की यह दसवीं जाति है। (जागरण जोश)

10. अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर, आईयूसीएन) ने 30 जनवरी 2014 को घोषणा की कि वह संरक्षण–मार्गदर्शन और नीतिगत निर्णयों में संकटग्रस्त प्रजातियों की आईयूसीएन रेड लिस्ट के 50 वर्ष मना रही है। आईयूसीएन की रेड लिस्ट जानवरों, पादप–प्रजातियों और आजीविकाओं से जातियों के संबंध में सबसे व्यापक सूचना–स्रोत है। अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ विश्व का सबसे पुराना और बड़ा वैश्विक पर्यावरण–संगठन हैं, इसकी स्थापना 1948 में हुई थी। वर्तमान में यह सबसे बड़ा पेशेवर वैश्विक संरक्षण–नेटवर्क है। इसकी वित्त व्यवस्था सरकारों, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय एजेंसियों, सदस्य संगठनों, निगमों और फाउंडेशनों द्वारा की जाती है। संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) में इसे आधिकारिक प्रेक्षक (ऑफिसियल आब्जर्वर) का दर्जा प्राप्त है। (जागरण जोश)

11. वैश्विक पर्यावरण निष्पादन सूचकांक–2014 (Environmental Performance Index 2014, ईपीआई) 25 जनवरी 2014 को जारी किया गया। वैश्विक पर्यावरण निष्पादन सूचकांक के अनुसार भारत को पर्यावरण संबंधी चुनौतियों के समाधान के अपने प्रयासों में सूचकांक–स्कोर 31.23 पॉइंट्स के साथ 178 देशों में से 155वां स्थान प्राप्त हुआ। सर्वोच्च ईपीआई वाला देश स्विट्जरलैंड है, जिसके बाद लग्जमबर्ग, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर और चेक रिपब्लिक आते हैं। वैश्विक पर्यावरण निष्पादन सूचकांक में चीन को 118वां, पाकिस्तान को 148वां और नेपाल को 139वां स्थान प्राप्त हुआ। भारत अपने इन सभी पड़ोसी देशों से इस सूचकांक में पीछे है। ब्रिक्स देशों में से दक्षिण अफ्रीका को 72वां स्थान प्राप्त हुआ,जबकि रूस 73वें, ब्राजील 77वें और चीन 118वें स्थान पर रहा, ईपीआई के सबसे निचले निष्पादक देश हैं–सोमालिया, माली, हैती, लेसोथो और अफगानिस्तान। ये सभी न्यून निष्पादक देश जन–आंदोलन, आर्थिक विकास के भारी दबावों और राजनीतिक अशांति से ग्रस्त हैं। (जागरण जोश)

12. दक्षिणी भारत के पश्चिमी घाट में जीव वैज्ञानिकों ने 'डांसिंग फ्रॉग' की 14 नयी जातिओं की खोज की है। इन छोटे कलाबाजी युक्त उभयचर मेंढकों को भारतीय जीव वैज्ञानिकों द्वारा खोजा गया है। भारतीय 'डांसिंग फ्रॉग' को वैज्ञानिक रूप से *मिक्रिक्सालिडे* के रूप में जाना जाता है और उनका परिवार एक ही जीनस *मिक्रिक्सालुस* में शामिल हैं। इन मेंढ़कों को यह नाम प्रजनन मौसम में नर मेंढक द्वारा विशेष प्रकार से पैर झटकने के तरीके के कारण दिया गया है। अन्य 'डांसिंग फ्रॉग' की जातियां मध्य अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया में पाई जाती हैं। भारतीय 'डांसिंग फ्रॉग' परिवार 85 मिलियन वर्षों पहले विकसित हुआ था। (द हिन्दू)

13. स्विट्जरलैंड स्थित 'वर्ल्ड वाइड फंड' (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ) द्वारा 29 जुलाई 2014 को जारी एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्तमान में दुनियाभर के जंगलों में सिर्फ 3200 बाघ बचे हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार, 100 वर्ष पहले दुनियाभर के जंगलों में 100000 बाघ हुआ करते थे। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ ने इस रिपोर्ट को जारी करने के साथ ही बाघों के बहुलता वाले 13 देशों– भारत, बांग्लादेश, भूटान, चीन, कंबोडिया, इंडोनेशिया, लाओस, मलेशिया, म्यांमार, नेपाल, रूस, थाईलैंड और वियतनाम द्वारा बाघ संरक्षण की दिशा में किए जा रहे प्रयासों में मदद करने की पेशकश भी की है। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ के रिपोर्ट में यह माना गया है कि भारत, नेपाल और रूस के जंगलों में मौजूद बाघों के आंकड़े तो उसके पास हैं, लेकिन म्यांमार, कंबोडिया, चीन, इंडोनेशिया, लाओस, मलेशिया और थाईलैंड का सम्पूर्ण आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ ने अपनी इस रिपोर्ट में यह चेतावनी भी दी है कि, यदि इस दिशा में सुधार हेतु आवश्यक कदम न उठाये गए। शिकार और आवास की समस्या के कारण एशियाई बाघ वनों से विलुप्त हो सकते हैं। (जागरण जोश)

14. हिमालय की जलधारण क्षमता (इनफिल्टेशन कैपेसिटी) पर वैज्ञानिकों द्वारा किये गए शोध के अनुसार, हिमालयी क्षेत्र की धरती की जलधारण क्षमता 30 वर्ष पहले 35 प्रतिशत थी, जो अब घटकर मात्र 12 प्रतिशत रह गई है। इसके पीछे मुख्य कारण अनियोजित नगरीय विकास, अनियंत्रित कटान, पहाड़ों का अवैज्ञानिक दोहन तथा हरियाली का अंधाधुंध दोहन है। वैज्ञानिकों के अनुसार, हिमालय की जलधारण क्षमता में आई कमी के कारण हिमालयी क्षेत्र की 88 प्रतिशत बरसाती पानी बर्बाद हो जाती है। जिसके कारण वर्षाकाल में इस क्षेत्र के जंगलों से कई टन उपजाऊ मिट्टी का भी क्षरण हो रहा है। इस शोध के अनुसार, 45 वर्ष पूर्व तक कुमाऊं की कोसी नदी का दायरा 225.6 किमी था, जो अब सिकुड़कर मात्र 41. 5 किमी रह गया है। यही हाल गोमती, गगास, रामगंगा, गौला नदियों समेत इनकी सहायक नदियों का भी है.विदित हो कि स्वस्थ जंगल–क्षेत्र की जलधारण क्षमता 100 मिमी वर्षा पर 90 प्रतिशत से अधिक मानी जाती है। (जागरण जोश)

15. जैव विविधता पर नागोया प्रोटोकॉल को उसके लिए अनिवार्य 50वां जरूरी समर्थन जुलाई 2014 के तीसरे सप्ताह में मिल गया। ये समर्थन 12 अक्टूबर 2014 से अर्थात इस समर्थन की औपचारिकताओं को पूरा करने में लगने वाले 90 दिनों के बाद प्रभावी होंगे। यह प्रोटोकॉल जैव विविधता के संरक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए बनाया गया था। भारत अक्टूबर 2012 में हैदराबाद में जैवविविधता पर आयोजित सम्मेलन का मेजबान था। भारत, जैव विविधता सम्मेलन के लिए दलों के समूह (सीओपी) का अध्यक्ष भी है। मई 2014 तक सिर्फ 44 देश नागोया प्रोटोकॉल का समर्थन कर रहे थे लेकिन भारत ने इस मुद्दे को जून 2014 में नौरोबी में हुए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा में उठाया और वार्ता के जरिए इस संधि पर हस्ताक्षर करने का रास्ता उसे मिला। (जागरण जोश)

16. अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण मंच (आईयूसीएन) ने 12 जून 2014 को संकटग्रस्त जातियों की रेड लिस्ट जारी की। जापानी मछली (एंगुइल्ला जापोनिका) को लुप्तप्राय जीव के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। जबकि ब्राजील के थ्री–बैंड अर्माडिल्लो (*टॉलिप्युटेस ट्रीसिन्कटस* – फीफा विश्व कप 2014 शुभंकर) को इसके सूखी झाड़ियों के मैदान काटिन्गा आवास में पचास फीसदी की कमी के कारण इसे अतिसंवेदनशील जातियों वाले जीवों की श्रेणी में रखा गया है। (प्रतियोगिता दर्पण)

17. विश्व का सबसे बड़ा क्रिसमस ट्री उत्तरी कैरोलिना के हिल्टन नामक पार्क में है। जो लगभग 90 फुट ऊंचा है तथा इसकी परिधि 14 फुट है। (बेब दुनिया)

18. 5 जून 2014 को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा नई दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा भारत से अन्वेषित नवीन पादप जातियों पर प्रकाशित पादप अन्वेषण (प्लांट डिस्कवरी–2013) का विमोचन किया गया। पादप अन्वेषण में वर्ष 2013 के दौरान पौधों के 8 नये वंश, 200 नयी जातियां, 6 नवीन अवजातीय विशिष्ट जातियों का अन्वेषण किया गया, जिनमें 140 नवीन विवरणपरक अभिलेख एवं 4 नवीन अवजातीय विशिष्ट जातियां भारत से प्रथमवार अभिलेखित की गई। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने 1 नये वंश, 45 नयी जातियों एवं 2 नयी उप जातियों, पौधों के प्रकार का वर्णन व प्रकाशन किया है, जबकि भारत के लिए नये विवरणपरक अभिलेख के रुप में 45 जातियां 2 उप जातियां, 4 प्रभेदों एवं 01 रुप को अभिलेखित किया गया है। (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार बेबसाइट)

19. 13वें चक्र की भारतीय वन स्थिति रिपोर्ट–2013 को माननीय राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) पर्यावरण, वन, एवं जलवायु परिवर्तन, श्री प्रकाश जावड़ेकर द्वारा 8 जुलाई 2014 को नेशनल मीडिया सेंटर, नई दिल्ली में जारी किया गया। वन स्थिति रिपोर्ट – 2013 में न केवल वन क्षेत्र और देश के वन सूची और पिछले आंकलन के संबंध में परिवर्तन के बारे में जानकारी शामिल है, बल्कि यह रिपोर्ट वन, कृषि वानिकी और शहरी वानिकी की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। इस रिपोर्ट के अनुसार देश का वर्तमान वन क्षेत्र 697,898 वर्ग कि०मी० है जो देश के कुल क्षेत्रफल का 21.23 प्रतिशत है। (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार बेबसाइट)

पेड़ लगाओ जीवन बचाओ,
इस धरा को स्वर्ग बनाओ।
प्रदूषण से धरती बचाओ,
सुरक्षित अपना भविष्य बनाओ।।

राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु

- सितम्बर 2013 में मुख्यालय सहित विभाग के सभी कार्यालयों ने निर्धारित कार्यक्रमानुसार हिंदी दिवस, सप्ताह, पखवाड़े का आयोजन किया। प्रतियोगिताओं में श्रेष्ठ निष्पादन करने वाले प्रतिभागियों को पुरूस्कृत किया गया ।
- मुख्यालय में 2013 अवधि में हिंदी पखवाड़े के दौरान निबन्ध, वाद–विवाद, टाइपिंग, टिप्पण–आलेखन एवं प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने सभी प्रतियोगिताओं में भाग लिया एवं पुरस्कार प्राप्त किये ।
- राजभाषा अधिनियम 1963 एवं राजभाषा नियम 1976 का अनुपालन तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में मुख्यालय समेत सभी क्षेत्रीय केन्द्र सचेष्ट रहे ।
- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की विभागीय पत्रिका वनस्पति वाणी–2013 का विमोचन किया गया ।
- मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में प्रोत्साहन योजना के तहत 13 कर्मचारियों ने भाग लिया एवं 10 कर्मचारी इस योजना के तहत चुने गये।
- डा. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, वैज्ञानिक–ई, राजभाषा अधिकारी एवं श्री नवीन चौधरी, हिंदी अधिकारी क्रमशः जुलाई, 2014 व जून, 2014 में सेवानिवृत हुए ।
- दिनांक 21.8.2014 से श्री अनूप कुमार पाठक, वैज्ञानिक–एफ, मुख्यालय ने राजभाषा अधिकारी के रूप में दायित्व ग्रहण किया।
- पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र, पुणे व शुष्क अंचल क्षेत्रीय केंद्र, जोधपुर ने उद्यान में पौधों के नाम द्विभाषा में लगवाने का निर्णय लिया।
- डा. मनीष के. कंडवाल, वैज्ञानिक–सी, अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रीय केन्द्र, इटानगर को केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित अभिमुखी कार्यक्रम में भाग लेने के लिए चुना गया।
- दिनांक 20.5.2014 को दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, कोयम्बटूर एवं दिनांक 2.7.2014 को अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर का मुख्यालय द्वारा विभागीय राजभाषा सम्बन्धित निरीक्षण किया गया ।
- विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून के उपलक्ष्य में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित "वनस्पति अन्वेषण– 2013" के द्विभाषीय अंक का विमोचन किया गया ।
- कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, क्षेत्र–8 के अध्यक्ष होने के नाते मुख्यालय भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण वार्षिक बैठक में भाग लेते है ।
- श्री संजय कुमार, वनस्पति सहायक, मुख्यालय, कोलकाता को कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की वार्षिक पत्रिका स्वर्णिमा वर्ष 2014 में प्रकाशित रचना "समेकित विकास की राह तकता मैं उत्तराखंड हूँ " को श्रेष्ठ रचना के रुप में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें–

- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग,महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए–4 आकार के कागजपर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर (Double space) में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हो ।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class –वर्ग ,Order–गण,Family–कुल, Genus–वंश, Sub-species –उपजाति, Variety–प्रभेद, Form–रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम *तिरछे* (*italic*) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखाकिंत (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार–बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में आभार एवं संदर्भों का प्रयोग नहीं करें।
- लेख में सम्मिलित फोटो–प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेंटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेंटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नही करें ।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।

1

2

3

4

5

1. आशुतोष जन्म शताब्दी सभागार में 19 जून 2014 को आयोजित सम्मेलन के दौरान वर्गिकी एवं नृवनस्पति में शोधपत्रों हेतु स्वर्ण पदक प्राप्त वैज्ञानिक दल। 2. 19 जून 2014 को आयोजित कार्यशाला के दौरान अभिलेखों के संरक्षण विधियों की जानकारी लेते प्रतिभागी। 3. 5 जून 2014 विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते स्कूली बच्चे। 4. अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के अवसर पर, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अंडमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर में वृक्षारोपण करते स्कूली बच्चे। 5. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, आई. आई. एस. एम. में जानकारी प्राप्त करती डॉ. ब्रेन्डा किंग।

1. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अंडमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र के अन्तर्गत दानिखुरी उद्यान में जानकारी लेती छात्रायें। 2. डॉ. आर. दलवानी, सलाहकार, सी एस-II, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय से विचार विमर्श करते निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण एवं अन्य। 3. श्री हेम पांडे, आई. ए. एस, अपर सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा में वन महोत्सव के दौरान प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुए। 4. भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा में वन महोत्सव के दौरान नाइजीरिया के आगन्तुकों से चर्चा करते श्री हेम पांडे, आई. ए. एस, अपर सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय। 5. आई. एस. आई. एम. कोलकाता में आयोजित, अभिलेखों के संरक्षण पर कार्यशाला में सम्मिलित प्रतिभागी।